गीता दर्शन
भगवान् श्री रजनीश

गीता-दर्शन

प्रवचन

भगवान श्री रजनीश

जीवन जागृति आन्दोलन प्रकाशन, बम्बई
१९७३
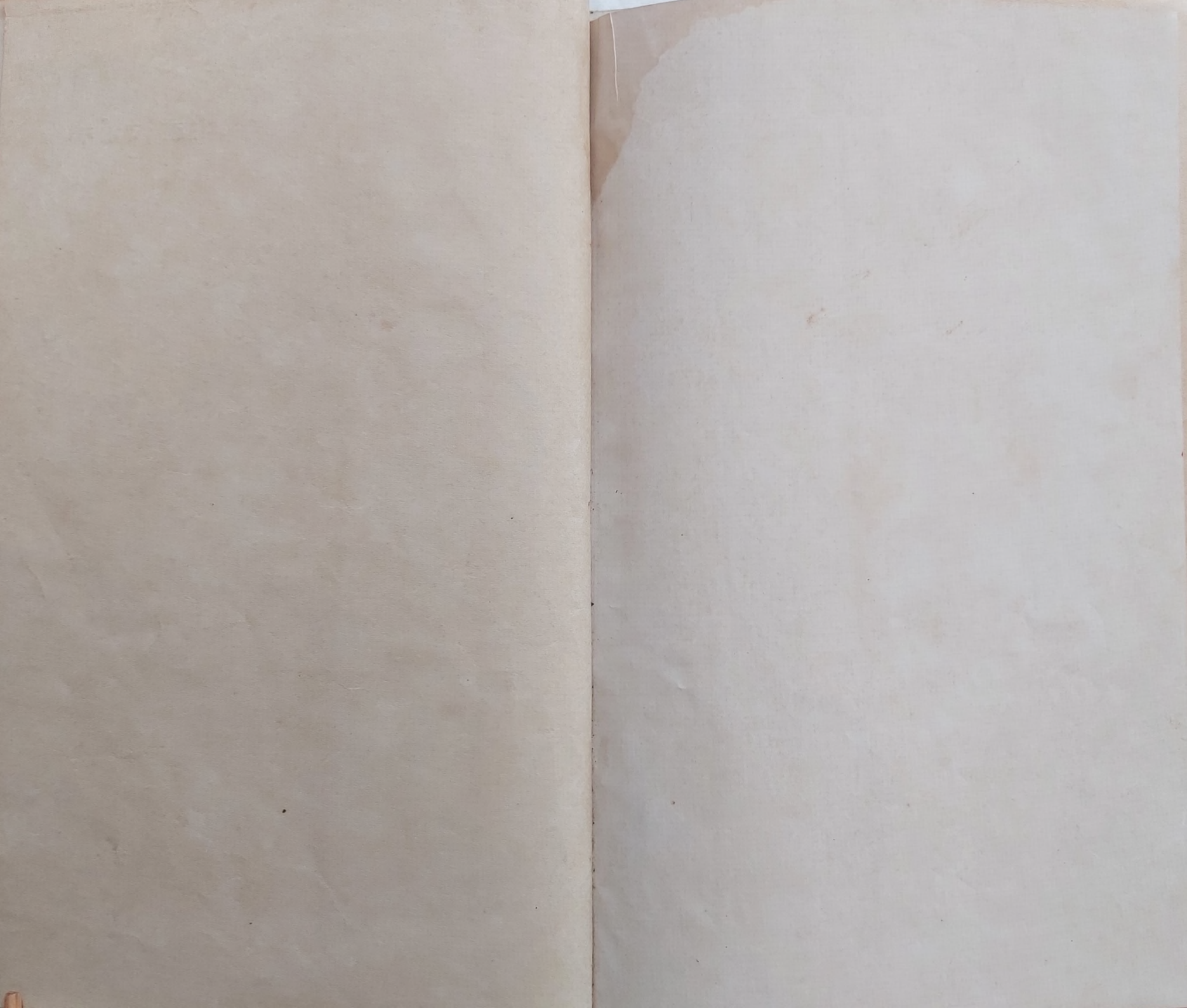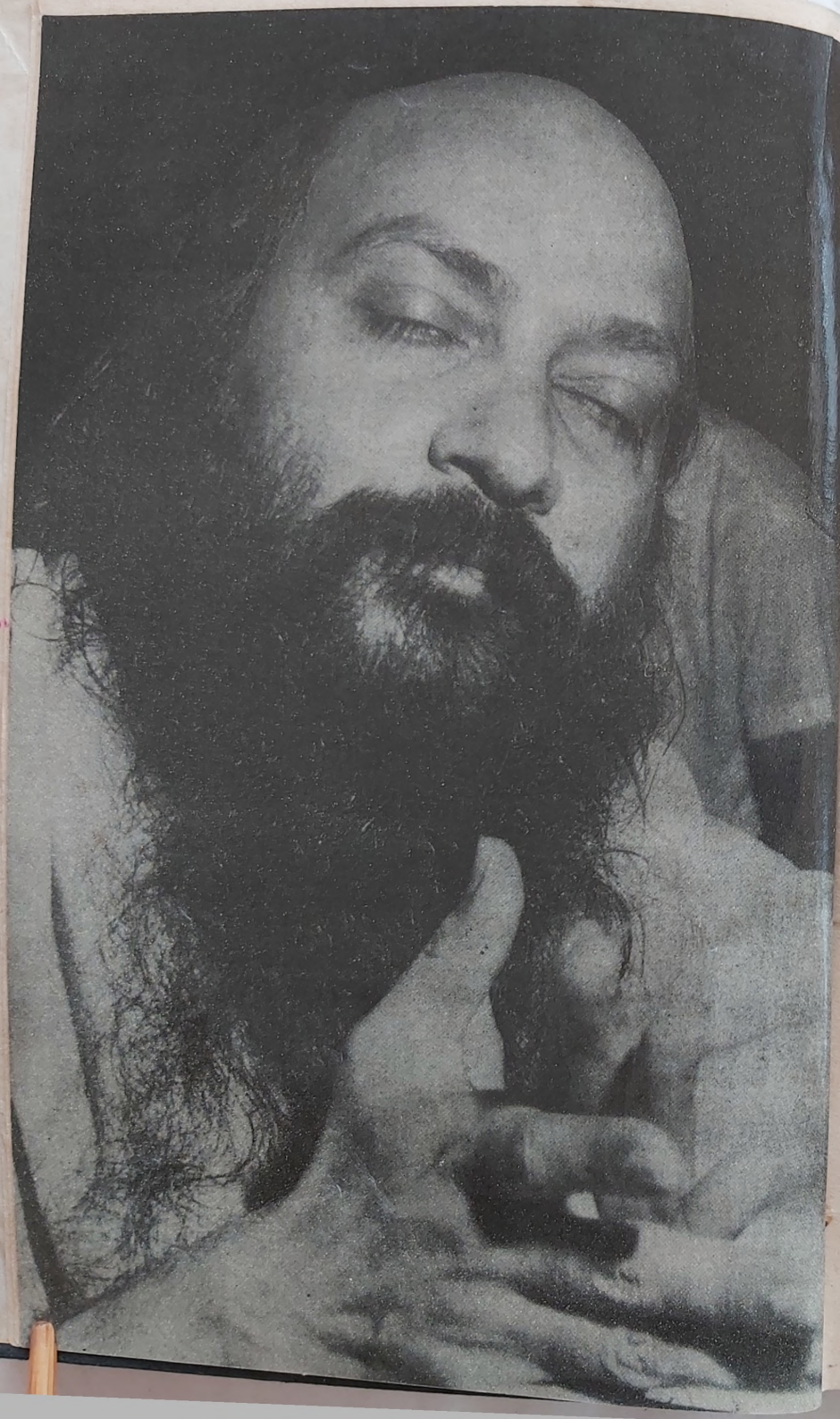
गीता-दर्शन

गीता-दर्शन

(चौथी श्रृंखला : अध्याय ७)

प्रवचन

भगवान् श्री रजनीश

•

संकलन

स्वामी अमृत वैराग्य

सम्पादन

स्वामी नरेन्द्र बोधिसत्व

जीवन जागृति आन्दोलन प्रकाशन, बम्बई

१९७३

•

आवरण-सज्जा :
नाथ वैराले

•

प्रथम संस्करण
अप्रैल, १९७३
प्रतियाँ : ३०००
मूल्य : रुपये १२.००

•

प्रकाशक :
ईश्वरलाल एन० शाह,
(साधु ईश्वर समर्पण)
मंत्री, जीवन जागृति केंद्र,
३१, इजरायल मोहल्ला,
भगवान भुवन, मस्जिद बंदर रोड,
बम्बई-९. फोन : ३२१०८५

•

मुद्रक :
अनंत जे. शाह
लिपिका प्रेस,
कुर्ला रोड, अंधेरी,
बम्बई-५९

गीता-दर्शन

गीता अध्याय ७, "ज्ञान-विज्ञानयोग" पर बंबई में दिनांक २२ से ३१ मई, १९७१ तक भगवान् श्री रजनीश द्वारा गीता-ज्ञान-यज्ञ में दिये गये १० प्रवचनों का संकलन।

विषय-सूची

❋

निष्ठा है योग

पहला प्रवचन

गीता-ज्ञान-यज्ञ, बम्बई, रात्रि, दिनांक २२ मई, १९७१

श्रीभगवानुवाच

मय्यासक्तमनाः पार्थ योगं युंजन्मदाश्रयः ।
असंशयं समग्रं मां यथा ज्ञास्यसि तच्छृणु ॥१॥

हे पार्थ, तू मेरे में अनन्य प्रेम से आसक्त हुए मनवाला और अनन्य भाव से मेरे परायण योग में लगा हुआ मुझको संपूर्ण विभूति बल ऐश्वर्यादि गुणों से युक्त सबका आत्मरूप जिस प्रकार संशयरहित जानेगा उसको सुन ।

धर्म, मौलिक रूप से जीवन के प्रति एक प्रेमपूर्ण निष्ठा का नाम है ।

जीवन के प्रति दो दृष्टियाँ हो सकती हैं; एक नकार की, इन्कार की, अस्वीकार की । दूसरी स्वीकार की, निष्ठा की, प्रीति की । जितना अहंकार होगा भीतर उतना जीवन के प्रति अस्वीकार और विरोध होता है । जितनी विनम्रता होगी उतना स्वीकार । जैसा है जीवन उसके प्रति एक भरोसा और ट्रस्ट होता है । और जीवन जहाँ ले जाय, उसका हाथ पकड़कर जाने की संशयहीन अवस्था होती है । कृष्ण इस सूत्र में अर्जुन से कह रहे हैं कि जो अनन्य भाव से, मेरे प्रति प्रेम और श्रद्धा से भरा है । अनन्य भाव को ठीक से समझ लेना जरूरी है ।

अनन्य भाव की दशा केवल परमात्मा के प्रति ही हो सकती है

प्रेम दो तरह के हो सकते हैं । एक प्रेम वैसा, जिसमें अन्य मौजूद रहता है । दूसरा, दूसरा ही रहता है और हम प्रेम करते हैं । पिता बेटे को प्रेम करता है, वह अनन्य नहीं होता । बेटा बेटा ही होता है, पिता पिता ही होता है । प्रेम में ऐसा नहीं होता कि पिता बेटा हो जाय, बेटा पिता हो जाय । भेद कायम

रहता है। अलगाव मौजूद रहता है। दोनों के बीच दीवाल बनी ही रहती है। कितनी ही पारदर्शी होती हो, कितनी ही ट्रांसपेरेन्ट हो पर दीवाल बनी ही रहती है। पति पत्नी को प्रेम करता है, मित्र मित्र को प्रेम करता है, तो भी अन्य भाव मौजूद रहता है। दी अदर, वह जो दूसरा है, कितना ही अपना मालूम पड़े, फिर भी दूसरा ही होता है, कितने ही निकट हो, फिर भी एक नहीं हो जाता। कृष्ण कहते हैं, अनन्य भाव से जो मुझे प्रेम करता, जो इस भाँति प्रेम करता है कि एक ही बचे, दो न रह जायँ। प्रार्थना और प्रेम का यही फर्क है।

जहाँ दो कायम रहते हैं, वहाँ प्रेम और जहाँ दो विलीन हो जाते हैं, वहाँ प्रार्थना है।

यह प्रार्थना का सूत्र है। अनन्य भाव की दशा केवल परमात्मा के प्रति हो सकती है, किसी व्यक्ति के प्रति नहीं हो सकती है। किसी व्यक्ति के प्रति इसलिए नहीं हो सकती कि जब भी दूसरा व्यक्ति होता है तब उसकी सीमाएँ हैं और जब हम भी उसके पास व्यक्ति की भाँति जाते हैं तो अपनी सीमाओं को साथ लेकर जाते हैं। दोनों की सीमाएँ ही दीवाल बन जाती हैं और दोनों की सीमाएँ ही दोनों को दूर करती हैं।

मनुष्य के प्रेम में हम कितने ही निकट आ जाएँ, निकट आकर भी दूरी कायम रहती है। बल्कि सच तो यह है, जितने निकट आते हैं, उतनी ही दूरी का एहसास गहन स्पष्ट होता है। प्रेमी जितने निकट आते हैं उतना ही प्रतीत होता है कि दोनों के बीच एक बड़ा फासला है जो पार नहीं किया जा सकता, अनब्रिजेबल कुछ है जिस पर कोई सेतु नहीं बन सकता। वही तो प्रेम की पीड़ा है और कष्ट है। प्रेमी दूर हो तो इतनी पीड़ा नहीं मालूम पड़ती, क्योंकि लगता है, पास आ सकते हैं। लेकिन जब प्रेमी बिल्कुल ही पास आ जाय, और पास आने का उपाय न रह जाय तब पीड़ा सघन हो जाती है। क्योंकि अब पास आने का कोई उपाय भी न रहा। जितने पास आ सकते थे, उतने पास आ गये। लेकिन फिर भी दूरी कायम है। वह दूरी सिर्फ प्रार्थना में ही टूटती है। और वह दूरी उसके साथ ही टूट सकती है, जिसकी कोई सीमा न हो। जिसकी भी सीमा है, उसके साथ वह दूरी नहीं टूट सकती है।

उस परम स्थिति में दो न बचेंगे

सिर्फ परमात्मा की तरफ ऐसा प्रेम हो सकता है जो अनन्य हो जाय, जिसमें दूसरा मौजूद न रहे। जिसमें दूसरा मिट ही जाय। लेकिन यह बड़े मजे की बात है क्योंकि जब दूसरा मिटता है तो मैं भी मिट जाता हूँ। मैं भी तभी तक हो सकता हूँ जब तक दूसरा है। जब तक तू है तभी तक मैं ही हो सकता हूँ। मैं और तू एक ही चीज के दो सिक्के हैं, दो पहलू हैं। एक को फेंक देंगे, तो दूसरा भी खो जायेगा। ऐसा नहीं हो सकता कि मैं एक को बचा लूँ और दूसरे को छोड़ दूँ।

इसलिए वेदान्त बहुत अद्भुत शब्द का उपयोग करता है, वह शब्द है अद्वैत। वेदान्त कहता है, उस परम स्थिति में ऐसा नहीं कहते हम कि एक बचेगा, हम इतना ही कहते हैं कि दो न बचेंगे। वेदान्त ऐसा भी कह सकता था कि उस परम स्थिति में एक ही बचेगा, लेकिन एक तो बच नहीं सकता बिना दूसरे के बचे। दूसरा रहेगा तो ही एक हो सकता है। इसलिए वेदान्त बड़े उल्टे ढंग से इस बात को कहता है। वह कहता है, दो न बचेंगे, अद्वैत होगा। यह नहीं कहते कि एक बचेगा, इतना ही कहते हैं कि दो न बचेंगे। अनेक लोग सोचते हैं कि जब दो न बचेंगे तो एक बच जायेगा, वहाँ भूल होती है। उस भूल को मैं आपको साफ करना चाहता हूँ।

अगर दो न बचेंगे और एक ही बच जायेगा तो फिर वेदान्त को यही कहना था कि एक बचेगा। अद्वैत की बात करनी व्यर्थ थी। कहनी थी एकत्व की बात, एक बचेगा। इसमें भी कृष्ण यह कहते हैं कि दूसरा नहीं बचेगा, दी अदर विल नाट बी, अनन्य। लेकिन अगर आप सोचते हों कि दूसरा न बचेगा तो मैं बच जाऊँगा तो आप गलत सोचते हैं। दो बचे तो ही आप बच सकते हैं। अगर दूसरा न बचा तो आप भी खो जायेंगे। आपको बचने की भी कोई जगह न बचेगी।

अनन्य भाव दशा में मालिक होने का भाव मिट जाता है

अनन्य प्रेम का अर्थ है, प्रेम ही बचेगा। न तो प्रेमी बचेगा, और न प्रेयसी बचेगी। न तो प्रेमी बचेगा, न प्रेम पात्र बचेगा। प्रेम ही बच जायेगा, सिर्फ प्रेम ही रह जायेगा। दोनों के बीच में जो है वही बचेगा और दोनों खो जायेंगे।

ऐसे अनन्य भाव को जो उपलब्ध हो उस व्यक्ति को ही कृष्ण कहते हैं वही योगी है। वही भक्त है। उसे हम जो भी नाम देना चाहें।

लेकिन जहां दोनों मिट जायँ, जहां एक भी न बचे। डर लगता है कि अगर दोनों मिट जायेंगे तो फिर तो कुछ भी न बचेगा। और मजे की बात यह है कि जब दोनों मिटते हैं तभी उसका पता चलता है जो सब कुछ है। और जब तक दोनों रहते हैं तब तक हमें कुछ भी पता नहीं चलता उसका, जो है। तब तक केवल दो बर्तनों के टकराने की आवाज सुनायी पड़ती है। इसलिए हमारे सभी प्रेम, कलह बन जाते हैं। ऐसा प्रेम हमारे जीवन में खोजना कठिन है जो कलह और कन्फिलक्ट न बन जाय। कलह बन ही जायेगा।

दो व्यक्ति प्रेम में पड़े कि जानना चाहिए कि वे कलह की तैयारी में पड़ रहे हैं। शीघ्र ही कलह प्रतीक्षा करेगी। बस दो बर्तन आवाज करेंगे, संघर्ष करेंगे, टकरायेंगे। क्योंकि जहाँ भी मैं मौजूद हूँ, जहाँ दूसरा मौजूद है वहाँ डॉमिनेशन की कोशिश जारी रहेगी। वहाँ मालकियत की कोशिश जारी रहेगी। अगर एक कमरे में हम दो आदमी को बन्द कर दें तो वह न भी बोलें, चुप भी बैठें, आँख भी बन्द रखें, तो भी उनकी दोनों की कोशिश एक दूसरे के मालिक बनने की शुरू हो जायेगी। जहाँ दूसरा मौजूद हुआ कि मालकियत शुरू हो गयी, हिंसा शुरू हो गयी। दूसरे के ऊपर हावी होने की कोशिश शुरू हो गयी।

अनन्य भाव का अर्थ है, जहाँ कोई मालकियत का सवाल नहीं, जहाँ कोई ऊपर नहीं, कोई नीचे नहीं, जहाँ दूसरा है ही नहीं। अगर दूसरा मौजूद है तो वह हमारा ही तथाकथित प्रेम है। उसे चाहे हम भक्ति कहें, लेकिन अगर दूसरा मालूम पड़ता है कि दूसरा है तो वह भक्ति नहीं है। हमारे सांसारिक प्रेम का ही थोड़ा सब्लिमेटेड, थोड़ा सा शुद्ध हुआ रूप है। रोज शुद्ध हुए रूप में सारी बीमारियाँ शुद्ध होकर मौजूद रहेंगी। और बीमारियाँ जब शुद्ध हो जाती हैं तो और भी खतरनाक हो जाती हैं। जब बीमारी पूरी शुद्ध होती है तो उनका डोज होमियोपैथिक हो जाता है, बहुत सूक्ष्म हो जाता है, बहुत प्राणों तक छेदता है।

भक्त अपने भगवानों का मुँह काला करवा देते हैं

सुना है मैंने कि एक बौद्ध भिक्षुणी अपने साथ बुद्ध की एक स्वर्ण प्रतिमा रखती थी छोटी। पर बुद्ध के प्रति प्रेम वैसा ही था जैसा कि लोगों का

लोगों के प्रति होता है। अगर कोई राम का नाम ले लेता तो उसे पीड़ा होती। अगर कोई कृष्ण का नाम ले जाता तो उसे चोट पहुँचती। अगर कोई जीसस का नाम ले देता तो वह बेचैन होती। यह कोई अनन्य भाव न था। इसमें बुद्ध भी एक दूसरे व्यक्ति थे, वह भी स्वयं और थी। और अभी ईर्ष्या कायम थी। बुद्ध का प्रेम कृष्ण के प्रति प्रेम में बाधा नहीं बनता।

लेकिन यह तो समझ में आ सकता है कि बुद्ध और कृष्ण और महावीर के बीच उसे ईर्ष्या मालूम पड़े। लेकिन एक बार वह चीन के एक मन्दिर में ठहरी जो मन्दिर सहस्र बुद्धों का मन्दिर कहलाता था। उसमें एक सहस्र बुद्ध की प्रतिमाएँ हैं। बड़ी बड़ी प्रतिमाएँ, विशालकाय। जब सुबह वह अपने बुद्ध की, अपने बुद्ध की पूजा करने बैठी तो उसके मन में हुआ कि मैं धूप जलाऊँगी लेकिन धुआँ तो यह जो बड़ी बड़ी बुद्ध की मूर्तियाँ खड़ी हैं, ये ले जायेंगी। मैं फूल चढ़ाऊँगी लेकिन सुगन्ध तो इन बड़ी बड़ी बुद्धों की मूर्तियाँ तक पहुँच जायेगी। उसके पास तो छोटे से बुद्ध थे। और हमारे पास बड़ी चीज हो भी नहीं सकती। हम इतने छोटे हैं कि हमारा भगवान भी उतना ही छोटा हो सकता है। हमसे बड़ी चीज हमारे पास नहीं हो सकती। उसको हम सम्हालेंगे कैसे? जितना छोटा उसका मन था उससे भी छोटे उसके भगवान थे। उसने मूर्ति रखी लेकिन उसे बड़ी पीड़ा हुई कि यह मैं जलाऊँगी तो धूप अपने बुद्ध के लिए, लेकिन पहुँच जायेगी न मालूम किनके बुद्धों के लिए। उसने एक बाँस की पोंगरी बनायी। धूप जलायी और बाँस की पोंगरी से धूप के धुएँ को अपने बुद्ध की नाक तक पहुँचाया। स्वभावतः जो होना था वह हो गया। बुद्ध का मुँह काला हो गया।

सभी भक्त अपने भगवानों का मुँह काला करवा देते हैं।

बुद्ध का मुँह काला हो गया। बहुत बेचैन हुई, बहुत घबड़ायी, भीड़ इकट्ठी हो गयी, रोने लगी। लोगों ने कहा, पागल तूने यह क्या किया है? उसने कहा कि यह सोचकर कि मेरे जलाये हुए धुप की सुगन्ध मेरे ही बुद्ध तक पहुँचे। उस भीड़ में खड़ा था भिक्षु, वह हँसने लगा। उसने कहा, तब, जहाँ भी अहंकार है वहाँ यह होगा ही।

यह भक्ति नहीं है, यह वही राग है। वही राग जो हम जिन्दगी में बनाते हैं और एक दूसरे का मुँह काला कर देते हैं। कलह और हिंसा और ईर्ष्या और दुख और पीड़ा, वही पूरा नर्क वहाँ भी मौजूद हो जाता है।

अनन्य भाव का अर्थ है, न भक्त बचे, न भगवान

अनन्य भाव का अर्थ है, न भक्त बचे, न भगवान बचे, भक्ति ही बच जाय। न प्रेमी बचे, न प्रेम पात्र बचे, प्रेम ही बच जाय।

और जिस दिन ऐसी घटना घटती है, और घटती है और किसी के भी जीवन में कभी भी घट सकती है। सिर्फ अपने को मिटाने की तैयारी चाहिए। तो जिस दिन ऐसी घटना घटती है उस दिन सिर्फ ऐसा नहीं होता कि यह रहा भगवान। उस दिन फिर ऐसा होता है कि ऐसी कोई जगह नहीं, जहाँ भगवान नहीं। फिर ऐसा कोई चेहरा नहीं जो भगवान का चेहरा नहीं। फिर ऐसा कोई पत्थर नहीं जो उसकी प्रतिमा नहीं और ऐसा कोई फूल नहीं जो उसका नैवेद्य नहीं। फिर सभी कुछ उसका है। फिर उसके अलावा कोई और नहीं है।

कृष्ण कहते हैं, अनन्य भाव से जो 'मुझे' प्रेम करे और जब भी कृष्ण इस पूरी चर्चा में प्रयोग करेंगे 'मुझे', तब आप थोड़ा ठीक से समझ लेना। क्योंकि कृष्ण जब भी कहते हैं 'मुझे' तो कृष्ण के पास इगो जैसी, अहंकार जैसी कोई चीज बची नहीं। इसलिए कृष्ण का 'मैं', अहंकार का सूचक नहीं है। कृष्ण के भीतर 'मैं' को रेफर करने वाली ऐसी कोई चीज नहीं बची है जैसी हमारे भीतर है। जब हम कहते हैं 'मैं' तो हमारी एक सीमा है 'मैं' की। और जब कृष्ण कहते हैं 'मैं' तो 'मैं' असीम है। यह जो विराट आकाश है, यह भी उस 'मैं' में समाया हुआ है। और यह जो फूल खिलते हैं वृक्षों के ये भी उसी 'मैं' में खिलते हैं। और यह जो पक्षी उड़ते हैं आकाश में, यह भी उसी 'मैं' में उड़ते हैं। यह 'मैं' विराट है। यह 'मैं' किसी व्यक्ति का 'मैं' नहीं है। यह मैं कृष्ण का 'मैं' नहीं है। कृष्ण का प्रयोग किया जा रहा है, केवल एक विहिकल, एक साधन की भाँति। और जब भी कृष्ण बोलते हैं तो परमात्मा बोलता है।

इसलिए बहुत बार भूल हो जाती है। कृष्ण की गीता पढ़ते वक्त बहुत लोगों को ऐसी कठिनाई होती है कि कृष्ण भी कैसे अहंकारी आदमी रहे होंगे।

अर्जुन से कहते हैं, जो 'मुझे' अनन्य भाव से प्रेम करेगा। मुझे ! अर्जुन से कहते हैं, सब छोड़कर 'मेरी' शरण में आ जायेगा। 'मेरी' शरण में ! कहते हैं अर्जुन से, 'मुझ वासुदेव' को सब भाँति समर्पित है, 'मुझ वासुदेव' को !

जो भी पढ़ते हैं, दो तरह की भूलें होती हैं। अगर वे कृष्ण के प्रति राग युक्त हैं तो वह समझते हैं कि कृष्ण, वासुदेव नाम के जो व्यक्ति हैं, उनके प्रति समर्पण करना है। यह भी भूल है, राग की भूल है। जो कृष्ण के प्रति राग युक्त नहीं है उन्हें लगता है, कृष्ण भी कैसे अहंकारी हैं, कहते हैं, मेरी शरण में आ जाओ। पर दोनों की भूल एक ही है। दोनों मान लेते हैं कि कृष्ण का 'मैं' अहंकार का सूचक और प्रतीक है।

जिसने भी कृष्ण के 'मैं' को ठीक से न समझा, वह पूरी गीता को ही समझने में असफल हो जायेगा।

इस एक छोटे से शब्द पर गीता का पूरा सार, पूरी कुंजी निर्भर करती है। अगर आप कृष्ण के 'मैं' को न समझ पाये तो पूरी गीता को ही आप न समझ पायेंगे। क्योंकि गीता कृष्ण के द्वारा कही गयी है, कृष्ण से नहीं कही गई है।

कृष्ण गीता के स्रोत नहीं हैं

गीता कृष्ण से प्रकट हुई है, कृष्ण गीता के रचयिता नहीं हैं।

गीता कृष्ण से बही है लेकिन कृष्ण गीता के स्रोत नहीं हैं, स्रोत तो परम ऊर्जा है, परम शक्ति है।

स्रोत तो भगवान् है। इसलिए कृष्ण को अगर गीताकार बार बार कहता है, भगवानुवाच, भगवान् ने ऐसा कहा तो थोड़ा सोचकर, समझ कर कहा है। यह भगवान् कहना कृष्ण को सिर्फ इसी अर्थ में है कि कृष्ण ने नहीं कहा, भगवान् ने कहा। कृष्ण से कहा है, कृष्ण के द्वारा कहा है।

भगवान् को भी चलना हो तो हमारे पैरों के अतिरिक्त उसके पास अपने कोई पैर नहीं। और भगवान् को भी बोलना हो तो हमारी वाणी के अतिरिक्त उसके पास अपनी कोई वाणी नहीं। और भगवान् को भी देखना हो तो हमारी आँखों के अतिरिक्त उसके पास देखने की कोई आँख नहीं।

लेकिन जब किसी आँख से भगवान् देखता है तो वह आँख आदमी की नहीं रह जाती। हाँ, जो नहीं जानते, उनके लिए तो फिर भी वह आंख वही रहेगी जो आदमी की थी। कृष्ण को जो आँख मिली है वह तो माँ-बाप से मिली है लेकिन आँख के पीछे जो देख रहा है वह परमात्मा है। अगर आप आँख पर रुक गये तो समझेंगे कि माँ-बाप से मिली हुई आँख है। कृष्ण को जो गला मिला है, वह तो माँ-बाप से मिला है, लेकिन जो वाणी है वह परमात्मा की है। अगर आप गले पर रुक गये तो वाणी को न पहचान पायेंगे। इसलिए कृष्ण जिस सहज मन से कहते हैं कि 'मेरी' शरण आ, ध्यान रखें, कोई अहंकारी इतने सहज भाव से नहीं कह सकता कि मेरी शरण आ।

अगर अहंकारी को आपको अपनी शरण बुलाना है तो बड़ी तरकीबों से बुलायेगा। अहंकार कभी भी इतना सीधा साफ नहीं होता। अहंकार बहुत चालाक है। अहंकारी कभी न कहेगा कि मेरी शरण आ, क्योंकि अहंकार भली भाँति जानता है कि अगर किसी से यह कहा कि मेरी शरण आ तो उस आदमी के अहंकार को चोट लगेगी और वह शरण न आ सकेगा। बल्कि वह आदमी आपको अपनी शरण में लाने की कोशिश करेगा। इसलिए अहंकारी आदमी दूसरे के अहंकार को जरा भी चोट नहीं पहुँचाता, परसुएड करता है, फुसलाता है, राजी करता है, खुशामद करता है। उसके अहंकार को इस तरह राजी करता है कि वह शरण में भी आ जाय और अहंकार को चोट भी न लगे।

लेकिन कृष्ण जितनी सरलता से और सहजता से कहते हैं, अगर ऐसा कहें तो पैराडाक्सिकल मालूम पड़ेगा, उलट बाँसुरी मालूम पड़ेगी कि कृष्ण जितनी विनम्रता से घोषणा करते हैं, 'मेरी' शरण आ, वह खबर दे रही है कि पीछे कोई अहंकार नहीं है।

अहंकार कभी भी इतना सरल नहीं होता। अहंकार हमेशा दाँवपेच करता है, जटिल होता है। तिरछे रास्तों से अहंकार यात्रा करता है, सीधा रास्ता अहंकार नहीं लेता। क्योंकि अहंकार को अनुभव है कि सीधे रास्ते से दूसरे के अहंकार को कभी भी झुकाया नहीं जा सकता। लेकिन कृष्ण बड़ी सरलता से कहते हैं कि 'मुझे' जो अनन्य भाव से समर्पित है अर्जुन, वही योग को उपलब्ध होता है। जिसकी निष्ठा मुझमें पूरी है, असंशय है, वह असंदिग्ध ज्ञान को उपलब्ध होता है। असंशय निष्ठा को भी थोड़ा सा ख्याल में ले लेना चाहिए।

एक कदम भी बिना निष्ठा के नहीं उठाया जा सकता

निष्ठा भी दो तरह की हो सकती है। संशय से निष्ठा होती है, जिसको विज्ञान में हाइपोथेटिकल कहते हैं, वह संशय निष्ठा है। एक वैज्ञानिक प्रयोग करता है। एक हाइपोथेटिकल के भरोसे, एक विश्वास के साथ। जब प्रयोग करता है तो एक विश्वास को लेकर करता है, लेकिन पूरे संशय के साथ। संशय रखता है कायम अपने भीतर ताकि जाँच कर सके कि बात सही निकली या नहीं निकली। अपने को खो नहीं देता, अपने को कायम रखता है। संशय को भी कायम रखता है, डाउट को मौजूद रखता है और फिर भी प्रयोग करता है। प्रयोग तो करेगा, निष्ठा जरूरी है। प्रयोग तो बिना निष्ठा के न हो सकेगा।

एक कदम भी बिना निष्ठा के नहीं उठाया जा सकता।

अगर आप यहाँ से घर वापस लौटेंगे तो आप इस निष्ठा से ही लौट रहे हैं कि घर उसी जगह होगा, जहाँ आप छोड़ आये थे। पता आपको हो या न हो लेकिन यह निष्ठा अन्दर खड़ी है। घर वहीं मिलेगा, जहाँ छोड़ आये थे। यह निष्ठा पीछे काम कर रही है। कल सुबह आप उठेंगे तो इसी निष्ठा से कि सूरज निकल आया होगा, जैसा कि कल निकला था। जरूरी नहीं है। किसी दिन तो ऐसा होगा कि सूरज नहीं निकलेगा। एक दिन तो ऐसा जरूर होगा कि सूरज नहीं निकलेगा। वैज्ञानिक कहते हैं, कोई चार हजार साल में सूरज ठण्डा हो जायेगा। चार हजार साल बाद किसी शरीर में आप जरूर होंगे कहीं, और किसी दिन सुबह उठेंगे और सूरज नहीं निकलेगा।

वैज्ञानिक निष्ठा तो रखता है कि सूरज निकलेगा, लेकिन ससंशय। संशय कायम रखता है कि हो सकता है कि वह दिन आज ही हो कि न निकले। वह दिन कभी भी हो सकता है। प्रयोगशाला में प्रयोग करता है तो निष्ठा तो रखता है कि प्रकृति अपने पुराने नियम से ही चलती होगी। कल भी आग ने जलाया था, आज भी जलायेगी, लेकिन जरूरी नहीं है। क्योंकि कोई पक्का कैसे हो सकता है कि कल आग ने जलाया था तो आज भी जलायेगी। तो वैज्ञानिक एक हाइपोथेटिकल बिलीफ, एक ससंशय निष्ठा के साथ प्रयोगशाला में प्रयोग करता है। विज्ञान में प्रवेश करना हो तो ससंशय निष्ठा ही मार्ग है,

लेकिन धर्म में अगर प्रवेश करना हो तो निःसंशय निष्ठा मार्ग है। निःसंशय निष्ठा बड़ी और बात है। उसे थोड़ा समझ लेना जरूरी है।

निःसंशय व्यक्ति संशय को सदा अपने पर आरोपित करेगा

निःसंशय निष्ठा का अर्थ यह है कि अगर विपरीत भी हो, अगर आज सूरज न निकले तो भी जो निष्ठावान है, जिसकी कृष्ण बात कर रहे हैं, वैसा निष्ठावान व्यक्ति समझेगा कि मेरी आँख में खराबी है, सूरज तो निकला ही होगा। आप फर्क समझ लेना। अगर कल सुबह ऐसा हो कि सूरज न निकले तो निष्ठावान व्यक्ति कहेगा कि मेरी आँख में कोई खराबी है, सूरज तो निकला ही होगा। अगर निष्ठावान व्यक्ति घर वापस पहुँचे और पाये कि उसका घर वहाँ से हट गया है तो निष्ठावान व्यक्ति कहेगा, घर तो वहीं होगा, मैं ही भटक गया हूँ।

फर्क यह है कि संशय वाला व्यक्ति संशय हमेशा बाहर आरोपित करेगा और निःसंशय व्यक्ति संशय को सदा अपने पर आरोपित करेगा। संशयवान व्यक्ति सदा भूल कहीं और खोजेगा, निःसंशय व्यक्ति सदा भूल अपने में खोजेगा। निष्ठावान, निःसंशयी, निष्ठावान व्यक्ति अपने अतिरिक्त जगत् में कहीं भूल नहीं देखेगा। अगर भूल होगी कहीं तो मुझमें होगी, और कहीं नहीं। जीवन में जो भी घटेगा, चाहे सुख, चाहे दुख उससे उसकी निष्ठा में कोई डाँवाडोल स्थिति, कोई कंपन पैदा नहीं होगा। अगर जीवन पूरा दुख भी बन जाय तो भी वैसा व्यक्ति जानेगा कि कहीं उसकी ही भूल है, परमात्मा की कृपा में कोई अंतर नहीं है। कहीं मैं ही चूक रहा हूँ, उसका प्रसाद तो बरस रहा है। कहीं मेरा ही बर्तन उल्टा रखा होगा। उसकी बरसा तो जारी है।

संशयवान व्यक्ति का बर्तन भी उल्टा रखा हो, बरसा भी हो रही हो, तो भी वह यही कहेगा कि मुझमें पानी नहीं भर रहा है। इससे साफ जाहिर है कि बरसा नहीं हो रही है। इस भेद को ठीक से समझ लेना, क्योंकि यह भेद धर्म में प्रवेश में अन्तर लायेगा।

धर्म का मौलिक आधार व्यक्ति का रूपांतरण है

क्योंकि धर्म का मौलिक आधार व्यक्ति का रूपांतरण है। विज्ञान का मौलिक आधार वस्तु का रूपांतरण है।

विज्ञान की खोज वस्तु की खोज है, धर्म की खोज व्यक्ति की खोज है।

इसलिए उचित है कि विज्ञान वस्तु के भीतर भूलचूक देखे और उचित है कि धर्म व्यक्ति के भीतर भूलचूक देखे। अगर आपका डाउट अदर ओरियन्टेड है, दूसरे पर ठहरा हुआ है तो आपका चित्त वस्तु के सम्बन्ध में बहुत सी बातें खोज लेगा लेकिन स्वयं के सम्बन्ध में कुछ भी न खोज पायेगा। इसलिए धर्म और विज्ञान के आयाम, डायमेंशन अलग हैं।

कृष्ण कहते हैं जो निःसंशय होकर मुझमें निष्ठा रखता है। बड़ी कठिन है यह बात, निःसंशय होकर निष्ठा कैसे रखी जा सकती है। निःसंशय होकर हम निष्ठा रखेंगे, यह संभव ही कहाँ मालूम पड़ता है। आज किसी भी व्यक्ति से कृष्ण यह कहेंगे तो वह कहेंगे कि आप असंभव की आकांक्षा करते हैं। यह नहीं हो सकेगा। मैं कैसे सब छोड़ दूँ ?

लेकिन जब कृष्ण ने अर्जुन से यह कहा था तो अर्जुन ने ऐसा सवाल नहीं उठाया, यह थोड़ा विचारणीय है। अर्जुन उस जमाने के सुशिक्षितम लोगों में से एक था। सभ्यतम, कुलीनतम, उस समाज में जो श्रेष्ठतम जन थे, उन श्रेष्ठियों में, उन आर्यों में एक था। कृष्ण ने बहुत बार यह कहा है कि तू सब शंकाएँ छोड़कर मुझ पर निष्ठा कर ले। अर्जुन यह कहता है कि मन बड़ा चंचल है, मन ठहरता नहीं। लेकिन कहीं भी अर्जुन यह नहीं कहता, यह बड़ी आश्चर्य की बात है कि मैं कैसे आप पर निष्ठा कर लूँ। निष्ठा कैसे संभव है। अर्जुन यह जरूर कहता है कि मेरी कमजोरियाँ हैं। आप जो कहते हैं, ठीक कहते हैं, ठीक ही कहते होंगे, मेरी कमजोरियाँ हैं। मैं न कर पाऊँ, शायद न कर पाऊँ। लेकिन अर्जुन एक भी बार यह सवाल नहीं उठाता, जो कि बहुत जरूरी है। हमारे मन में उठेगा और अर्जुन तो उस समय का श्रेष्ठतम व्यक्ति था। आज अगर हम छोटे बच्चे से भी पूछें, तो उसके मन में भी उठेगा कि भरोसा! यह तो ब्लाइंड फेथ हो जायेगा, यह तो अन्धा विश्वास हो जायेगा। यह तो कृष्ण अन्धेपन की शिक्षा दे रहे हैं। हमारे मन में यह उठता है, अर्जुन के मन में यह नहीं उठता, कुछ कारण होंगे। कुछ कारण हैं।

आदमी वही है, संस्कार बदले हैं

सबसे बड़ा कारण यह नहीं है कि आदमी बदल गया। सबसे बड़ा कारण यह है कि आदमी की कण्डीशनिंग, संस्कार बदल गये, आदमी तो वही है। जब आपके मन में यह सवाल उठता है कि यह तो अन्धेपन की शिक्षा है, हम भरोसा कर लें, आँख बन्द करके शंका भी न करें, संदेह भी न करें तब तो हम मिटे। असल में आपको मिटाने के लिए ही सारा आयोजन है।

अगर धर्म के जगत् में प्रवेश करना है तो स्वयं को मिटने की, मिटाने की सामर्थ्य चाहिए।

अगर आप अपने को बचाते हैं तो फिर भीतर प्रवेश न हो सकेगा। इसलिए द्वार पर ही लिखा है कि जो निःसंशय श्रद्धा कर सके, वह भीतर आ जाय। जिसकी अभी शंका मौजूद हो वह थोड़ा और घूमे, मंदिर के बाहर थोड़ा और चक्कर लगाये। वह थोड़ा और दौड़े, वह और अपनी शंकाओं को थोड़ा थका ले और जब शंका से कुछ न पाये, और आदमी ने शंका से कुछ पाया नहीं। हाँ, वस्तुएँ मिलेंगी, धन मिलेगा, पद मिलेगा, लेकिन पाने जैसा कुछ न मिलेगा। जिस दिन शंका थक जाय और ऐसा लगे कि शंका से कुछ मिला नहीं, उस दिन भीतर प्रवेश कर जाना, उस दिन भीतर चले जाना उस मंदिर के जहाँ शंका को बाहर रख आना पड़ता है।

आदमी वही है, संस्कार बदले हैं।

आज की पूरी शिक्षा विज्ञान की है इसलिए सवाल उठता है। सवाल आप नहीं उठा रहे हैं। शिक्षा उठा रही है। चूँकि सारी शिक्षा डाउट की है, सारी शिक्षा संदेह की है। छोटे से बच्चे को हम संदेह करना सीखा रहे हैं। जरूरी है विज्ञान की शिक्षा के लिए, अन्यथा विज्ञान खड़ा नहीं होगा। इसीलिए भारत में विज्ञान खड़ा नहीं हो सका। क्योंकि जिस देश ने गीता में भरोसा किया वह देश विज्ञान पैदा नहीं कर पायेगा। लेकिन पश्चिम में धर्म डूब गया। क्योंकि जो चिन्तना संदेह में भरोसा करेगी वह धर्म से वंचित रह जायेगी।

शायद हम नुकसान में नहीं हैं

और अगर लंबे हिसाब में तौला जाय तो शायद हम नुकसान में नहीं हैं। और शायद इस सदी के पूरे होते होते हमें पता चलेगा कि हम फायदे में हैं।

कभी कभी उल्टा हो जाता है। अभी तो हमें लगता है कि हम बड़े नुकसान में पड़ गये हैं। न विज्ञान है, न टेकनिक है हमारे पास, गरीबी ज्यादा है, मुसीबत ज्यादा है। लेकिन कोई नहीं कह सकता कि इस सदी के घूमते ही, इस सदी के जाते ही पश्चिम भारी मुसीबत में नहीं पड़ जायेगा। पड जायेगा, पड़ रहा है। क्योंकि संदेह न करके हमने बाहर की बहुत सी चीजें खोयीं लेकिन श्रद्धा रखकर हमने भीतर का एक द्वार खुला रखा। पश्चिम ने संदेह करके बाहर की बहुत चीजें पायीं लेकिन भीतर जाने वाले द्वार पर जंग पड़ गयी है, वह बिल्कुल ही बन्द हो गया है। आज कितना ही ठोंको, पीटो, खटखटाओ, वह खुलता हुआ मालूम नहीं पड़ता। हालत ऐसी हो गयी कि भीतर जाने वाला कोई द्वार भी है, ऐसा भी मालूम नहीं पड़ता। द्वार इतना मजबूती से बन्द है, इतने दिनों से बन्द है कि करीब करीब दीवाल हो गया, कहीं कोई द्वार नहीं मालूम पड़ता।

जिन्दगी कभी-कभी अनूठे मजाक करती है

याद आता है मुझे कि एक बार पिछले महायुद्ध के समय चीन में ऐसा हुआ। दो भाइयों का बँटवारा हुआ। बाप मरणशैया पर था, तो बाप ने बँटवारा कर दिया। एक एक लाख रुपये दोनों भाइयों के हाथ में लगे। एक भाई ने तो बहुत मेहनत करनी शुरू कर दी, रुपयों में से, एक एक पैसा बचाकर, जीवन दाँव पर लगाकर कमाने में लग गया। दूसरे भाई ने तो लाख रुपये की शराब पी डाली। सिर्फ शराब की बोतलें भर उसके पास इकट्ठी हो गयीं। स्वभावतः जिसने शराब पी थीं, सारे लोगों ने कहा कि बर्बाद हो गये, मिट गये। लेकिन वहाँ कोई सुनने वाला भी नहीं था, वह तो इतना पिये रहता था कि कौन बर्बाद हो गया, कौन मिट गया, किसके सम्बन्ध में बात कर रहे हैं, कुछ पता नहीं था। पर बोतलें जरूर इकट्ठी होती चलीं गयीं। और जिन्दगी बड़े मजाक करती है कभी, और मजाक हुआ। जिस भाई ने लाख रुपया धन्धे में लगाया था उसका तो लाख रुपया डूब गया। और युद्ध आया और शराब की बोतलों के दाम बहुत बढ़ गये और उस आदमी ने सब बोतलें बेच लीं और कहते हैं कि लाख रुपये उसको वापस मिल गये। लाख रुपये की बोतलें बेच लीं उसने। जिन्दगी कभी कभी अनूठे मजाक करती है। करीब करीब यह सदी पूरी होते होते ऐसा ही मजाक जिन्दगी में घटित होनेवाला है।

यह पूरब ने, भीतर का एक द्वार तो खुला रखा, बाहर का सब कुछ खो दिया। निश्चित ही, हम नासमझ सिद्ध हुए। हमारे पास कुछ है नहीं। हमने

भी एक तरह की शराब पी, जिसको भीतरी शराब कहें। और ऐसा मैं कह रहा हूँ, ऐसा नहीं, जो भी जानने वाले हैं वे यही कहते रहे हैं कि एक शराब है, एक नशा है, एक मदहोशी है भीतर भी, जहाँ डूबकर कोई वापस लौटता नहीं।

उमर खैयाम ने उसी के गीत गाये हैं लेकिन लोग समझे नहीं। उमर खैयाम एक सूफी फकीर था। लोग समझें कि वह इसी मधुशाला की बात कर रहा है, जो बाजार में खुली हुई है। वह तो उस मधुशाला की बात कर रहा है जो भीतर खुलती है। वह तो उस पीने और पिलाने की बात कर रहा है जो परमात्मा का नशा है।

भीतर का यह द्वार तो श्रद्धा से खुलता है।

श्रद्धा का अर्थ है, असंशय निष्ठा। लेकिन शिक्षण पूरा विज्ञान का है इसलिए हमारा मन संदेह के सवाल उठाता है, स्वाभाविक है। उस जमाने में विज्ञान का कोई शिक्षण न था, शिक्षण धर्म का था, इसलिए अर्जुन ने कोई सवाल न उठाया।

जो भी आयेगा उसको बाँट लेंगे

अभी मैं एक छोटे से बच्चे का जीवन पढ़ रहा हूँ। उस बच्चे ने बड़ी हैरानी का प्रयोग किया है। बारह साल का लड़का घुमक्कड़ जिप्सियों के साथ भाग गया। उसके पिता ने उसको सहायता दी। कहना चाहिए, पिता ने उसे भगाया जिप्सियों के साथ। यह जानने के लिए कि छः साल वह बच्चा जिप्सियों के साथ रहेगा तो जिप्सियों के आंतरिक जिंदगी के रहस्य का पता लगा लायेगा। क्योंकि जिप्सियों के सम्बन्ध में जो भी लिखा गया है वह बाहर के लोगों की लिखावट है। और जब तक हम किसी को भीतर से न जाने, सच्चाइयों का कोई पता नहीं चलता। तो उस बच्चे को भगा दिया जिप्सियों के साथ।

जिप्सियों का एक कबीला ठहरा है गाँव के बाहर। उसके बच्चों से दोस्ती करवा दी, बारह साल के बच्चे की। उस बारह साल के बच्चे को मुसीबत की दुनिया में, यात्रा पर भेज दिया। वह बच्चा भाग गया। उस बच्चे ने जो अपने संस्मरण लिखे हैं उसमें से एक बात इस सम्बन्ध में आप से कहना चाहता हूँ।

जिप्सियों के पास कोई मकान नहीं है। घुमक्कड़ कौम है, खानाबदोश। यह खानाबदोश शब्द अच्छा है। इसका मतलब होता है, जिसका मकान खुद के कन्धे पर है—खानाबदोश। दोश यानी कन्धा, खाना यानी मकान। और जिसके कन्धे पर अपना मकान है उसको कहते हैं, खानाबदोश। तो जिप्सियों का तो कोई घर नहीं है। आज इस गाँव में, कल दूसरे गाँव में, परसों तीसरे गाँव में। घुमक्कड़ कौम है। निश्चित ही प्राइवेसी की कोई धारणा जिप्सियों में नहीं है, एकान्त की हो भी नहीं सकती। रात खुले आकाश के नीचे सोते हैं सब। एकान्त का कोई सवाल ही नहीं है। प्रेम भी करना हो तो खुले आकाश के नीचे ही करना पड़ेगा। कोई उपाय नहीं है।

यह बच्चा पहले ही दो चार आठ दिनों में जब जिप्सियों के साथ रहा, उसे जब भी पेशाब करनी हो, वह अकेले में जाकर किसी वृक्ष के नीचे बैठ जाय। जिप्सी बच्चों ने उसे बहुत बुरा माना और कहा कि तुम बहुत गलत बात करते हो। उसने कहा कि इसमें कौन सी गलत बात है? उन बच्चों ने कहा, यह बिल्कुल गलत बात है, सब काम बाँटकर करने चाहिए। उसने कहा, अजीब पागलपन की बात कर रहे हो। इसको कैसे बाँटा जा सकता है? उन्होंने कहा, हम भी साथ दे सकते हैं, हम भी कोआपरेट कर सकते हैं। जब तुम जाते हो, हमसे भी कह सकते हो कि तुम भी चलो, लेकिन तुम अकेले ही चले जाते हो। उस बच्चे ने कहा, लेकिन हमारे घर में तो बाथरूम होता है, हम अन्दर जाकर बन्द करके ही अपनी शंका का निवारण करते हैं। वे जिप्सी बच्चे बहुत हँसे, वे बोले, कैसे नासमझ हो तुम सब। क्योंकि कोई भी आदमी उठकर बाथरूम में जायेगा तो सबको पता है कि वह क्या करने गया? जब पता ही है तो छिपाने से फायदा क्या है?

इस बच्चे को बड़ी कठिनाइयाँ आयीं, क्योंकि इसको समझ में ही न आये, क्योंकि जिप्सियों के सोचने का ढंग और है, उनके संस्कार और हैं, ग्रुप माइण्ड है, इण्डीवीजुअल का कोई सवाल नहीं है, व्यक्ति का कोई सवाल नहीं है। समूह मन है, जो भी आयेगा, बाँट कर खायेंगे, जो भी मुसीबत होगी, वह भी बाँट लेंगे। जो भी सुख आयेगा, उसको भी बाँट लेंगे। साथ जीयेंगे। तो ख्याल ही नहीं है कि कोई आदमी व्यक्तिगत कोई काम भी कर सकता है। तो बच्चों को सवाल उठा कि तुम व्यक्तिगत जाकर कोई काम कैसे कर सकते हो? यह असंभव है।

हमारे मन में संस्कारों के अनुसार ही सवाल उठते हैं

हमारे मन में वही सवाल उठते हैं जो हमारा संस्कार हो जाता है।

जैसे जिप्सियों के साथ रहकर इस बच्चे को पता चला कि चोरी वह बुरा नहीं मानते। हाँ, उस चोरी को बुरा मानते हैं जिसको कोई संग्रह करे। जैसे कोई आदमी चोरी कर लाये और संग्रह कर ले, चुपचाप छिपा ले और सबको न बाँटे तो बुरा मानते हैं। या कोई ऐसी चीज चुरा लाये जिसका आज उपयोग न हो, छः महीने बाद उसका उपयोग हो तो उसको भी बुरा मानते हैं। लेकिन कोई आदमी जाकर खेत से घास तोड़ लाये तो जिप्सी उसे बुरा नहीं मानते।

और जब पहली दफा इस बच्चे के सामने पुलिस आयी और जिप्सियों को पकड़ा, क्योंकि उन्होंने अपने घोड़ों के लिए किसी खेत से घास काट लिया था। तो जिसने काटा था उसने कहा, इसमें चोरी कहाँ है? घास तुम तो नहीं बढ़ाते, परमात्मा बढ़ाता है। जमीन परमात्मा की, आकाश परमात्मा का, सूरज परमात्मा का, घोड़े परमात्मा के, तुम परमात्मा के, हम परमात्मा के। तुमने कोई घास तो बढ़ाया नहीं। हाँ, अगर हम घास इकट्ठा कर रहे हों, घोड़ों को खिलाने से ज्यादा इकट्ठा कर रहे हों तो हम जुर्मी हैं। लेकिन इसमें चोरी कैसी? जिप्सी को समझ में नहीं आता कि इसमें चोरी कैसी, क्योंकि व्यक्तिगत सम्पत्ति की धारणा उसके मन में नहीं है। व्यक्तिगत सम्पत्ति जैसी कोई चीज ही नहीं है। धारणा भी कैसे होगी? हमारे मन में ख्याल उठता है, चोरी हो गयी क्योंकि हमारा संस्कार है एक।

हम सब के मन में संदेह का संस्कार है

आज हम सारी दुनिया में विज्ञान का संस्कार दे रहे हैं बच्चों को।

हम सब के मन में सन्देह का संस्कार है।

संशय हमारे द्वार पर खड़ा है। संशय के बिना हम एक कदम चलते नहीं। लेकिन कृष्ण ने जब यह शिक्षा दी तब आदमी के द्वार पर संशय की जगह श्रद्धा थी। पूरा द्वार बदल गया, आदमी वही है। इसलिए आप जब गीता को पढ़ते हैं, आपके काम नहीं पड़ेगी। क्योंकि आपके दरवाजे पर पहरेदार खड़ा है वह बिल्कुल बदल गया है। वह गीता को भीतर प्रवेश ही न करने देगा। आप

रट भी लेंगे, कण्ठस्थ भी कर लेंगे, दोहराने भी लगेंगे, लेकिन हृदय के भीतर गीता का कोई प्रवेश न होगा। क्योंकि वह प्रवेश तभी हो सकता है जब कृष्ण की शर्त पूरी हो। वह कहते हैं, असंशय। लेकिन असंशय कैसे आयेगा! क्या मैं जबरदस्ती कोशिश कर लूँ कि संशय को छोड़ दूँ?

आज संशय टूट सकता है, यदि पूरी तरह कर लें

नहीं, आज इसका कोई उपाय नहीं है कि हम कोशिश करके संशय को छोड़ दें। आज कोशिश करके संशय नहीं छोड़ा जा सकता।

आज तो आप संशय पूरी तरह से कर लें तो ही संशय छूट सकता है।

इतना पूरी तरह से संशय कर लें कि थक जायँ, एक्जास्टेड, ऊब जायँ, घबड़ा जायँ। और संशय इतना कर लें कि कहीं न पहुँचें सिवाय नर्क के, दुख ही दुख चारों तरफ खड़ा हो जाय। इतना संशय कर लें कि काँटे ही काँटे संशय के सब तरफ से छिद जायँ और भीतर जिन्दगी में कोई सुख का फूल न खिले। संशय कर लें पूरा, टोटल तो शायद; तो शायद संशय से ऊब जायँ और पार हो जायँ। तो शायद संशय किसी क्षण में गिर जाय और आप बाहर हो जायँ। और वह निस्संशय स्थिति बन जाय, जो कृष्ण कहते हैं पहली शर्त है। और इतना निस्संशय हो जाय अर्जुन, तू फिर इतना निस्संशय होकर मुझे सुन।

बड़ी मजे की बात है, सुनने के लिए इतनी शर्त। कहते हैं, इतना निस्संशय होकर, इतना अनन्य होकर फिर तू मुझे सुन। अगर सुनने के ऊपर इतनी शर्त है तब तो हममें से कोई भी सुनने में समर्थ नहीं है। हम सब सोचते हैं कि हम सब सुनने में समर्थ हैं, क्योंकि कान हमारे पास हैं, क्योंकि ध्वनि हमारे कान में पहुँच जाती है तो हम समझते हैं, हम सुनने में समर्थ हैं। हम सब सुनने में समर्थ नहीं हैं। कान पर आवाज पड़ती है जरूर, ध्वनि पैदा होती है जरूर। लेकिन सुनना और आन्तरिक घटना है।

जीवन के गहन सत्य संशय-शून्य को ही कहे जा सकते हैं

कृष्ण कहते हैं, इतनी शर्त तू पूरी कर, अनन्य भाव से भर जा, असंशय, निष्ठा होते ही मन में तू मुझे सुन पायेगा। फिर सुन, क्योंकि फिर मैं तुझे राज खोल सकता हूँ वे, जो बुद्धि के लिए नहीं खोले जा सकते। फिर मैं रहस्य

खोल सकता हूँ तेरे समक्ष, जो केवल हृदय के समक्ष खोले जाते हैं, तर्क के समक्ष नहीं खोले जाते। फिर मैं तुझसे कह सकूँगा वह आन्तरिक बात जो केवल प्रेम में ही कही जाती है, जो विवाद में नहीं कही जाती।

और जिन्दगी में गहरे जो सत्य हैं वह विवाद में नहीं कहे जाते।

वह प्रेम में ही कहे जा सकते हैं। एक सिम्पेथेटिक एटीट्यूट, एक सहानुभूति से भरे हुए हृदय से ही कहे जा सकते हैं। जीवन के जो भी गहन सत्य हैं, वे अनन्य भाव दशा में ही कहे जा सकते हैं क्योंकि तभी कम्युनिकेशन होता है, तभी एक बात दूसरे तक पहुँचती है।

अन्यथा हम—जैसे युद्ध के मैदान पर सिपाही खड़े होते हैं, ऐसे बोलने और सुनने वाले भी खड़े हों, और अक्सर ऐसे ही खड़े होते हैं अपनी रक्षा में तत्पर। दोनों के द्वार बन्द। आवाज गूँजती है, संवाद नहीं होता। शब्द बिखर जाते हैं, कोई प्रतीति नहीं आती। बहुत सुना जाता है, कुछ पल्ले नहीं पड़ता, सब खाली खाली रह जाता है।

यह शर्त कीमती है और यह शर्त इसलिए है कि कृष्ण कुछ ऐसी बात कहना चाहते हैं अर्जुन से जो तर्क और संशय से भरे चित्त को नहीं कही जा सकती। सिर्फ उसे ही कही जा सकती है जो बिल्कुल खुल के बैठा है, ओपन। जिसकी कोई क्लोजिंग नहीं है। जिसका कोई डिफेंस, जिसकी कोई सुरक्षा नहीं है। जो इतने भरोसे से भरा है कि अगर उसकी छाती में छुरा भोंक दो तो वह छुरे को भी स्वीकार कर लेगा। अनन्य प्रेम, छाती में छुरा भी भोंक दो तो स्वीकार कर लेगा। और सोचेगा, मेरे हित में होगा, इसीलिए। जो अपनी छाती में छुरा लेने को तैयार है उसी की छाती में सत्य भी प्रवेश करते है।

जो घर वारे आपना, चले हमारे संग

कबीर ने कहा है; "जो घर वारे आपना, चले हमारे संग।" तैयारी हो अगर अपने घर को जला डालने की तो आओ मेरे साथ। कौन सा घर? कबीर ने कभी किसी का घर जलाया नहीं। एक और घर है हमारे चारों तरफ सुरक्षा का, जैसे कि सिपाही अपने चारों तरफ जिरह बख्तर बाँध कर युद्ध के मैदान पर जाता है। हम सब भी एक बड़ा जिरह बख्तर अपने चारों तरफ बाँधे हुए तैयार रहते हैं कि कहीं कोई ऐसी बात प्रवेश न कर जाय कि हमारी

सुरक्षा खतरे में पड़ जाय। कहीं कोई ऐसा सत्य भीतर न चला जाय कि हमारी जिन्दगी हमें बदलनी पड़े। कहीं कोई ऐसी प्रेरणा न मिल जाय कि हमें कुछ और होना पड़े। कहीं कोई हमारा जो एस्टेब्लिश्ड, हमारा जो व्यवस्थित जगत् है उसमें कोई गड़बड़ न हो जाय।

एक मित्र परसों मेरे पास आये थे। उन्होंने मुझे कहा कि मैं आपकी बात सुनने आना चाहता हूँ लेकिन जब से आपने संन्यास की बात की है तब से मन में भय लगता है। क्या भय की बात है? उन्होंने कहा, भय लगता है कि कहीं किसी दिन मुझे भी समझ में आ जाय कि संन्यास लेना है, तो फिर क्या होगा? अब यह आदमी अगर मुझे सुनने आये होंगे—जरूर आये होंगे, सदा आते हैं। तो जिरह बख्तर बाँध कर बैठे होंगे कि कहीं कोई बात भीतर न चली जाय। कैसा मजा है। बात सुननी भी है और भीतर नहीं भी जाने देनी है तो व्यर्थ मेहनत क्यों करनी है? मत सुनें बेहतर है, सुनें तो फिर भीतर प्रवेश करने दें।

सत्य के लिए द्वार चाहिए

तो कृष्ण कहते हैं, यह पहली शर्त है। पुराने समस्त गुरू शर्त पहले लगा देते थे। कहते थे, पहले ये शर्तें पूरी कर दो, फिर हम तुमसे कहेंगे। क्योंकि कहीं ऐसा न हो कि तुम बेकार हमारा समय जाया करो। अगर सूफी फकीर के पास आप सीखने जायें तो कहेगा, दो साल घर में झाड़ू बुहारी लगाते रहो। आप कहेंगे, मैं सत्य खोजने आया हूँ, झाड़ू बुहारी नहीं। तो वह कहेगा सत्य की खोज का यह पहला चरण हुआ। तुम दो साल झाड़ू बुहारी लगाओ, बीच में मुझसे पूछना मत। लगाते रहना। जब मैं समझूँगा कि वह वक्त आ गया, जब मैं तुझसे कहूँ, द टाइम इज राइट, समय पक गया, तब मैं तुमसे कह दूँगा। भाग जायेंगे हम तो तभी।

सुना है मैंने कि एक सूफी फकीर के पास एक आदमी आया और उसने कहा कि मैं सत्य की खोज में आया हूँ। उस फकीर ने कहा, यह खोज बड़ी कठिन है। तुम्हारी तैयारी पूरी है? उसने कहा, मेरी तैयारी पूरी है। तो फकीर ने कहा, अपना नाम पता लिखा दो कि अगर इस खोज में तुम मर जाओ तो तुम्हारे अस्थिपंजर मैं कहाँ भेजूँ। ह्वेयर शुड आई सेंट दि रिमेंस, जो बच रहे पीछे, उसे मैं कहाँ भेजूँ? उस आदमी ने कहा, अगर आप बुरा न मानें तो मैं अस्थिपंजर खुद ही लिये जाता हूँ और वह भाग खड़ा हुआ। आपको

कष्ट होगा भेजने का, मैं खुद ही लिये जाता हूँ। उसने सोचा भी न था कि सत्य की खोज में कभी अस्थिपंजर भी भेजने की जरूरत पड़ सकती है। वह भी नहीं समझा। अस्थिपंजर से उस फकीर का मतलब बड़ा गहरा रहा होगा।

वह जो हम अपने चारों तरफ बाँधे हैं, जिसकी वजह से हम सब तरह से कट जाते हैं। एक आइलैंड, एक द्वीप की तरह बन जाते हैं सब तरह से टूट कर, अलग खड़े हो जाते हैं। उसमें सत्य प्रवेश नहीं करेगा।

सत्य के लिए द्वार चाहिए।

इसलिए कृष्ण कहते हैं, इतनी तैयारी हो अर्जुन तो फिर सुन।

भगवान् श्री, अनन्य प्रेम को यहाँ मूल संस्कृत में कहा गया है "आसक्तमना"। मेरे में आसक्त मन वाले का कैसा आध्यात्मिक अर्थ होगा? इसे कृपया स्पष्ट करें।

शब्द तो वही रहते हैं। रुख बदल जाय तो सब बदल जाता है।

परमात्मा में आसक्त मन वाला, और परमात्मा में आसक्त मन वाला जब हम कहेंगे तो आसक्त शब्द का वही अर्थ न रह जायेगा, जो धन में आसक्त वाला, यश में आसक्त वाला है। शब्द तो बदल जाते हैं तत्काल जैसे ही उनका आयाम बदलता है। हमारे पास शब्द तो थोड़े हैं। और हमारे सब शब्द जूठे हैं। कृष्ण के पास भी कोई उपाय नहीं है नये शब्दों के बोलने का। हमारे ही शब्दों का उपयोग करना है। अगर कहेंगे प्रेम, तो हमारे मन में जो ख्याल आता है वह हमारे ही प्रेम का आता है। अगर कहेंगे आसक्त, तो हमारे मन में जो अर्थ आता है वह हमारी ही आसक्ति का आता है। लेकिन जो शर्त लगी है, परमात्मा में आसक्त मन वाला। परमात्मा में कौन होता है आसक्त?

तो कृष्ण ने पहले बहुत व्याख्या की है उसकी कि जो सब भाँति अनासक्त हो गया वही परमात्मा में आसक्त होता है।

परमात्मा में आसक्ति का मतलब है, पूर्ण अनासक्ति

परमात्मा में आसक्ति का मतलब है, पूर्ण अनासक्ति।

पूर्ण अनासक्ति न हो तो परमात्मा में आसक्ति न होगी। जरा सी भी आसक्ति अगर कहीं बची हो तो परमात्मा में आसक्ति न होगी। तो चाहे हम कहें आसक्ति।

आसक्ति का अर्थ है, जिसमें हम आकर्षित हो रहे हैं। जिसमें हम खींचे जा रहे हैं, जिसमें हम बुलाये जा रहे हैं, जिसमें हम पुकारे जा रहे हैं, जिसके बिना हम न जी सकेंगे। तो चाहे कहें आसक्ति, चाहे कहें प्रेम, चाहे कहें अनन्य राग, चाहे कहें भक्ति, इसमें कोई अन्तर नहीं पड़ता। इतना ही प्रयोजन है कि जो परमात्मा की तरफ खिंचा जा रहा है। जिसके आकर्षण का बिन्दु परमात्मा हो गया। परमात्मा का क्या अर्थ होता है?

परमात्मा का अर्थ है सब कुछ, जो इस सब को घेरे हुए है, जो इस सब के भीतर छिपा है, वह निराकार और अरूप जो सब रूपों में व्याप्त है उसकी तरफ जो आकर्षित हो गया। जो अब बूँद में आकर्षित नहीं है, बूँद में छिपे महासागर में आकर्षित है। जो व्यक्ति में आकर्षित नहीं है, व्यक्ति में छिपे अव्यक्ति में आकर्षित है। जो अब अगर अपनी पत्नी को भी प्रेम कर रहा है तो पत्नी को प्रेम नहीं कर रहा है। पत्नी में छिपे परमात्मा को प्रेम कर रहा है। अब जो सब तरफ, उस परमात्मा से ही खिंचा जा रहा है और बुलाया जा रहा है, जो सब भाँति उसी की तरफ दौड़ रहा है, उसी महासागर के मिलन की तरफ। तो मुझ परमात्मा में आसक्त मनवाला, का अर्थ प्रेम कहें, आसक्ति कहें, इससे फर्क नहीं पड़ता। फर्क इससे पड़ता है कि आप उसका उपयोग क्या कर रहे हैं।

शब्द अपने आप में अर्थहीन हैं।

सब कुछ उपयोग पर निर्भर करता है। शब्दों में खुद कोई अर्थ नहीं है। अर्थ तो हम डालते हैं और हम देते हैं। और अर्थ बदल जाता है तत्काल, जैसे

ही शब्द का आयाम बदलता है। तब अर्थ बदल जाता है। यह शर्त है कृष्ण की कि परमात्मा की तरफ आ रहे मनवाला अगर तू है तो मुझे सुन। क्योंकि वह जो कहने जा रहे हैं, वह जो परमात्मा की तरफ पीठ करके चल रहा है वह न सुन सकेगा। उसके किसी काम का नहीं है। वह बहरे से बात करनी हो जायेगी। उसका कोई अर्थ नहीं है।

कम से कम तुम तो लाभ ले लो

अभी मैं एक झेन फकीर का जीवन पढ़ता था। एक युवक आया है उस फकीर के पास और उस युवक ने कहा कि मैंने सुना है कि बुद्ध ने कहा है कि मेरी बात सब के उपयोग की है। धर्म सब के लिए है। लेकिन उस युवक ने कहा, इसमें मुझे बड़ी शंका होती है। मुझे शंका होती है कि बुद्ध के वचन अगर सब के उपयोग के लिए हैं तो बहरों का क्या होगा? क्योंकि बहरे तो सुन ही न सकेंगे, उनके लिए उपयोग कैसे होगा? बुद्ध खड़े भी रहें, अन्धे तो देख ही न सकेंगे तो सत्संग कैसे होगा? उस फकीर ने क्या किया?

उस फकीर ने वही किया जो फकीरों को करना चाहिए। पास में पड़ा था एक डण्डा, उसने जोर से उस आदमी के पेट में डण्डे का धक्का दिया। उस आदमी ने चीख मारी, उसने कहा, आप यह क्या करते हैं? तो उस फकीर ने कहा, मैं तो समझता था कि तुम गूँगे हो। तो तुम गूँगे नहीं हो, बोलते हो! जरा मेरे पास आओ। तो वह आदमी डरता हुआ उसके पास आया। उसने कहा, अहा, मैं तो सोचता था कि तुम लँगड़े हो लेकिन तुम तो चलते हो! उस आदमी ने कहा, इन बातों से क्या मतलब, जो मैं पूछने आया हूँ। तो उस फकीर ने कहा कि तुम इसकी फिक्र छोड़ो, दूसरे अन्धे, लूले और गूँगों की। अगर तुम गूँगे नहीं हो, लूले नहीं हो, अन्धे नहीं हो तो कम से कम तुम लाभ ले लो। और जब कोई अन्धे आयेंगे तब उनसे मैं निपट लूँगा। जब कोई गूँगे आयेंगे तब उनसे मैं निपट लूँगा। तुम फिक्र छोड़ो। इतना तय है कि तुम अन्धे, लूले, लँगड़े, गूँगे नहीं हो। तुमने क्या लाभ लिया बुद्ध के वचनों का? उसने कहा, अभी तक तो कुछ नहीं लिया। तो उस फकीर ने कहा, पागल, तू फिक्र कर रहा है उनकी, जो न ले सकेंगे और तू अपनी फिक्र कब करेगा, जो ले सकता है। तो उस फकीर ने कहा, जो गूँगे हैं वह तो गूँगे हैं ही और जो बहरे हैं वह भी बहरे हैं ही, लेकिन तेरे बहरेपन को हम क्या करें, तेरे गूँगेपन को हम क्या करें?

कृष्ण, अर्जुन का गूँगापन, बहरापन टूट जाय, उसकी पीठ मुड़ जाय, वह परमात्मा की तरफ उन्मुख हो जाय इसकी चेष्टा कर रहे हैं। क्योंकि अभी तक अर्जुन की जो उन्मुखता है वह युद्ध से बचने की है। किसी तरह युद्ध से बच जाय। यह हिंसा न हो। बस इससे ज्यादा उसकी उत्सुकता नहीं है।

यह बड़े मजे की बात है, अर्जुन किसी ब्रह्मज्ञान को लेने कृष्ण के पास गया नहीं था। ये कृष्ण जबरदस्ती उसको ब्रह्मज्ञान दिये देते हैं। कारण है, क्योंकि कृष्ण के पास जो है वही दे सकते हैं। आप अगर अमृत के सागर के पास विष लेने भी जायँ तो भी अमृत का सागर क्या कर सकता है? वह आपको अमृत ही दे देता, भला आप पीछे पछतायें कि गलत जगह पहुँच गये, फँस गये। अर्जुन तो एक बहुत छोटा सा सवाल लेकर गया था। उसने सोचा भी न था कि इतनी बड़ी गीता उससे पैदा होगी। उसने सोचा भी न होगा कि कृष्ण ज्ञान की इतनी बड़ी गहराइयों में उसे ले जायेंगे। मगर कृष्ण की भी अपनी मजबूरी है।

कृष्ण के पास जो है वह वही दे सकते हैं।

आगे वे कुछ ऐसी गहन बातें कहने वाले हैं जो कि अर्जुन अगर पूरी तरह उन्मुख हो तो ही पूरी तरह समझ पायेगा, इसलिए यह शर्त लगायी है।

ज्ञानं तेऽहं सविज्ञानमिदं वक्ष्याम्यशेषतः ।
यज्ज्ञात्वा नेह भूयोऽन्यज्ज्ञातव्यमवशिष्यते ।।२।।

मैं तेरे लिए इस रहस्यसहित तत्त्वज्ञान को संपूर्णता से कहूँगा कि जिसको जानकर संसार में फिर और कुछ भी जानने योग्य शेष नहीं रहता है ।

बहुत कुछ है जो जान लिया जाय, तब भी सब कुछ जानने को शेष रह जाता है । बहुत कुछ है जो पूरा का पूरा जान लिया जाय, तो भी जो जानने जैसी चीज है वह शेष रह जाती है ।

जिसको जान लेने से सब जान लिया जाता है

उपनिषद् में कथा है कि श्वेतकेतु वापस लौटा तो उसके पिता ने देखा कि श्वेतकेतु वापस लौट रहा है आश्रम से अध्ययन करके । स्वभावतः उसमें अकड़ रही होगी । जो भी थोड़ा बहुत ज्ञान सीख ले, अकड़ पैदा होती है । श्वेतकेतु अकड़ता हुआ चला आ रहा है । सुबह सूरज निकला है और पिता श्वेतकेतु को आता हुआ देखता है । सब कुछ जानकर लौट रहा है । अठारह शास्त्र, जो उन दिनों प्रचलित थे उन सबका ज्ञान लेकर आया है । अब अकड़ में और कोई कमी नहीं । अब तो पिता भी उसके सामने कुछ नहीं जानता जैसा कि सभी बच्चों को लगता है, जब वह थोड़ा सा जान लेते हैं । उस दिन के भी बच्चे ऐसे ही थे जैसे आज के बच्चे हैं । श्वेतकेतु ने अकड़ कर घर में प्रवेश किया ।

पिता ने उससे पूछा, तू सब जानकर आ गया, ऐसा मालूम पड़ता है । उसने कहा कि निश्चित ही । आप पूछ कर देखें । सब परीक्षाओं में उत्तीर्ण

हुआ, सब शास्त्र कंठस्थ हैं । गुरू ने जब प्रमाणपत्र दे दिया, तब ही मैं आया हूँ । पर उसके पिता ने पूछा, तूने अपने गुरू से वह भी जाना या नहीं, जिसको जान लेने से सब जान लिया जाता है ।

उसने कहा कि वह क्या चीज है जिसको जान लेने से सब जान लिया जाता है । ऐसी तो कोई चीज गुरू ने मुझे नहीं बतायी जिसको जान लेने से सब जान लिया जाता है । मैं तो वे ही चीजें जानकर आ रहा हूँ जिनको जान लेने से उन्हीं को जाना जाता है । सब का कोई सवाल नहीं है । तो पिता ने कहा, तू वापस जा, तू बेकार ही श्रम करके घर लौट आया । तेरी अकड़ ने ही मुझे कह दिया कि तू अज्ञानी का अज्ञानी ही वापस आ रहा है । क्योंकि अकड़ अज्ञान का सबूत है । तू वापस जा । तू शास्त्रों के बोझ से तो दब गया लेकिन ज्ञान की किरण अभी तेरे जीवन में नहीं फूटी । उसे जानकर आ, जिसे जान लेने के बाद कुछ शेष नहीं रह जाता । वह लड़का बेचारा वापस लौटा उदास, सब व्यर्थ हो गया बरसों की मेहनत ।

गुरू से जाकर उसने कहा, आपने भी क्या सिखाया, पिता ने कहा कि यह तो कुछ भी नहीं है । और मैं तो मानकर लौटा था कि सब जान लिया गया । और उन्होंने कहा है कि उसे जानकर आ, जिसे जान लेने से सब जान लिया जाता है । वह क्या है, जिसे जान लेने से सब जान लिया जाता है ?

उसके गुरू ने कहा, वह तू स्वयं है । लेकिन तूने कभी मुझसे पूछा ही नहीं कि मैं कौन हूँ । उसने कहा, मैंने पूछा नहीं ? गुरू ने कहा, तूने जो पूछा, मैंने तुझे बताया । तूने पूछा, आकाश में बादल कैसे बनते हैं, तो मैंने बताया होगा । तूने पूछा नदियाँ कैसे बहती हैं, तो मैंने बताया होगा । तूने पूछा कि अन्न कैसे पचता है, तो मैंने बताया होगा । तूने जो पूछा, वह मैंने तुझे बताया । तूने कभी यह पूछा ही नहीं कि मैं कौन हूँ । और जब तक कोई स्वयं को न जान ले तब तक वह ज्ञान नहीं मिलता, जिसे जानने से सब जान लिया जाता है । या जिसे जान लेने से फिर जानने को कुछ शेष नहीं रह जाता ।

कृष्ण सत्य नहीं, रहस्य कहते हैं अर्जुन को

कृष्ण कहते हैं, अब मैं वह रहस्य तुझसे कहूँगा अर्जुन, और पूरा ही बता दूँगा तुझे । तीन चार बातें कहते हैं ।

अब मैं वह रहस्य तुझसे कहूँगा अर्जुन, रहस्य, मिस्ट्री। कह सकते थे कि वह सत्य मैं तुझसे कहूँगा, लेकिन कहते हैं, वह रहस्य मैं तुझसे कहूँगा। क्योंकि उस रहस्य को कहने के लिए सत्य शब्द भी छोटा है और उसे सत्य नहीं कहा जानकर। क्योंकि उसे कितना ही जान लो तब भी कभी दावा नहीं कर सकते कि जान लिया है। इसलिए कहा रहस्य, रहस्य का मतलब यह है, जानो तो खुद मिटते हो। और जानो तो और मिटते हो, और जानो तो और। एक दिन आता है, जानना तो पूरा हो जाता है लेकिन खुद बिल्कुल नहीं रह जाते। दावेदार खत्म हो जाता है। वह जो क्लेम कर सकता था मैंने जान लिया, सत्य मेरी मुट्ठी में है वह बचता नहीं। न मुट्ठी बाँधने वाला बचता है, न मुट्ठी बचती है। फिर जो बच रहता है वह एक मिस्ट्री, वह एक रहस्य है।

इसलिए भी रहस्य कहा कि पूरी तरह जानकर भी, पूरी तरह परिचित होकर भी वह ज्ञान तर्कबद्ध नहीं होता है। वह लाजिकल नहीं है। वह एक रहस्य की भाँति है, धुँधला है। जैसे सुबह, जब सूरज नहीं निकला है, चारों तरफ कुहरा छाया हुआ है। चीजें रहस्यपूर्ण लगती हैं। या रात पूर्णिमा की चाँदनी में, जब कि कहीं वृक्षों के नीचे अँधेरा है और कहीं धीमी चाँदनी है और सब रहस्यपूर्ण हो जाता है। एक मिष्ट, एक धुंध घेरे रहती है, उस रहस्य में जब कोई पहुँचता है। एक गहन चाँदनी रात में जहाँ सब चीजें रहस्यपूर्ण मालूम पड़ती हैं। कोई चीज अपने में पूरी नहीं मालूम पड़ती, प्रत्येक चीज किसी और चीज की तरफ इशारा करती है।

तो गद्य की भाँति नहीं है वह, पद्य की भाँति भी है। काव्य की भाँति है। जिसका ओर छोर नहीं मिलता। जिसे एक तरफ से शुरू करें तो दूसरा अन्त नहीं आता। और जिसमें जितने भीतर प्रवेश करें उतनी ही पहेली बड़ी होती चली जाती है। इसलिए नहीं कहा कि तुझे सत्य कहूँगा। कहा कि तुझे कहूँगा वह रहस्य।

ज्ञान की घोषणा, अज्ञान का प्रमाण है

और ध्यान रहे, संतों ने कभी भी सत्य का दावा नहीं किया, रहस्य की घोषणा की है। दार्शनिकों ने सत्य का दावा किया है और रहस्य की हत्या की है और इसलिए दर्शन, फिलासफी और धर्म में एक बुनियादी फर्क है।

धर्म रहस्य की खोज है और दर्शन शास्त्र सत्य की।

इसलिए दार्शनिक गणित बिठाने में लगा रहता है और धार्मिक गणित उखाड़ने में लगा रहता है। दर्शन शास्त्री, तर्क, कन्क्लूजन, निष्पत्तियाँ निकालता रहता है। और संत मिस्टिक, सब निष्पत्तियाँ तोड़कर वह जो अनन्त अज्ञात है उसमें कूद जाता है।

इसलिए कृष्ण ने कहा, रहस्य। कृष्ण कोई फिलासफर नहीं हैं, कोई दार्शनिक नहीं हैं। उस अर्थों में जिसमें प्लेटो या अरस्तू या हीगल दार्शनिक हैं। उस अर्थ में कृष्ण दार्शनिक नहीं हैं। कृष्ण उस अर्थ में रहस्यवादी हैं जैसे जीसस या बुद्ध या लाओत्से। रहस्यवादी का कहना यह है कि तुम्हारे ज्ञान की घोषणा सिर्फ तुम्हारे अज्ञान का सबूत है। काश, तुम सच में ही जान लो तो तुम जानने का दावा छोड़ दो। काश, तुम्हें पता चल जाय तो जो सत्य है वह इतना बड़ा है कि तुम उसमें कहीं पाओगे भी न कि तुम कहाँ खड़े हो। तुम उसमें डूब तो सकते हो लेकिन उसको मुट्ठी में नहीं ले सकते हो।

इसलिए कृष्ण कहते हैं रहस्य। रहस्य वह है, जिसमें हम तो डूब सकते हैं, लेकिन जिसे हम अपनी मुट्ठी में बाँधकर घर में लाकर तिजोड़ी में बन्द नहीं कर सकते। और हम कितना ही उसे जान लें और कितना ही उसे पहचान लें और कितना ही उसके साथ एक हो जायँ फिर भी हमारे मन में अज्ञान का भाव बना ही रहेगा, अननोन मौजूद ही रहेगा। जानें कितना ही, पहचानें कितना ही, मिलन हो जाय कितना ही फिर भी कुछ अज्ञात, कुछ अननोन शेष रहेगा। वह अज्ञात जो शेष रह जाता है, सदा शेष रह जाता है वही कृष्ण को रहस्य कहने के लिए प्रेरित करता है। दूसरी बात वह कहते हैं, सभी तुझसे कह दूँगा। इसको भी विचार कर लेने जैसा है।

करुणावान् सब कह देते हैं

एक दिन बुद्ध एक वृक्ष के नीचे से गुजर रहे हैं। पतझड़ हो रही है। पतझड़ है, वृक्षों से सूखे पत्ते नीचे गिरते हैं, हवाएँ पत्तों को उड़ाती हैं। पत्तों की आवाज और ध्वनि जंगल में गूँज रही है। आनन्द बुद्ध से पूछता है कि प्रभु, आज एकान्त का क्षण है, एक बात पूछ लूँ। बहुत दिन से पूछने का मन करता है, लेकिन कोई न कोई मौजूद होता है, मैं टाल जाता हूँ। आज

यहाँ कोई भी नहीं है। सिवाय इन सूखे गिरते पत्तों के। मैं आप से पूछ लूँ एक बात ? आप जो जानते हैं वह सभी कह दिया है, या कुछ बचा लिया ? आपने जो जाना वह सभी कह दिया है या कुछ बचा भी लिया ?

तो बुद्ध अपना हाथ खोल देते हैं उसके सामने, और कहते हैं, मैं खुली हुई मुट्ठी की तरह हूँ, बन्द मुट्ठी की तरह नहीं। मैंने तो सभी कह दिया है लेकिन तुमने सभी सुन लिया होगा यह जरूरी नहीं है। मैंने तो सब बता दिया है लेकिन सब तुमने पा लिया होगा, यह जरूरी नहीं है। मैंने तो कुछ भी नहीं छिपाया है लेकिन सब प्रगट हो गया होगा, यह जरूरी नहीं। मैं तो एक खुली किताब हूँ, खुली मुट्ठी हूँ, सब मेरा खुला है, द्वार दरवाजे खुले हैं, तुम कहीं से भी प्रवेश करो, तुम सब जान लो, कुछ भी छिपाया नहीं है। कुछ छिपाने का सवाल नहीं है। लेकिन सब तुम्हें प्रगट हो गया होगा, यह जरूरी नहीं है।

कृष्ण अर्जुन को कहते हैं, मैं सभी कुछ कह दूँगा तुझे, सभी। जो कहा जा सकता है वह भी कह दूँगा, जो नहीं कहा जा सकता है, वह भी कह दूँगा। सभी में दोनों आ जाते हैं। जो कहा जा सकता है वह भी कह दूँगा, जो नहीं कहा जा सकता है, वह भी कह दूँगा। आप पूछेंगे, जो नहीं कहा जा सकता है उसको कैसे कहियेगा ?

लेकिन हम समझ नहीं पाते

शायद जो नहीं कहा जा सकता उसको कहने की बहुत तरह की कोशिशें दुनिया में की गयी हैं, अलग-अलग ढंग से। लेकिन कृष्ण ने जैसी कोशिश की है वैसी बहुत मुश्किल से शायद ही कभी की गयी होगी। इसलिए कृष्ण जब कह कहकर थक गये तो फिर उन्होंने दिखाया, वह कहा, जो नहीं कहा जा सकता है। फिर अर्जुन को कहा, अब तेरी समझ में नहीं आता शब्दों से तो तू देख ले। अब मैं तुझे दिव्य दृष्टि दे देता हूँ और तू देख ले मेरे पूरे विराट को। वह जो नहीं कहा जा सकता है वह दिखाया।

विडगनस्टीन का बहुत प्रसिद्ध वचन है, देयर आर थिंग्स, व्हिच कैन नाट बी सेड, बट कैन बी शोन। विडगनस्टीन पश्चिम के, पश्चिम के आधुनिक मिस्ट्रिक, आधुनिक रहस्यवादियों में कीमती आदमी था। कहता है, ऐसी चीजें हैं जो कही नहीं जा सकतीं लेकिन बतायी जा सकती हैं। और अगर

उसके वचन के लिए कोई गवाही है तो वह कृष्ण। क्योंकि जब नहीं कह सके वह तो उन्होंने बताया कि तू देख ले। लेकिन कितना अभागा है हमारा मन, कि कृष्ण जब शब्द का उपयोग करते तब अर्जुन समझ नहीं पाता और जब स्थिति का उपयोग करते हैं, सिचुएशन का, प्रगट कर देते हैं पूरा का पूरा, तब वह कहता है, बन्द करो, बन्द करो, रोको यह रूप, मन बहुत घबराता है मेरे प्राण बहुत कँपते हैं, इस विराट को वापस ले लो, यह अपनी आँख वापस लो। न सुनकर हम समझ पाते हैं, न देखकर हम समझ पाते हैं।

इसलिए कृष्ण जैसे व्यक्ति की करुणा अपरिसीम है। यह जानते हुए कि हम सुनकर भी नहीं समझ पायेंगे, हम देखकर भी नहीं समझ पायेंगे फिर भी एक असंभव प्रयास कृष्ण जैसे लोग करते हैं। उनकी वजह से जिन्दगी में थोड़ा अर्थ है। उनकी वजह से जिन्दगी में थोड़ी रौनक है। जिन्होंने असम्भव प्रयास किया।

कहते हैं, सब कह दूँगा अर्जुन तुझे, सब। पूरा का पूरा कह दूँगा। बस तू सुनने को राजी हो। और वह बात बताना चाहता हूँ, जिसे जान लेने से सब जान लिया जाता है। इसको भी थोड़ा सा ख्याल में ले लें।

भारत ने सब तालों के लिए एक कुंजी, 'मास्टर की' की खोज की है

क्योंकि इस भारत में हमने सर्वाधिक जिसकी खोज की है वह इसी एक छोटी सी बात की है। जिसको जान लेने से सब जान लिया जाता है, 'मास्टर की'। एक तो ऐसी कुंजी होती है कि एक ताले में लगती है। दूसरे ताले के लिए दूसरी कुंजी की जरूरत होती है, तीसरे ताले के लिए तीसरी कुंजी की जरूरत होती है। लेकिन एक मास्टर-की है जो सब तालों में लगती है। यह कुंजी मिल गई तो फिर किसी कुंजी की कोई जरूरत नहीं। सब ताले खुल जाते हैं। इस मुल्क ने मास्टर-की खोजने की कोशिश की है।

पश्चिम भी कुंजियाँ खोजता है लेकिन, कुंजियाँ। हमने कुंजी खोजने की कोशिश की है। पश्चिम भी खोजता है। कहता है, यह ताला कैसे खुलेगा !

तो फिजिक्स का ताला किसी और कुंजी से खुलता है और केमेस्ट्री का किसी और कुंजी से खुलता है। साइकोलाजी का किसी और कुंजी से खुलता है। गणित का किसी और से। हजार कुंजियाँ खोज लीं उन्होंने। अब तो हालत यह हो गयी कि कौन सी कुंजी किसकी है वह हिसाब रखना मुश्किल हुआ जा रहा है। फिर एक एक कुंजी खोलने के बाद और हजार ताले मिल जाते हैं तो उसमें और सब ब्रांचेज कुंजी खोजनी पड़ती है। तो केमिस्ट्री कभी केमिस्ट्री थी, अब केमिस्ट्री में बायोकेमिस्ट्री भी है, आर्गेनिक केमिस्ट्री भी है, अब अलग कुंजियाँ भी हैं। और कितनी देर तक आर्गेनिक केमिस्ट्री आर्गेनिक रहेगी, उसमें और कुंजियाँ निकली आती हैं।

पश्चिम अपने ज्ञान से मर सकता है

अभी पश्चिम में एक बहुत होशियार बुद्धिमान आदमी ने, स्नो ने एक किताब लिखी, जिसमें उसने घोषणा की कि पश्चिम अपने ज्ञान के दबाव में मर सकता है। क्योंकि ज्ञान इतना हो गया और उसके बीच में कोई तालमेल नहीं है। सब के पास कुंजियाँ हैं, सब के पास ताले हैं। यह पता ही नहीं चलता है कि कौन सा ताला खोलें, कौन सा न खोलें, कौन सा क्यों खोलें और सब तरफ से ताले खोल रहे हैं। और आदमी है कि बिल्कुल बन्द है और उसका कुछ खुलता हुआ मालूम नहीं पड़ता। ज्ञान बहुत है पर अज्ञान अपनी जगह कायम है। ज्ञान का भार भारी है।

आज जमीन पर जितना ज्ञान है पृथ्वी पर कभी नहीं था। और अगर इसी मात्रा में ज्ञान बढ़ता है तो जो लोग हिसाब किताब लगाते हैं वह कहते हैं कुछ ही दिन में पृथ्वी के वजन से ज्यादा पुस्तकें हमारे पास हो जायेंगी। पृथ्वी क्या करेगी उस वक्त, यह अभी अपने को पता नहीं। ऐसा होने देगी, यह भी पक्का पता नहीं है यदि इसी रफ्तार से बढ़ता है तो। क्योंकि प्रति सप्ताह दस हजार नये ग्रन्थ प्रकाशित हो जाते हैं। यह बोझ बढ़ता चला जाता है। इसलिए अब सारी दुनिया में जहाँ बड़ी लाइब्रेरी हैं, वे लोग चिन्तित हैं कि इतनी बड़ी लाइब्रेरी को बचाया नहीं जा सकता। इनको कैसे बचायेंगे ? लोगों को रहने के लिए जगह नहीं, किताबों के लिए कैसे जगह होगी ? तो किताबों को माइक्रो बुक्स, छोटी किताबें करो। तो एक किताब की जगह में कम से कम एक लाख किताबें बन सकें, उतनी छोटी करो। फिर पर्दे पर उसको बड़ा करके पढ़ लो। छोटी छोटी करो, इतनी किताबें अब नहीं रखी जा सकतीं।

इतना ज्ञान लेकिन अज्ञान का अंत नहीं है

इतना ज्ञान, और आदमी के अज्ञान का कोई हिसाब नहीं। आदमी निपट अज्ञानी है। मास्टर-की की तलाश नहीं हुई है।

कृष्ण कहते हैं, मैं तुझे मास्टर-की दूँगा। मैं तुझे वह कुंजी दूँगा जिसे पा लेने के बाद किसी कुंजी की कोई जरूरत नहीं। मैं तुझे वह कुंजी दूँगा कि ताले खोलने नहीं पड़ते। कुंजी को देखते हैं, कि खुल जाते हैं। मैं तुझे वह बता दूँगा जिसके जान लेने से सब जान लिया जाता है। वह एक तत्त्व मैं तुझे कह दूँगा। वह अनिर्वचनीय, वह एक परम, अल्टीमेट, वह आखिरी सत्य, वह बुनियाद का सत्य, वह अनादि, अनन्त मैं तुझे कह दूँगा। उसे जान लेने पर फिर कुछ और जान लेने को शेष नहीं रह जाता।

परा-ज्ञान है योग

दूसरा प्रवचन

गीता-ज्ञान-यज्ञ, बम्बई, रात्रि दिनांक २३ मई, १९७१

मनुष्याणाम् सहस्रेषु कश्चिद्यतति सिद्धये ।
यततामपि सिद्धानां कश्चिन्मां वेत्ति तत्त्वतः ।।३।।

परन्तु हजारों मनुष्यों में कोई ही मनुष्य मेरी प्राप्ति के लिए यत्न करता है और उन यत्न करनेवाले योगियों में भी कोई ही पुरुष मेरे परायण हुआ मेरे को तत्त्व से जानता है अर्थात् यथार्थ मर्म से जानता है ।

प्रभु की यात्रा सरल भी है और सर्वाधिक कठिन भी। सरल इसलिए, कि जिसे पाना है उसे हमने सदा से पाया ही हुआ है। जिसे खोजना है उसे हमने वस्तुतः कभी खोया नहीं है। वह निरन्तर ही हमारे भीतर मौजूद है, हमारी प्रत्येक श्वांस में और हमारे हृदय की प्रत्येक धड़कन में। इसलिए सरल है प्रभु को पाना, क्योंकि प्रभु की तरफ से उसमें कोई भी बाधा नहीं है। इसे ठीक से ध्यान में ले लेंगे।

प्रभु सदा ही उपलब्ध है, लेकिन हम पीठ करके उससे भाग रहे हैं

प्रभु को पाना सरल है क्योंकि प्रभु सदा ही अवेलेबल है, सदा ही उपलब्ध है। लेकिन प्रभु को पाना कठिन बहुत है क्योंकि आदमी सदा ही प्रभु की तरफ पीठ किये हुए खड़ा है। आदमी की तरफ से सारी कठिनाइयाँ हैं, प्रभु की तरफ से कोई भी कठिनाई नहीं है। उसके मंदिर के द्वार सदा ही खुले हैं लेकिन हम उन मंदिर के द्वारों की तरफ पीठ किये हैं। पीठ ही नहीं किये हैं, पीठ करके भाग भी रहे हैं। भाग ही नहीं रहे हैं, अपना पूरा जीवन, अपनी पूरी शक्ति,

अपनी पूरी सामर्थ्य किस भांति उस मंदिर से दूर निकल जायें, इसमें लगा रहे हैं। यद्यपि हम निकल न पायेंगे। हजारों हजारों जन्मों में दौड़कर भी उस मंदिर से हम दूर न जा पायेंगे। और जिस दिन भी हम पीठ फेर कर देखेंगे तो पायेंगे कि वह मंदिर वहीं का वहीं मौजूद है। वहीं, जहाँ से हमने दौड़ना शुरू किया था। आदमी की तरफ से बहुत कठिनाइयाँ हैं।

इसलिए कृष्ण ने इस सूत्र में कहा है, करोड़ो में कोई एक प्रयास करता है। और प्रयास करने वाले में करोड़ों में कोई कभी एक मुझे उपलब्ध होता है। दो बातें—करोड़ों में कभी कोई प्रयास करता है। इसे समझें और फिर प्रयास करने वाले करोड़ों में भी कभी कोई एक मुझे परायण हुआ, मुझे समर्पित हुआ, उपलब्ध होता है।

क्यों करोड़ों लोगों में कभी एक प्रयास करता है उसे पाने के लिए, जिसे पाये बिना कोई चारा नहीं, जीवन में कोई अर्थ नहीं? क्यों करोड़ों में कोई एक प्रयास करता है उसे पाने के लिए जिसे पाकर सब पा लिया जा सकता है? क्या होगा कारण? होना तो ऐसा चाहिए कि करोड़ों में कभी कोई एक प्रयास न करे, बाकी सारे लोग प्रयास करें, क्योंकि परमात्मा आनन्द है, जीवन है, अमृत है। तो करोड़ों में कोई एक क्यों प्रयास करता है? इसके कारण को थोड़ा ठीक से समझ लेना जरूरी है क्योंकि वह उपयोगी है।

मन का नियम है, जो हमें उपलब्ध हो, उसकी खोज ही छोड़ देते हैं

सबसे पहला तो कारण यह है कि जो हमें मिला ही हुआ है उसे पाने के लिए हम क्यों कर चेष्टा करें? सागर की मछली सब कुछ खोजती होगी, सागर को कभी नहीं खोजती है। सागर की मछली सब चीजों पर निकलती होगी लेकिन सागर की खोज पर कभी नहीं निकलती। उसी में पैदा होती है, उसी में जीती है, बड़ी होती है, श्वांस लेती है, उसी में समाप्त होती है। उसे पता भी नहीं चलता कि सागर है। मछली को भी सागर का तभी पता चलता है जब उसे सागर के बाहर निकालो। अगर मछली सागर के बाहर न आये तो उसे कभी भी पता नहीं चलता कि सागर है। असल में सागर के साथ इतनी एक है कि पता भी कैसे चले, पता चलने के लिए दूरी चाहिए। तो मछली तो कभी कभी सागर के बाहर भी आ जाती है, आदमी तो परमात्मा के बाहर

कभी नहीं आता है। मछली को तो कोई मछुवा कभी फाँस लेता है जाल में और सागर के तट पर भी तड़फने को छोड़ देता है। आदमी के लिए तो ऐसा कोई तट नहीं है जहाँ परमात्मा मौजूद न हो। आदमी जहाँ भी जाये, वहाँ परमात्मा मौजूद है। वह इतना मौजूद है, उसकी हम फिक्र छोड़ देते हैं, उसका हम ख्याल भूल जाते हैं।

ध्यान रहे, हमारे ध्यान की जो धारा है, वह जो गैर मौजूद है उसकी तरफ बहती है। जैसे आपका एक दाँत टूट जाय तो जीभ उस दाँत की तरफ चलने लगती है, जो दाँत मौजूद हैं उनकी तरफ नहीं चलती। और भली-भाँति एक दफे पता लगा लिया कि टूट गया, खाली जगह छूट गयी, फिर भी दिन भर जीभ वहीं दौड़ती रहती है।

जहाँ अभाव है, वहाँ हम खोजते हैं, जिसका अति भाव है, जो एकदम मौजूद है घना होकर, वहाँ हम नहीं खोजते।

मन के गहरे नियमों में एक यह है कि जो हमें उपलब्ध है उसकी हम विचारणा छोड़ देते हैं। जो हमें उपलब्ध नहीं है उसकी हम खोज करते हैं। जो हमारे पास है, उसे हम भूल जाते हैं, जो हम से दूर है, उसकी हम स्मृति से भर जाते हैं। जिसे हम खो देते हैं उसका पता चलता है और जिसे हम कभी नहीं खोते उसका पता भी नहीं चलता।

परमात्मा की खोज पर निकलने में जो सबसे बड़ी बाधा है वह मन का यह नियम है कि हमें उसका ही पता चलता है जो नहीं है। नेगेटिव का पता चलता है, पोजिटिव का पता नहीं चलता। टूट गया है दाँत, तो पता चलता है। वह दाँत चालीस साल से आपके पास था तब इस जीभ ने कभी उसकी फिक्र न की। आज नहीं है तो उसकी तलाश है। मन नेगेटिविटी, मन नकार की तरफ दौड़ता है। वैसे, जैसे पानी गड्ढों की तरफ दौड़ता है ऐसा ही मन अभाव की तरफ, एब्सेंस की तरफ, जो नहीं है उसकी तरफ दौड़ता है। जो है, उसकी तरफ मन नहीं दौड़ता।

और परमात्मा सर्वाधिक है। टू मच, इतना ज्यादा है कि उसके सिवाय और कुछ भी नहीं है। वही वही है, सब तरफ वही है। आँख खोलें तो, आँख बन्द करें

तो, जागें तो, सो जायें तो। सब तरफ वही वही है। सागर की भाँति हमें घेरे हुए है। इसलिए करोड़ों में एक उसकी खोज पर निकलता है।

इस मन के विपरीत चलना पड़ेगा

अगर परमात्मा की खोज पर निकलना हो, करोड़ों में एक बनना हो तो इस सूत्र से विपरीत चलेंगे तभी, अन्यथा कभी नहीं। जो आपके पास हो, उसका स्मरण रखें और जो आपसे दूर हो उसे भूल जायँ। तो दाँत अभी मुँह में हो उसे जीभ से टटोलें, और जो गिर जाय उसे मत टटोलें। जो आज सुबह रोटी मिली हो उसका आनन्द लें, जो रोटी कल मिलेगी उसके सपने मत देखें। जो नहीं है उसे छोड़ दें और जो है, उसे पूरे आनन्द से जी लें। तो आप करोड़ों में एक बनना शुरू हो जायेंगे।

क्योंकि ध्यान रखना, यात्रा सीधी परमात्मा की नहीं हो सकती, जब तक आपके मन का ढंग, आपके मन की व्यवस्था न बदले।

कभी आपने ख्याल किया, कि आप सोचते हैं, एक मकान बना लें। जब तक नहीं बनाते, तब तक मन बिल्कुल आर्चिटेक्ट हो जाता है। कितनी कल्पनाएँ करता है, कितने नकशे बनाता है। फिर मकान बन जाता है। फिर उसी मकान में जीने लगते हैं और मकान को भूल जाते हैं। हाँ, रास्ते से जो निकलते होंगे उनके मन में आपके मकान के लिए विचार आता होगा, आपको भर नहीं आता, जो उसके भीतर रहता है।

मन के नियम को बदलना पड़ेगा

पढ़ रहा था मैं, एक युवक का विवाह हो रहा है चर्च में। घण्टियाँ बजी हैं और मोमबत्तियाँ जली हैं। और मित्र उपहार लाये हैं और धन्यवाद दे रहे हैं। लेकिन तभी अचानक वह युवक उदास हो गया। तो चर्च के जिस पादरी ने विवाह करवाया था, उसने पूछा कि इतने उदास क्यों हो गये हो? तुम्हें तो खुश होना चाहिए, क्योंकि जिसे तुमने चाहा था वह स्त्री तुम्हें मिल गयी। वह युवक कहने लगा, इसीलिए तो उत्साह एकदम क्षीण हो गया है। जिसे चाहा था वह मिल गयी इसीलिए तो उत्साह एकदम क्षीण हो गया। उस युवक ने कहा, आज मैं सोचता हूँ कि मजनू के रास्ते में जिन लोगों ने बाधाएँ डालीं

और लैला को न मिलने दिया, उन्होंने बड़ी कृपा की। क्योंकि मजनू लैला को याद तो करता रहा। जिन मजनुओं को उनकी लैलाएँ मिल जाती हैं वह और दूसरों की लैलाओं की भले ही फिक्र करें, पर अपनी लैलाएँ भूल जाते हैं।

मन का नियम है। जो मिल जाता है वह भूल जाता है। और परमात्मा तो मिला ही हुआ है। उसे तो याद करने की सुविधा भी नहीं बनती। तो मन के नियम को बदलना पड़ेगा और मन का नियम अभी गड्ढों की तरफ दौड़ना है। मन को पर्वतों की तरफ दौड़ाना शुरू करना पड़ेगा। और कोई कठिनाई नहीं है।

जिंदगी में बहुत कुछ मिला है, उसमें आल्हाद अनुभव करें। जो मिला है, उसमें प्रसन्न हों, जो है पास उसमें संतुष्ट हों, जो पास है उसके लिए प्रभु को धन्यवाद दें। जो है उसे देखें और जो नहीं है उसे छोड़ें तो बहुत शीघ्र आप पायेंगे कि आपकी परमात्मा की खोज शुरू हो गयी। इसलिए जिन लोगों ने परमात्मा की खोज में संतोष को अनिवार्य बताया है उसका कारण भी आप समझ लें, वह इस सूत्र में छिपा हुआ है।

संतोषी सदा सुखी नहीं होता

संतोष का अपने आप कोई मूल्य नहीं है, संतोष की अपने आप में कोई वेल्यू नहीं है, उसकी अपने आप में कोई कीमत नहीं है। क्योंकि मरा हुआ आदमी भी संतुष्ट दिखायी पड़ सकता है। ऐसा आदमी भी संतुष्ट मालूम पड़ सकता है जिसमें जरा भी दौड़ने की हिम्मत नहीं। कायर, भयभीत चुनौती लेने से डरता है। नहीं संतोष का अपने आप में मूल्य नहीं है, लेकिन संतोष का एक ही मूल्य है, वह परमात्मा की तरफ उन्मुख करने में कीमती है।

इसलिए मैं आप से कहता हूँ कि संतोष का अब तक जो भी ख्याल दुनिया में दिया गया कि संतोषी सदा सुखी, वह सब बच्चों की बातें हैं। सच तो यह है कि संतोषी के जीवन में एक नया दुख पैदा होता है, वह दुख परमात्मा को न पाने का दुख है। वह और किसी की जिन्दगी में पैदा नहीं होता। हाँ, संतोषी की जिन्दगी में आसपास की चीजों से सुख हो जाता है, क्योंकि जो है वह उसमें प्रसन्न है। वह उसे भोग रहा है। वह परमात्मा के प्रति अनुगृहीत है।

लेकिन इस संतोषी के जीवन में एक नयी आग जलनी शुरू होती है, वह है परमात्मा की खोज। क्योंकि जब वह पाता है कि साधारण से भोजन में जो मुझे उपलब्ध है, अगर मैं उस पर ध्यान देता हूँ तो इतना रस मिलता है, साधारण सा झोंपड़ा जो मुझे उपलब्ध है, जब मैं उस पर ध्यान देता हूँ तो इतना रस मिलता है, साधारण सा जीवन जो मुझे उपलब्ध है, जब मैं उस पर ध्यान देता हूँ तो इतना रस मिलता है, तो वह जो जीवन का मूलाधार है, जो मेरे होने के पहले से मेरे पास है और मेरे न हो जाने से भी मेरे पास होगा, मेरी लहर बनेगी और मिटेगी और वह रहेगा। उसे पा लेने से क्या होगा, उसको पा लेने की एक नयी पीड़ा, एक नयी प्रसव पीड़ा शुरू होती है।

संतोष को योग ने एक अनिवार्य सूत्र माना है परमात्मा की तलाश के लिए। अगर आप सोचते हों, संतोष केवल संसार की दौड़ से बच जाने की तरकीब है तो आपको संतोष की कीमिया का कोई पता नहीं। वह तो बड़ी गौण बात है। महत्वपूर्ण बात यह है कि जो अपने चारों तरफ जो मौजूद है उससे संतुष्ट हो जाता है, उसके भीतर उसकी खोज शुरू होती है जो सबसे ज्यादा गहराई में सदा से मौजूद है। उसके रस की खोज शुरू हो जाती है।

एक विधायक चित्त ही परमात्मा की खोज पर जा सकता है

करोड़ों में इसीलिए एक आदमी, वह जिसके पास पोजिटिव माइण्ड है।

हमारे सबके पास नेगेटिव माइण्ड है, हमारे पास नकारात्मक मन है। हमें मित्र तब दिखाई पड़ता है जब वह घर से जा चुका होता है। हमें सुख का भी तब पता चलता है जब वह हाथ से छूट गया होता है। हमें प्रेम का भी तब पता चलता है जब प्रेम का दीया बुझने लगता है। हमें पता ही तब चलता है जब कोई चीज समाप्त होती है। जब कोई मरता है तभी हमें पता चलता है कि वह था। जब तक वह था तब तक हमें पता ही नहीं चलता। पिता घर में मौजूद है, बेटे को बिल्कुल पता नहीं चलता कि है, जिस दिन मरेगा पिता, उस दिन पता चलेगा। उस दिन रोयेगा, छाती पीटेगा। और जब तक पिता मौजूद था तब कभी दो क्षण भी उसके पास नहीं बैठा था। बड़ी आश्चर्य की बात है। तब तक कभी फुर्सत न मिली थी कि दो क्षण उसके पैर पर हाथ रखकर बैठ जाय। अब मुर्दे की छाती पर सिर पटकेगा। नेगेटिव माइण्ड है। जो नहीं है, बस वह हमारे लिए महत्वपूर्ण हो जाता है। जो है वह गैर महत्वपूर्ण हो जाता है।

इसीलिए दुनिया में कोई आदमी अमीर नहीं हो पाता। कितना ही धन मिल जाय गरीबी नहीं मिटती। क्योंकि नेगेटिव माइण्ड गरीब है। नेगेटिव माइण्ड कभी अमीर नहीं हो सकता। क्योंकि जो भी मिल जायेगा, वह भूल जायेगा और सदा मिलने को बाकी रहेगा, वह याद रहेगा। भिखमंगे तो भिखमंगे होते ही हैं, अरबपति भी उतने ही भिखमंगे होते हैं, जहाँ तक भिखमंगेपन का सवाल है। भिखमंगे को जो उसके पास है दिखायी नहीं पड़ता, अरबपति को भी, जो उसके पास है दिखायी नहीं पड़ता। भिखमंगे को भी उसकी माँग रहती है जो पास नहीं है, अरबपति को भी उसकी ही माँग रहती है जो उसके पास नहीं है। फर्क क्या है?

इतना ही फर्क है कि भिखमंगे के पास जो है कम है भूलने को, अरबपति के पास भूलने को ज्यादा है। लेकिन भूलने को ही ज्यादा है, और तो कुछ अर्थ नहीं है। भिखमंगा अपने भिक्षा के पात्र को भूलता है, अरबपति अपनी तिजोड़ी को भूलता है। लेकिन भूलने में आप तिजोड़ी भूलें कि भिक्षा का पात्र भूलें इससे कोई फर्क नहीं पड़ता। न तो भिखमंगा अपने भिक्षा के पात्र का आनन्द ले पाता है, न करोड़पति अपनी तिजोड़ी का आनन्द ले पाता है।

जो है वह हमें दिखायी नहीं पड़ता। और परमात्मा अतिशय है। एक इंच भर जगह नहीं है जहाँ वह नहीं है। इसीलिए करोड़ में कभी कोई एक उसकी खोज पर निकलता है।

पोजिटिव माइण्ड, एक विधायक चित्त ही परमात्मा की खोज पर जा सकता है।

उसे देखना शुरू करें जो है, उसे भूलना शुरू करें जो नहीं है। खाली स्थानों में मत भटकें, भरे स्थानों में जियें। और ध्यान रहे, हर आदमी के पास इतना है कि काश, वह देखने लगे तो शायद इस जमीन पर गरीब आदमी खोजना मुश्किल है।

कोई गरीब नहीं है

सुना है मैंने कि एक आदमी रो रहा है, छाती पीट रहा है और एक फकीर उसके पास से निकला है। उसने पूछा कि तुम इतने परेशान हो रहे हो कि मुझे मालूम पड़ता है कि तुम बड़े गरीब आदमी हो लेकिन मेरे गुरू ने कहा है कि

इस जमीन पर कोई आदमी गरीब नहीं है। या तो मेरे गुरू गलत हैं, या मैं कुछ गलत समझा हूँ। उस आदमी ने कहा, मुझसे गरीब आदमी खोजना मुश्किल है। आज मैं दो दिन से भूखा हूँ, मेरे पास कुछ भी नहीं है। उस फकीर ने कहा, लेकिन मेरे गुरू ने कुछ जाँचने की तरकीबें बतायी हैं, पहले उनका प्रयोग कर लूँ। उस आदमी ने कहा तुम सब प्रयोग करोगे, मैं मरने के करीब हूँ, नदी में जा रहा हूँ गिरने के लिए, आत्महत्या की तैयारी करके निकला हूँ। अब मेरे पास कुछ भी नहीं है।

उस फकीर ने कहा, तुम थोड़ा समय मुझे दो। तुम थोड़ी देर बाद भी मर जाओगे तो दुनिया का कोई हर्ज होनेवाला नहीं है। तुम मेरे साथ आओ, कम से कम मैं अपने गुरू की परीक्षा कर लूँ। उस आदमी को ले गया सम्राट के पास और सम्राट से जाकर भीतर उसने कुछ बात की। लौटकर उस आदमी को ले गया और रास्ते में उससे कहा कि सम्राट से मैंने तय कर लिया है, तुम्हारी एक एक आँख के लिए वह एक एक लाख रुपया देने को तैयार है। तुम दोनों आँखें बेच दो, दो लाख रुपये तुम्हारे हाथ में आते हैं। उस आदमी ने कहा, तुमने क्या मुझे पागल समझा हुआ है? मैं और आँखें बेच दूँ! उस आदमी ने कहा, दो लाख रुपये मिल रहे हैं, अगर तुम्हारा मन कुछ और ज्यादा का हो तो बोलो। उसने कहा, तुम करोड़ भी दो तो मैं आँख नहीं बेच सकता क्योंकि जैसे ही ख्याल आया अन्धे होने का, तब पता चला कि आँख है।

जब तक आँख थी, तब तक थी, बेकार थी, वह मरने जा रहा था। मरने में आँख भी मिट जाती है। और भी सब कुछ मिट जाता है। तो उस आदमी ने कहा, छोड़ो आँख को, हो सकता है तुम्हें मरने जाना है नदी पर तो आँख की जरूरत पड़े, इतना रास्ता पार करना पड़े। लेकिन कई चीजें ऐसी हैं जो बिल्कुल बेकार हैं मरने के लिए जिनका कोई उपयोग नहीं है। कान ही बेच दो, हाथ ही बेच दो। कुछ तो बेच दो क्योंकि मैं तुम्हारे लिए ग्राहक खोज लिया हूँ। उस आदमी ने कहा, तू आदमी किस तरह का है। मैं नहीं मरना चाहता हूँ। क्योंकि उस आदमी को पहली दफा ख्याल आया कि अगर हाथ भर कट जाय तो कितनी कमी हो जायेगी, तो मौत से कितनी बड़ी कमी होगी।

सोच विचार वाले लोग आत्मघात नहीं करते

अगर मरने वालों को, स्युसाइड करने वालों को मरने के बाद एक मौका और दिया जाय तो वह सब पछताते हुए वापस लौटेंगे। लेकिन मौका

नहीं मिलता इसलिए नहीं लौटते हैं। इसलिए अगर आपको स्युसाइड करनी है तो जल्दी कर लेना, देर मत लगाना। क्योंकि पाँच सात मिनट भी रुक गये फिर आप न कर पायेंगे। उतनी देर में तो शायद अभाव का ख्याल आ जायेगा कि यह मैं क्या कर रहा हूँ, सब मिट जायेगा। इसलिए जो लोग भी आत्मघात करते हैं वह तीव्र भावावेश में और क्षण में कर लेते हैं। कंसीडर्ड, सोच विचार कर कभी भी कोई आत्महत्या नहीं कर पाता।

इस पृथ्वी पर कुछ बहुत विचारशील लोग हुए हैं जिन्होंने आत्महत्या की तारीफ की है, उनमें यूनान का एक विचारक था पिरहो। पिरहो कहता था कि आत्मघात एकमात्र करने जैसी चीज है क्योंकि जिंदगी बेकार है। लेकिन वह नब्बे वर्ष का होकर मरा। और वह जब मर रहा था तो किसी ने संदेह उठाया कि आश्चर्य, कि कम से कम पचास साल से आप लोगों को समझा रहे हैं कि जिंदगी और मौत सब बराबर हैं। मर जाने के सिवाय कोई ठीक काम नहीं है, देर इज नो डिफरेंस बीटवीन लाइफ एण्ड डैथ, आप यह समझाते रहे, कोई अन्तर नहीं जीवन और मृत्यु में। आप नब्बे साल तक कैसे जिये, आप मर क्यों न गये? पिरहो ने आँख खोली, उसने कहा, बिकाज देर इज नो डिफरेंस, क्योंकि कोई अन्तर नहीं है, मरने जीने में। मैंने बहुत सोचा और पाया कोई अन्तर नहीं है तो मरने से भी क्या फायदा। तो मैंने कहा, ठीक है, जो होता है, होने देना।

पिरहो बहुत विचारशील आदमी था। और जिंदगी भर मरने के सम्बन्ध में सोचता रहा। मरा नब्बे वर्ष का होकर। बहुत सोच विचार वाले लोग आत्मघात नहीं करते। तीव्र भाव के क्षण में घटना घट जाती है। क्योंकि उस भाव के क्षण में आप इतने आविष्ठ होते हैं कि आपका नेगेटिव माइण्ड सोच नहीं पाता कि कितना बड़ा गड्ढा पैदा होने जा रहा है। बस, एक क्षण में हो जाता है।

संदेह से भरा चित्त नकारात्मक होगा

कृष्ण कहते हैं, करोड़ में कोई एक कभी प्रभु की खोज में निकलता है क्योंकि करोड़ में कभी एक आदमी के पास विधायक चित्त होता है।

कल मैंने कहा था संदेह से भरा चित्त, आज मैं आपको और संदर्भ बता दूँ।

संदेह से भरा चित्त नेगेटिव होगा, नकारात्मक होगा। श्रद्धा से भरा चित्त विधायक होगा, पोजिटिव होगा।

अगर सन्देह से भरे चित्त वाले आदमी से हम कहें कि दुनिया के सम्बन्ध में कुछ वक्तव्य दो, तो वह जो वक्तव्य देगा वह नकारात्मक होंगे। वह कहेगा, दुनिया बिल्कुल बेकार है। यहाँ दो अँधेरी रात के बीच में एक छोटा सा उजाले का दिन होता है। दो अँधेरी रात बड़ी घटना मालूम होगी। अगर हम विधायक चित्त के व्यक्ति से पूछें तो वह कहेगा यह दुनिया बहुत अद्‌भुत है। यहाँ दो उजेले दिनों के बीच में एक छोटी सी अँधेरी रात होती है। अगर हम निषेधात्मक चित्त के व्यक्ति से पूछें तो वह गुलाब के फूल के पास खड़े होकर सिवाय परमात्मा की निन्दा के और कुछ न कर पायेगा। क्योंकि वह कहेगा, जहाँ इतने काँटे हैं वहाँ मुश्किल से एक फूल खिलता है। फूल बेकार हो गया इतने काँटों की वजह से। अगर हम विधायक चित्त के आदमी से पूछें तो वह कहेगा, आश्चर्य, प्रभु का धन्यवाद। वह गुलाब के पास खड़े होकर घुटने टेक कर प्रभु की प्रार्थना में लीन हो जायेगा। और वह कहेगा, अद्‌भुत है तेरी लीला कि जहाँ इतने काँटे हैं, वहाँ भी फूल पैदा होता है। चमत्कार है, मिरेकल है। तो विधायक चित्त जिस व्यक्ति के पास है वह प्रभु की खोज पर निकलता है। लेकिन कृष्ण फिर एक और बात कहते हैं कि करोड़ लोग यत्न करें तो कभी एक मुझे उपलब्ध होता है।

इसका क्या अर्थ होगा ? इसे भी ठीक से समझ लें। जो लोग भी प्रभु की दिशा में यात्रा शुरू करते हैं, करोड़ में से एक ही समर्पण करता है। अगर करोड़ यात्रा करें तो एक समर्पण करता है। बाकी लोग संकल्प करते हैं, समर्पण नहीं। बाकी लोग कहते हैं, हम प्रभु को पाकर ही रहेंगे, तू कहाँ है। हम खोज कर रहेंगे, हम अपनी पूरी ताकत लगायेंगे। जीवन लगा देंगे दाँव पर, लेकिन तुझे पाकर रहेंगे।

कभी एक आदमी ऐसा होता है जो कहता है कि मेरी क्या सामर्थ्य, मैं असहाय हूँ, मेरी कोई शक्ति नहीं है, मैं तुझे कैसे खोज पाऊँगा। अगर तू ही मुझे खोज ले तो शायद घटना घट जाय, मैं तुझे कैसे खोज पाऊँगा। मेरी शक्ति बड़ी छोटी है, एक छोटी सी बूँद हूँ। न मालूम किस रेगिस्तान में खो जाऊँ। अगर सागर ही मुझ तक आ जाय तो ठीक, अन्यथा मैं सागर को

खोज पाऊँ, इसकी कोई सम्भावना नहीं है। जो लोग प्रभु की खोज पर निकलते हैं वे भी अस्मिता को, अहंकार को लेकर निकलते हैं। वे कहते हैं, हम प्रभु को पाकर रहेंगे। साधना करेंगे, योग करेंगे, आसन करेंगे, ध्यान करेंगे, लेकिन पीछे वह मैं खड़ा रहेगा।

बलशाली बुरी तरह हारते हैं

जैन परंपरा में एक बहुत मीठी कथा है। ऋषभ के सौ पुत्र थे। अनेक पुत्रों ने ऋषभ से दीक्षा ले ली। वे संन्यास की यात्रा पर निकल गये। बाहुबली भी ऋषभ के एक पुत्र थे। उन्होंने जरा देर की दीक्षा लेने में, कुछ सोच विचार किया। लेकिन तब तक बाहुबली के छोटे बेटे दीक्षित हो गये। और जब बाहुबली के मन में दीक्षा का ख्याल आया तो उसके अहंकार को बड़ी पीड़ा हुई कि अपने छोटे भाइयों को संन्यास के जगत् में मुझे प्रणाम करना पड़ेगा। क्योंकि वह मुझसे अग्रणी हो गये। उनके संन्यास की यात्रा बड़ी हो गयी। तो अपने से छोटों को और मैं नमस्कार करूँ, यह न हो सकेगा। तो उसने सोचा, ऐसी भी क्या जरूरत है। मैं खुद ही साधना क्यों न कर लूँ। बलशाली व्यक्ति था।

कमजोर तो हारते ही हैं, कभी कभी बलशाली बुरी तरह हारते हैं।

बल ही उनके हारने का कारण हो जाता है। तो बाहुबली एकान्त में जाकर, गहन तपश्चर्या में, सघन तपश्चर्या में लीन हुए। शायद इस पृथ्वी पर कम ही लोगों ने ऐसी तपचर्श्या की होगी, ऐसी साधना की होगी। सब कुछ दाँव पर लगा दिया। सब कुछ। बस एक छोटी सी चीज छोड़कर, वह 'मैं' पीछे खड़ा रहा। उनकी तपश्चर्या की ख्याति कोने कोने तक पहुँच गयी, जहाँ भी लोग सोचते समझते थे, वहाँ तक बाहुबली की खबर पहुँची। और लोग हैरान हुए, इतना पवित्रम व्यक्ति, इतना शुद्धतम व्यक्ति, सब कुछ दाँव पर लगाये खड़ा है, फिर भी कोई दर्शन नहीं हो रहा है सत्य का, क्या बात है ? ऋषभ के पास भी खबर पहुँची। ऋषभ मुस्कुराये और उन्होंने बाहुबली की एक बहन को, जो दीक्षित हो गयी थी, बाहुबली के पास भेजा और कहा, बस, जरा सा तिनका अटका हुआ है, लेकिन वह तिनका पहाड़ों से भारी है। सब दाँव पर लगा दिया है, बस 'मैं' को बचा लिया है।

और आप कुछ भी दाँव पर न लगायें, सिर्फ 'मैं' को दाँव पर लगा दें तो हल हो जायेगा।

लेकिन सब दाँव पर लगा दें, धन, दौलत, शरीर, मन, लेकिन एक पीछे मैं बच जाय तो सब बेकार है। वह दाँव पर लगाने वाला पीछे बच जाय तो आप परमात्मा से संघर्ष कर रहे हैं, आप परमात्मा से प्रार्थना नहीं कर रहे हैं। तो आप सत्य को भी विजय करने निकले हैं, सत्य के साथ एक होने नहीं निकले हैं। यह प्रेम की यात्रा है, यह कोई युद्ध, आक्रमक चित्त की दशा नहीं है।

सब दाँव पर लगा दिया लेकिन……

सब दाँव पर है बाहुबली का। कुछ बचा नहीं लगाने को। वह भी चिन्ता में पड़ा है कि अब और क्या करने को बचा है? जितने उपवास कहे हैं तीर्थंकरों ने, सब पूरे कर डाले। जितने जागरण के लिए कहा, उतनी रातें जाग कर बिता दीं। कहा है खड़े हो, तो महीने खड़े रहा हूँ। कहा है चित्त को एकाग्र कर लो तो चित्त एकाग्र है, सब शर्तें पूरी हैं, फिर कुछ तो हो नहीं रहा है। कहीं कोई कमी तो नहीं दिखायी पड़ती। फिर ऋषभ के द्वारा भेजी गयी बाहुबली की बहन!

बाहुबली आँख बन्द किये विशालकाय व्यक्ति था, सुन्दरतम शरीर वाला व्यक्ति था। गोमटेश्वर में बाहुबली की प्रतिमा है, कभी आपने चित्र देखे होंगे, विशालकाय जिसमें शरीर पर बेलाएँ चढ गयी हैं। और पक्षियों ने कान में घोंसले बना लिये थे, और शरीर पर बेलाएँ चढ़ गयी थीं, उसका उन्हें पता भी नहीं था, क्योंकि वे तो अन्तर के संघर्ष में इतने लीन थे कि शरीर पर क्या घट रहा है, उसका उन्हें पता भी नहीं था।

जरा सिंहासन से नीचे उतर आओ

बहन ने चारों तरफ से जाकर बाहुबली को देखा। इतना घोर तपस्वी तो कभी देखा नहीं गया। कान पर पक्षियों ने घोंसले बना दिये, अण्डे रख दिये, सुरक्षित जगह है। बाहुबली हिलता भी नहीं। बेलाएँ चढ़ गयी हैं, बेलाओं में फूल आ गये हैं। न मालूम कब से बाहुबली ऐसे ही खड़ा है पत्थर की तरह। अब और क्या बाकी है?

और तब गहरे और गहरे घूम कर बहन ने भीतर तक झाँकने की कोशिश की और उसे दिखायी पड़ा, भीतर बस एक चीज बाकी रह गयी, वह 'मैं'। तो एक गीत बाहुबली की बहन ने गाया, कि सब कर चुके तुम, अब जरा सिंहासन से नीचे उतर आओ। बस, और कुछ न करो, जरा सिंहासन से नीचे उतर आओ। यह हाथी की पालकी पर कब तक बैठे रहोगे, जरा नीचे उतर आओ। और बाहुबली को यह सुनायी पड़ा कि हाथी की पालकी पर कब तक बैठे रहोगे, जरा नीचे उतर आओ। सब शुद्ध था, बस वह पालकी अहंकार की भारी थी। और उसी क्षण घटना घट गयी। इतनी बड़ी तपश्चर्या से जो न हुआ था, पालकी से उतरते ही हो गया। बाहुबली ने झुककर बहन को नमस्कार कर लिया और बात समाप्त हो गयी। घटना घट गयी।

करोड़ों में से एक ही अपने अहंकार को खो पाता है

करोड़ लोग प्रयास करते हैं, एक पहुँचता है क्योंकि वह एक ही अपनी अस्मिता को और अहंकार को खोता है।

इसलिए कृष्ण ने कहा, मुझको पारायण हुआ, मेरी तरफ झुक गया, समर्पित हुआ, मेरे चरणों में आ गया।

यहाँ सवाल बड़ा यह नहीं है कि कृष्ण के चरणों में आ जाओ, बड़ा सवाल यह है कि झुक जाओ। ध्यान रहे, असली सवाल झुका हुआ मन, समर्पित, सरेण्डर्ड।

करोड़ में से एक करता है कोशिश, करोड़ कोशिश करते हैं, एक पहुँच पाता है। कोशिश करता है वह जिसके पास विधायक मन है, लेकिन विधायक मन का खतरा है कि वह अहंकार को मजबूत कर दे।

पहुँच पाता है वह, जो मैं को समर्पित कर देता है।

तब फिर, तब फिर कोई बाधा नहीं रह जाती। परमात्मा की तरफ से कोई बाधा नहीं है। आदमी की तरफ से दो बाधाएँ हैं; एक नकारात्मक मन और दूसरा अस्मिता से भरा हुआ भाव, अहंकार से भरा हुआ भाव। इन दो दरवाजों को जो पार कर जाता है, कृष्ण कहते हैं वह मुझको उपलब्ध हो जाता है।

भूमिरापोऽनलो वायुः खं मनो बुद्धिरेव च।
अहंकार इतीयं मे भिन्ना प्रकृतिरष्टधा ॥४॥

और हे अर्जुन, पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु और आकाश तथा मन बुद्धि और अहंकार भी ऐसे यह आठ प्रकार से विभक्त हुई मेरी प्रकृति है।

इस सूत्र में दो तीन बातें समझने जैसी हैं। पहली बात, कृष्ण ने प्रकृति को आठ हिस्सों में विभाजित किया। पंच महाभूत, पृथ्वी, जल, वायु, अग्नि, आकाश। पहले तो पंच महाभूत को थोड़ा समझ लें, क्योंकि पंच महाभूत की धारणा के कारण भारतीय चिन्तन को पश्चिम में बहुत धक्का पहुँच रहा है। इस मुल्क में भी जो लोग सुशिक्षित हैं उनको भी बड़ी कठिनाई होती है। चूंकि अब तो पंच महाभूत का कोई सवाल न रहा। अब तो वैज्ञानिक कहते हैं, एक सौ आठ तत्त्व है। फिर थोड़े गहरे गये हैं तो वह कहते हैं, एक ही तत्त्व है, एक सौ आठ तो उसके प्रकार हैं, वह है विद्युत्।

पंच महाभूत से बना है सारा जगत्

कृष्ण जैसा व्यक्ति जब कहता है, पंच महाभूत, तो सिर्फ कोई लोकोक्ति नहीं हो सकती। लोग सदा ऐसा कहते रहे हैं, पंच महाभूत। मोटा हिसाब है कि पाँच चीजों से सारा जगत् बना हुआ है। लेकिन कृष्ण जब ऐसा वक्तव्य देते हैं तो उस वक्तव्य के पीछे थोड़ा गहरे उतरना पड़ेगा। कृष्ण का वक्तव्य बहुत वैज्ञानिक है। और इसलिए इन पंच महाभून की व्याख्या जैसी मैं देखता हूँ और जैसे आज के पूरे वैज्ञानिक चिन्तन के बाद की जानी चाहिए, वह मैं आपसे कहना चाहता हूँ।

पंच महाभूत केवल लोगों की प्रचलित शब्दावली का उपयोग है। और भारत के भी जो लोग सिर्फ शब्दों को सोचते हैं, शास्त्रों को सोचते हैं, वह भी इस पंच महाभूत की धारणा में गहरे नहीं उतर सके। अगर ठीक से समझें तो पश्चिम में विज्ञान ने जो तत्त्वों की धारणा पैदा की है, वह तो प्रयोगशालाओं में की गयी है। और भारत ने जो पंच महाभूत की धारणा पैदा की है वह प्रयोगशालाओं में नहीं अन्तस अनुभूति में की गयी है। जो लोग भी अन्तस जीवन की गहराइयों में उतरेंगे उन्हें एक तत्त्व का साक्षात्कार जरूर ही होगा, वह है फायर, वह है अग्नि। जो लोग भी अपने भीतर गहरे में जायेंगे, अन्ततः उन्हें अग्नि का अनुभव होगा, विराट अग्नि का अनुभव होगा। इसीलिए जैसे-जैसे व्यक्ति ध्यान में भीतर प्रवेश करता है, प्रकाश, और ऐसे जैसे हजारों सूरज उतर आये हों, दिखाई पड़ने लगते हैं।

ध्यान में प्रकाश का अनुभव अन्तर्गमन की सूचना है।

यह प्रकाश उस अन्तर अग्नि की बहुत दूर की किरण है। जब हम बहुत गहरें में पहुँचेंगे तभी हमें पूरी अग्नि का आभास होगा। हाँ, अग्नि शब्द से सिर्फ आपके घर में जो आग जलती है, उससे ही कृष्ण का प्रयोजन नहीं है।

जीवन के समस्त रूप अग्नि के ही रूप हैं

अग्नि से अर्थ है, जीवन का समस्त रूप अग्नि का ही रूप है।

अब तो वैज्ञानिक कहते हैं कि आपके भीतर भी जो जीवन चल रहा है वह भी आक्सीडाइजेशन से ज्यादा नहीं है। पूरे समय हवाओं की आक्सीजन जाकर आपके भीतर की जीवन ज्योति को जला रही है।

अगर आप, एक दीया जल रहा हो और उसके ऊपर एक काँच का बर्तन ढाँक दें तब आपको पता चलेगा। कभी ऐसा हो जाता है कि तूफान जोर का होता है तो घर में कोई काँच के गिलास को दीये पर ढाँक दें। एक क्षण को तो लगेगा कि दीये को आपने बचा लिया तूफान से, लेकिन ध्यान रखना, तूफान में तो दीया बच भी सकता था, गिलास के भीतर दीया नहीं बचेगा। क्योंकि थोड़ी ही देर में आक्सीजन चुक जायेगी। और आक्सीजन के बिना दीया जल नहीं सकेगा। थोड़ी ही देर में ग्लास के भीतर जितनी हवा है उसकी आक्सीजन जल जायेगी और फिर तो कार्बनडाइआक्साइड रह जायेगा, जो दीये

को बुझा देगा। तूफान तो झेल सकता है दीया लेकिन आक्सीजन की कमी नहीं झेल सकता। क्योंकि आक्सीजन की कमी ही फायर है, अग्नि है।

आप भी नहीं झेल सकते यदि आपकी भी साँस बन्द कर दी जाय। नाक तो छोड़िये, अगर नाक आपकी चलने भी दी जाय और पूरे शरीर पर ठीक से डामर पोत दिया जाय। रोयें रोयें सब बन्द कर दिये जायँ, नाक चलने भी दी जाय तो भी आप पन्द्रह मिनट से ज्यादा जिन्दा नहीं रह पायेंगे। क्योंकि आपका रोआँ रोआँ साँस ले रहा है। वह श्वाँस जाकर आपके भीतर की जीवन अग्नि को जगा रही है। और अगर श्वाँस बन्द कर दी जाय तब तो आप अभी ही समाप्त हो जायेंगे। क्योंकि भीतर भी जीवन एक दीये की भाँति है जिसको पूरे समय आक्सीजन चाहिए। जो अग्नि के जलने का नियम है वही जीवन के जलने का नियम भी है। जीवन की गहराई में, समस्त तत्त्वों की गहराई में अग्नि है।

अग्नि महाभूत है

अग्नि महाभूत है। आधार भूत है। आज विज्ञान की खोज इलेक्ट्रिसिटी पर ले गयी है। वह जिसे आज विद्युत् कह रहे हैं, भारत के अन्तर्मनीषी ने उसे अग्नि कहा था। और ठीक था, क्योंकि अग्नि उन दिनों सुपरिचित शब्द था। और उसी से बात प्रगट की जा सकती थी। विद्युत् भी अग्नि का ही रूप है। तो अग्नि मूल तत्त्व है। पृथ्वी अग्नि का एक रूप है सॉलिड। अग्नि का ठोस रूप पृथ्वी है। अग्नि का दूसरा रूप है जल, लिक्विड प्रवाह। अग्नि का तीसरा रूप है वायु।

विज्ञान कहता है, पदार्थ की तीन स्थितियाँ हैं, सॉलिड, लिक्विड और गैसीयस्। पदार्थ की तीन स्थितियाँ हैं, या तो ठोस जैसे कि पत्थर, या पानी का बर्फ। फिर जलीय, द्रवीय, जैसे कि जल है और फिर वायुवीय जैसे कि पानी की भाप है। प्रत्येक अस्तित्ववान चीज तीन रूपों में प्रगट हो सकती है।

पृथ्वी, जिसे आज विज्ञान कहता है सॉलिड। उन दिनों पृथ्वी से सॉलिड और कोई चीज ख्याल में आ नहीं सकती थी। वह प्रतीक शब्द है। जल, जल से ज्यादा प्रवाहवान कोई चीज ख्याल में नहीं आ सकती थी। और वायु, वायु से ज्यादा वाष्पीय, गैसीय और कोई तत्त्व ख्याल में नहीं आ सकता था। हाँ,

अग्नि है मूल तत्त्व। अग्नि जब प्रगट होती है तो तीन रूपों में प्रगट होती है—पदार्थ का एक रूप ठोस, दूसरा रूप जलीय, तीसरा रूप गैसीय।

और यह अग्नि के प्रगट होने के लिए जो जगह चाहिए वह जगह है आकाश। आकाश से अर्थ है स्पेस। आकाश से अर्थ स्काई नहीं है। आकाश से आपके ऊपर जो चँदोवा तना हुआ है उससे प्रयोजन नहीं है। आकाश शब्द बहुत अद्भुत है। आकाश का कुल अर्थ होता है जिसमें अवकाश मिले, जिसमें जगह मिले, जिसके बिना कोई चीज न हो सके। जगह तो चाहिए, और जगह के दो प्रकार हैं।

अगर मैं आपसे कहूँ कि हत्या हो गयी, तो आप पूछेंगे, कहाँ और कब? आप दो शब्द पूछेंगे कहाँ और कब। कहाँ का मतलब है किस स्थान में, एक्जेक्ट प्लेस, कौन सी जगह है। अगर मैं कहूँ जगह कोई नहीं है, सिर्फ फलाँ आदमी की हत्या हो गयी तो आप कहेंगे कि गलत कह रहे हैं क्योंकि बिना किसी जगह में हुए हत्या नहीं हो सकती। जगह तो चाहिए। लेकिन अकेली जगह में भी हत्या नहीं हो सकती, टाइम भी चाहिए, तो आप पूछते हैं, कब, व्हेन, किस समय हुई? अगर मैं कहूँ नहीं, समय में नहीं हुई। स्थान में तो हुई, समय में नहीं हुई तो आप कहेंगे, नहीं हो सकती है। किसी भी वस्तु को होने के लिए दो आयामों में स्थान चाहिए, समय और स्थान क्षेत्र।

समय और आकाश एक ही हैं

पूछा जा सकता है इस पंच महाभूत की धारणा में आकाश को तो गिनाया, स्पेस को, टाइम को, काल को क्यों नहीं गिनाया। इसलिए एक और मजे की बात आपसे कहना चाहता हूँ कि आइन्स्टीन के पहले तक वैज्ञानिकों को ऐसा ख्याल था कि टाइम और स्पेस दो चीजें हैं। आइन्स्टीन ने यह सिद्ध करने का भगीरथ प्रयास किया और बात सिद्ध हो गयी कि टाइम और स्पेस दो चीजें नहीं हैं। एक ही चीज है टाइम और स्पेस या स्पेस टाइम कन्टीनम। ये दो चीजें नहीं हैं। समय और स्थान एक ही चीज के दो पहलू हैं।

इसलिए कृष्ण के समय तक भी यह ख्याल था कि समय अलग नहीं है। समय भी स्थान का एक हिस्सा है। इसलिए अलग से उसे नहीं गिनाया गया।

पंच महाभूत में अवकाश देने के लिए जरूरी आकाश, अस्तित्व के लिए आधारभूत अग्नि, और प्रगट अस्तित्व के तीन रूप, पृथ्वी, जल और वायु। इन पंच महाभूतों की धारणा है। लेकिन, कृष्ण जैसे व्यक्ति जब बात करते हैं तो जिनसे बात करते हैं, उनके ही शब्दों का उपयोग करते हैं. यही उचित भी है। इसलिए आज कठिनाई हो गयी। आइन्स्टीन मजाक में कहा करता था कि मेरी बात को समझने वाले इस जमीन पर बारह लोगों से ज्यादा नहीं है। वह भी अनुमान था उसका कि बारह लोग इस जमीन पर हैं साढ़े तीन अरब आदमियों में, जो मेरी बात समझ सकते हैं। हालाँकि इसकी पत्नी ने शक जाहिर किया है कि बारह लोग भी हो सकते हैं। क्या बात है? आइन्स्टीन की बात को समझने के लिए बारह लोग! आइन्स्टीन जो भाषा बोल रहा है, उस भाषा में सारी कठिनाई है। वह गणित की भाषा है।

कृष्ण जो भाषा बोल रहे हैं वह लोक भाषा है। कृष्ण की बात सबकी समझ में आ सकती है। लोक भाषा में बोलने का एक खतरा है कि चीजें कभी तर्कबद्ध और सूक्ष्म नहीं हो सकतीं। लेकिन सूक्ष्म और तर्कबद्ध और गणित की भाषा में बोलने का दूसरा खतरा है कि चीजें किसी की समझ में नहीं आतीं। समझ के बाहर हो जाती हैं।

तो जिनकी दृष्टि केवल तत्त्व अन्वेषण की है वह तो गणित की भाषा भी बोल सकते हैं। इसलिए आइन्स्टीन का ख्याल है कि भविष्य की विज्ञान की भाषा, आम भाषा नहीं रहेगी, सिर्फ गणित की भाषा हो जायेगी। अंकों में बात होगी शब्दों में नहीं। क्योंकि शब्दों में गड़बड़ होती है। प्रतीकों में बात होगी, शब्दों में नहीं। क्योंकि शब्दों के अनेक अर्थ होते हैं।

लेकिन कृष्ण जो बोल रहे हैं वह तत्त्व अन्वेषण के लिए नहीं, तत्त्व साधना के लिए बोल रहे हैं। अर्जुन को समझ में आ सके, उस भाषा में बोल रहे हैं। तो उन्होंने लोक प्रचलित पंच महाभूत की बात कही।

लेकिन उस पंच महाभूत की बात में पूरी वैज्ञानिक दृष्टि है। आधारभूत तो एक ही है अग्नि, तेज। इसलिए अग्नि को देवता कहा। इसलिए सारे जगत् में अग्नि की पूजा हुई। अभी भी पारसी अपने मंदिर में चौबीस घण्टे अग्नि को जलाये हुए हैं। शायद उन्हें ठीक पता भी नहीं कि किसलिए जलाये

हुए हैं। रीति है, प्रचलित है, इसलिए जलाये हुए हैं। उनका मंदिर तो अग्नि का ही मंदिर है लेकिन ख्याल नहीं है कि क्यों?

अग्नि जीवन का आधारभूत तत्त्व है, वही देवता है। उससे ही जीवन का सब रूप विकसित होता है। मंदिर में अग्नि जलाकर बैठने से कुछ हल न होगा। इस जीवन में सब तरफ अग्नि को ही जलते हुए देखने से अग्नि के देवता का दर्शन होता है। जहाँ भी जो कुछ है, वह अग्नि का रूप है। और उस अग्नि के तीन रूप हैं—प्रगट, ठोस, फिर जलीय, फिर वायवीय। और जगह जिसमें है, समय और स्थान, उसका नाम आकाश है। इन पंच महाभूतों की कृष्ण ने बात कही है। इनसे प्रकृति बनी है। और तीन और अन्तर रूपों की बात कही है। और इन आठों को इकट्ठा गिनाया है। और तीन रूप कहे हैं—मन, बुद्धि, अहंकार।

इस जगत् में अहंकार का अस्तित्व सूक्ष्मतम है

सबसे ज्यादा पहली चीज कही पृथ्वी, और सबसे अंतिम चीज कही अहंकार। पृथ्वी सबसे मोटी और स्थूल चीज है। अहंकार सबसे सूक्ष्म और बारीक और डेलीकेट चीज है। इस जगत् में जो सूक्ष्मतम अस्तित्व है वह अहंकार है। और जो स्थूलतम अस्तित्व है वह पृथ्वी है। इसलिए इस तरह एक एक के बाद, सबसे पहले, भीतर की यात्रा में कहा मन। मन का अर्थ है हमारे भीतर वह जो सचेतना है, वह जो कांसेसनेस है।

मन का अर्थ है सचेतना।

वह जनरलाइज, हमारे भीतर जो मनन की शक्ति है उसका नाम मन है। मन का बहुत रूप जानवरों में भी है। जानवर भी मन से जीते हैं लेकिन बुद्धि उनके पास नहीं है। बुद्धि मन का स्पेशलाज्ड रूप है। सिर्फ मनन नहीं, बल्कि तर्कयुक्त, तर्क सरणीवद्ध चिन्तन का नाम बुद्धि है। और बुद्धि के भी पीछे जब कोई बहुत बुद्धि का उपयोग करता है तभी भीतर एक और सूक्ष्मतम चीज का जन्म होता है जिसका नाम अहंकार है, 'मैं'।

यह आठ तत्त्वों से सारी प्रकृति मैंने रची है, कृष्ण कहते हैं। यह किस लिए कहते हैं? यह वह इसलिए कहते हैं कि इन आठ तत्त्वों में तू प्रकृति को जानना। और जब इन आठ के पार चले जायें, तब तू मुझे जान पायेगा। इन

आठ के भीतर तू जब तक रहे तब तू जानना कि संसार में है, और जब इन आठ के पार हो जाये, तब तू जानना कि तू परमात्मा में है।

सर्वाधिक कठिनाई अहंकार के साथ होती है

सर्वाधिक कठिनाई और आखिरी मुसीबत तो अहंकार के साथ होगी, क्योंकि बहुत ही बारीक है। हवा को तो मुट्ठी में हम बाँध भी लें थोड़ा बहुत, वैसे उसको मुट्ठी में भी बाँधने का उपाय नहीं। हवा तो चलती है तो उसका धक्का भी लगता है, अहंकार चलता है तो उसका स्पर्श भी मालूम नहीं पड़ता।

इसीलिए तो दुरूह हो जाता है अहंकार से ऊपर उठना। क्योंकि इतना सूक्ष्म है कि आप कुछ भी करो, उसी में प्रवेश कर जाता है। आप त्याग करो, वह उसी के पीछे खड़ा हो जाता है। वह कहता है, मैंने त्याग किया। आप किसी के चरण छुओ, समर्पण करो, वह पीछे से कहता है कि देखो, मैं कितना विनम्र हूँ। मैंने चरण छुये। आप प्रार्थना करो, परमात्मा के मंदिर में सिर पटको, वह कहता है कि देखो, मैं कितना धार्मिक हूँ। मैंने प्रभु की प्रार्थना की। जब कि दूसरे अधार्मिक सड़कों से जा रहे हैं दूकानों की तरफ, मैं धार्मिक, प्रभु की प्रार्थना कर रहा हूँ। वह मैं आपकी प्रत्येक क्रिया के पीछे खड़ा हो जाता है। आप कुछ भी करो, वह सदा पीछे है। वह इतना बारीक है कि आप कहीं से द्वार दरवाजे बन्द नहीं कर सकते, जहाँ वह न आ जाय। जहाँ भी आप होंगे, वहाँ वह पहुँच जायेगा। जब तक आप होंगे, तब तक वह पहुँच जायेगा।

तो कृष्ण ने यह विभाजन करके कहा, वह इसीलिए कहा है कि मोटी से मोटी चीज है पृथ्वी और सूक्ष्म से सूक्ष्म चीज अहंकार।

पदार्थ और अहंकार दोनों से मुक्त होना पड़ेगा

पदार्थ से तो मुक्त होना ही है, अन्ततः अस्मिता से भी मुक्त होना है।

क्योंकि अहंकार भी पदार्थ का ही सूक्ष्मतम रूप है। अगर ठीक से समझें तो मैंने जैसा कहा कि अग्नि के ही रूप हैं सब बाह्य पदार्थ वैसे ही अग्नि के ही रूप हैं भीतर के सब पदार्थ। जिसको हम मनन कहते हैं वह भी अग्नि का

ही एक रूप है। और जिसे हम बुद्धि कहते हैं वह भी अग्नि का ही एक रूप है।

और इसीलए मैं आपसे कहूँ कि अगर पश्चिम में आज सफलता मिल गयी है कम्प्यूटर बनाने में, और जो बुद्धि से आप काम करते थे वह पेट्रोल या बिजली से चलने वाली मशीन करने लगी है, तो बहुत चकित होने की जरूरत नहीं। क्योंकि आप भी जो काम कर रहे हैं वह भी सिर्फ नेचुरल कम्प्यूटर का है। आपके भीतर भी जो चल रहा है काम, वह भी अग्नि से ही चल रहा है। ठीक वैसे ही मशीन बाहर भी अग्नि से काम कर सकती है। और काम करने लगी है। और आदमी से ज्यादा कुशल काम करती है। क्योंकि उस मशीन के पास कोई अहंकार नहीं है जो बीच में बाधा डाले। कोई अहंकार नहीं, वह बिल्कुल कुशलता से काम करती रहती है। ठीक फ्यूल मिल जाय, ईंधन मिल जाय, मशीन काम करती रहती है।

आपकी बुद्धि का काम तो मशीन करने लगी है। आज नहीं, कल, शायद हम किसी दिन ऐसी मशीन भी ईजाद करने में सफल हों जायेंगे, अभी किसी वैज्ञानिक को सूझा नहीं है और न उन लोगों को सूझा है जो विज्ञान के सम्बन्ध में उपन्यास और कल्पनाएँ लिखते हैं। लेकिन मैं कहता हूँ, किसी दिन यह भी संभव हो जायेगा कि हम ऐसी मशीन बनाने में सफल हो जायेंगे कि जिस मशीन को आप जरा पैर की चोट मार दें वह कहेगी, देखते नहीं, मैं कौन हूँ! बिल्कुल मशीन कह सकती है। क्योकि अहंकार भी बहुत सूक्ष्म अग्नि है।

अगर हमने विचार पैदा कर लिया मशीन से, अगर हमने विचार का काम ले लिया मशीन से, अगर हमने बुद्धि का काम ले लिया मशीन से तो बहुत देर नहीं लगेगी कि उसमें हम अस्मिता को भी जन्म दे दें। और मशीनें भी अकड़कर बैठ जायँ, कुछ मशीनें राष्ट्रपति हो जायँ, कुछ मशीनें प्रायम मिनिस्टर हो जायँ, कुछ कठिनाई नहीं है। और मशीनें दावे करने लगें। मशीनें कभी न कभी दावे करेंगी, क्योंकि हमारे भीतर भी मशीनें दावे कर रही हैं। हमारे भीतर भी दावे मशीनों के हैं। लेकिन वह है मशीन प्रकृति की।

सुना है मैंने एक अदालत में एक गरीब आदमी पर मुकदमा चल रहा है। और मजिस्ट्रेट उससे पूछता है कि क्या तुमने नेता जी को बदमाश कहा? गाँव

में कोई नेताजी हैं, सभी गाँव में हैं। मानहानि का मुकदमा चल रहा है उस आदमी पर। नेताजी ने मानहानि का मुकदमा चलाया। कमजोर नेताजी रहे होंगे। नहीं तो नेता लोग मानहानि की फिक्र नहीं करते, चौबीस घण्टे सहनी पड़ती है। जिसको मान चाहिए उसे मानहानि सहनी ही पड़ेगी। जिसे सिंहासन पर चढ़ना है उसे गालियों के रास्ते से ही गुजरना पड़ेगा। कोई उपाय नहीं है। कमजोर नेताजी रहे होंगे, या सिक्खड़, एमेच्योर, अभी नये नये होंगे। मुकदमा चला दिया, गुस्से में आ गये।

मजिस्ट्रेट उस आदमी से पूछ रहा है, नेताजी सामने खड़े हैं, कि क्या तुमने नेताजी को बदमाश कहा? उसने कहा, जी हाँ। नेताजी सोचते थे, शायद मना करेगा। मजिस्ट्रेट भी सोचता था कि मना करेगा। मजिस्ट्रेट भी चौंका। कहा, कि क्या तुमने चोर भी कहा? उस आदमी ने कहा, जी हाँ। कहा, क्या तुमने डाकू भी कहा? उसने कहा, जी हाँ। कहा, क्या तुमने हत्यारा भी कहा? उसने कहा, जी हाँ। मजिस्ट्रेट ने कहा, क्या तुमने गधा भी कहा? उसने कहा कहना चाहता था, लेकिन माफ करिये, कहा नहीं। पूछा क्यों? उसने कहा कि जब मैं कहने के करीब आया तो मुझे ख्याल आया कि कहीं गधे नाराज न हो जायें। क्योंकि न तो गधे चोर होते हैं, न बेईमान होते हैं, न बदमाश होते हैं, न हत्यारे होते हैं। पहले तो मैंने तय किया था कि कहूँगा। लेकिन पीछे मैं, माफ करिये, मैं छोड़ गया, कहा नहीं मैंने।

पशु की सब प्रवृत्तियाँ आदमी में सूक्ष्म हो जाती हैं

आदमी जो भी कह रहा है, उसमें और पशुओं में बड़ा भेद नहीं है। बस थोड़ी सूक्ष्मता का भेद पड़ता है, और कुछ भेद नहीं पड़ता। पशु उसे ही जरा अनगढ़ ढंग से करते हैं, आदमी गढ़ कर करता है। सब पशु की प्रवृत्तियाँ आदमी में सूक्ष्म हो जाती हैं, बस। सूक्ष्म होने से और जटिल हो जाती हैं। सूक्ष्म होने से और कनिंग, और चालाक हो जाती हैं। पशु में एक सरलता भी दिखायी पड़ती है, आदमी में वह भी खो जाती है। क्योंकि वह जटिलता का बिन्दु, भीतर अस्मिता, अहंकार पैदा हो जाता है, वह सारी चीजों को उलझा देता है।

और जिसको परमात्मा की यात्रा पर जाना हो उसे पदार्थ के सूक्ष्मतम रूप, अग्नि के उस सूक्ष्मतम खेल, प्रकृति के उस सूक्ष्मतम रहस्य के ऊपर जाना पड़ेगा।

इसलिए कृष्ण कहते हैं, यह है विभाजन। यह मैंने रची प्रकृति। इस तरह आठ हिस्सों में मैंने इस प्रकृति को रचा है। जोर यह है कि तू समझ ले कि यह प्रकृति है। यह तू नहीं है। और जोर यह है कि तू समझ ले कि प्रकृति है, यह परमात्मा नहीं है।

जो भी रचा जाता है वह प्रकृति है और जो भी रचा नहीं जाता वही परमात्मा है।

जो भी बनता है वह प्रकृति है और जो कभी नहीं बनाया जाता वही परमात्मा है।

जो निर्मित होता है वह प्रकृति है और जो सदा अनिर्मित है और है, अनक्रिएटेड, असृष्ट, वही परमात्मा है।

अहंकार निर्मित होता है

अहंकार भी निर्मित होता है। बच्चों में अहंकार नहीं होता, धीरे-धीरे निर्मित होता है। बुद्धि भी निर्मित होती है। बच्चों में बुद्धि नहीं होती। और आप ऐसा सोचते हों कि आप बुद्धि लेकर पैदा हुए हैं, ठीक नहीं है। सिर्फ आप संभावना लेकर पैदा होते हैं। बाद में सब निर्मित होता है। अगर आपको जंगल में भेड़ियों के पास रख दिया जाय और बड़ा किया जाय तो आपके पास कोई बुद्धि नहीं होगी। हाँ, भेड़ियों के पास जितनी बुद्धि होती है उतनी बुद्धि आपके पास होगी। उससे ज्यादा नहीं।

अगर आप सोचते हों, आपको एकान्त में रखा जाय, अकबर ने ऐसा प्रयोग किया। अकबर को किसी फकीर ने कहा कि आदमी वही हो जाता है जो उसे बनाया जाता है। इसलिए बनाया हुआ आदमी झूठा है। हम तो उस आदमी की तलाश में हैं जो अनबनाया हुआ है, जो अनबना है। अकबर ने कहा, मैं यह नहीं मान सकता कि आदमी सब बनाया हुआ है। उस फकीर ने कहा, कौन सी चीज आपको गैर बनायी दिखती है? अकबर ने कहा, जैसे आदमी की बुद्धि, विचार। यह आदमी के बनाये हुए नहीं है। यह तो भीतर से आते हैं।

सबको, हमको ख्याल है कि भीतर से आते हैं। इसलिए तो हम लड़ पड़ते हैं। कोई आदमी अगर कहे कि आपका विचार गलत, तो आप कहते हैं, मेरा विचार गलत! कभी नहीं। मेरा विचार! ऐसा लगता है कि जैसे मेरे साथ। नहीं सब विचार बाहर से भीतर डाले जाते हैं।

तो उस फकीर ने कहा, आप एक प्रयोग कर लें। एक लड़के को, जन्मजात बच्चे को, अभी पैदा हुआ और उठाकर कारागृह में रखा गया। सब तरह से उसकी सेवा की जाती है, उसे दूध पहुँचाया जाता, सब किया जाता। लेकिन कहा गया पहरेदारों को कि वह बोलें न उस बच्चे के सामने कभी। उनके मुँह बन्द, सी दिये गये। वह बच्चा बड़ा हुआ और अकबर मुसीबत में पड़ने लगा। जैसे जैसे वह बड़ा हुआ उसमें आदमी जैसा कुछ भी प्रगट न हुआ। न तो वह चलना सीख पाया, न वह बैठना सीख पाया, न वह बोलना सीख पाया। वह कुछ भी नहीं सीख पाया। वह दस साल का हो गया, उससे एक शब्द न फूटा। वह बारह साल का हो गया, उससे एक शब्द न फूटा। वह सत्रह साल का होकर मरा और अकबर सत्रह साल तक उसकी प्रतीक्षा करता रहा। आखिर, उसने कहा नहीं, उसमें कुछ न आया। वह सब बाहर से डाला गया है। वह सब बनावट है।

सब आदमी बनाये हुए हैं, मैन्युफेक्चर्ड।

हाँ, कोई मेड इन इण्डिया, कोई मेड इन जापान, वह अलग बात है। बाकी सब आदमी मैन्युफेक्चर्ड हैं। कोई हिन्दू, कोई जैन, कोई मुसलमान, सब मैन्युफेक्चर्ड हैं। क्योंकि अहंकार तक जो भी है वह सब प्रकृति है। बुद्धि भी प्रकृति है, मन भी प्रकृति है। जैसे बाहर पड़ा हुआ पत्थर है ऐसे ही भीतर पड़ा हुआ अहंकार है। इसमें कोई सूक्ष्म अन्तर नहीं है। ये दोनों एक ही चीज है। यह सब बना बनाया है। इसके पार है वह जो असृष्ट, अनक्रिएटेट है। इन सबके पार जाय कोई, तो उसका दर्शन है।

अपरेयमितस्त्वन्यां प्रकृतिं विद्धि मे पराम्।
जीवभूतां महाबाहो ययेदं धार्यते जगत् ॥५॥

सो यह आठ प्रकार के भेदों वाली तो अपरा है, अर्थात् मेरी जड़ प्रकृति है और हे महाबाहो इससे दूसरी को मेरी जीवरूप परा अर्थात् चेतन प्रकृति जान कि जिससे यह सम्पूर्ण जगत् धारण किया जाता है।

यह जो आठ अंगों वाली प्रकृति है, यह अपरा है। अपरा का अर्थ होता है निम्न। नीचे की, इस पार की। और इन आठ के पार मेरी वह प्रकृति है जो परा है, बियोन्ड, उस पार की। यह आठ विभाजन इस किनारे के हैं। और एक मैं हूँ उस पार, इस सबसे दूर, और ऊपर, परा। इन सबके पार, इन सबको ट्रांसिट कर जाता हूँ।

उस चैतन्य को, उस चेतना को, जो इन सबके पार है, तू उन सबको धारण करने वाली समझ। वह जो पार है, क्या है, उस सम्बन्ध में थोड़ा सा समझें। क्योंकि वही सबको धारण करने वाली है। वही धर्म है। वही सबको सँभाले है। यह इतना विराट विस्तार उसकी ही छाती पर है, उस परा की। उस पार की चेतना, वह पार की चेतना क्या है? और हमारे भीतर उस पार की चेतना की तरफ जाने वाला द्वार कहाँ है?

परा को पहचानने की प्रक्रिया ही समस्त योगों का सार है

समस्त योग का सार, उस परा को पहचानने की प्रक्रिया, टेकनिक है।

स्वयं के भीतर वह परा, वह बियोन्ड कहाँ शुरू होता है? शरीर में नहीं, क्योंकि शरीर पदार्थ है। मन में नहीं, क्योंकि मन भी बाहर से संग्रहीत विचारों

का जोड़ है। बुद्धि में नहीं, क्योंकि बुद्धि भी सूक्ष्मतम अग्नि का रूप है। अहंकार में नहीं, क्योंकि अहंकार भी स्वनिर्मित धारणा है। फिर कहाँ ? फिर किसमें हम उस सेतु को पायें, उस द्वार को, जहाँ से सबको धारण करने वाली चेतना का साक्षात् और मिलन है ?

इन सबके साक्षीत्व में। मैं अपने शरीर का साक्षी हो सकता हूँ। यह रहा मेरा हाथ, मैं इस हाथ को देख सकता हूँ। यह हाथ मेरा काट दिया जाय तो मैं इस हाथ की पीड़ा को देख सकता हूँ। यह हाथ कट जाय तो भी मैं देखूंगा कि मैं नहीं कटा, हाथ ही कटा है। इस हाथ के कट जाने के बाद भी मुझे जरा भी न लगेगा कि मेरे बीइंग, मेरे अस्तित्व में कुछ टुकड़ा अलग हो गया है। मैं उतना का उतना ही रहूँगा। मेरे होने की जो धारणा है उसमें खण्ड जरा सा भी अलग नहीं होगा। मैं उतना ही रहूँगा। मेरे पैर भी कट जायँ तो भी मैं उतना ही रहूँगा। मेरी आँख भी फूट जाय तो मेरे शरीर में कमी पड़ती जायेगी लेकिन मेरे होने में, मेरे अस्तित्व में कोई भेद न पड़ेगा।

सोचें ऐसा, आप रात सोये हैं, रात आपकी आँख चली जाय नींद में। सुबह जब आप को पहली दफा पता चलेगा कि आप जाग गये हैं, क्या आपको पता चल सकेगा आँख बन्द में कि आपकी आँख चली गयी ? अगर आपके भीतर कुछ कम हो गया हो तो जरूर पता चलना चाहिये लेकिन कुछ कम हुआ नहीं है इसलिए पता नहीं चलेगा। आँख खोलेंगे और कुछ न दिखायी पड़ेगा तब पता चलेगा कि कुछ कमी हो गयी भीतर कोई कमी न होगी। बाहर के सम्बन्ध का एक द्वार टूट गया। भीतर आप पूरे के पूरे हैं। भीतर आपको कोई फर्क नहीं पड़ेगा। अगर आपको बेहोश करके आपका पैर काट दिया जाय तो और जब तक पैर न चला जाय तब तक आपको बेहोश और डीप फ्रीज में रखा जाय। फिर आपके पैर का दर्द जा चुका हो, आपको होश में लाया जाय। शरीर पर कम्बल पड़ा हो, आपको भीतर से जरा भी पता नहीं चलेगा कि पैर कट गया है, जब तक कि कम्बल न उठाया जाय, जब तक आप देखें न। जब तक आप चलें और गिर न पड़ें तब तक आपको पता नहीं चलेगा कि पैर कट गया। क्योंकि भीतर कुछ कटता नहीं। तो भीतर पता कैसे चलेगा ? पता तो तभी चलेगा जब बाहर प्रयोग करेंगे शरीर का और कोई कमी मालूम पड़ेगी तभी पता चलेगा, अन्यथा पता नहीं चलेगा।

हम साक्षी हो सकते हैं

शरीर के हम साक्षी हो सकते हैं, विटनेस हो सकते हैं। जान सकते हैं कि यह मैं नहीं हूँ। क्योंकि जिसको भी मैं देख पाता हूँ वह मैं नहीं हो सकता। जो भी दृश्य बन गया वह मैं नहीं हो सकता। मैं आपको देख रहा हूँ, एक बात पक्की हो गयी कि वह जो आप वहाँ बैठे हुए हैं वह मैं नहीं हूँ। अन्यथा मैं आपको देख न पाता। देखने के लिए दूरी चाहिए, परसेप्शन के लिए पर्सपेक्टिव चाहिए, फासला चाहिए, नहीं तो मैं देख न पाऊँगा।

आपको देख पाता हूँ, क्योंकि मैं अलग हूँ। दूर खड़ा हूँ। मैं अपने शरीर को भी देख पाता हूँ। आप बच्चे थे तब भी अपने शरीर को देखा। जवान हो गये तब भी अपने शरीर को देखा फिर भी आपको ख्याल न आया कि शरीर तो बिल्कुल बदल गया है लेकिन आप ? आप तो वही के वही हैं। आपके भीतर कुछ भी नहीं बदला, रत्ती भर। आप बूढ़े भी हो जायेंगे तब भी आपके भीतर आप वही होंगे जो आप बच्चे थे, तब थे। भीतर, वह जो चेतना है, वह अछूती गुजर जाती है।

शरीर मैं नहीं हूँ, यह हम शरीर के साक्षी होकर जान सकते हैं। फिर हम विचारों के भी साक्षी हो सकते हैं। आप भीतर देख सकते हैं कि यह क्रोध चल रहा है। आप भीतर देख सकते हैं, यह लोभ सरक रहा है। आप भीतर देख सकते हैं कि यह काम यात्रा कर रहा है। विचार को आप देख सकते हैं वैसे ही अपने भीतर के पर्दे पर, जैसे आप फिल्म को देखते हैं। उसके भी आप साक्षी हो सकते हैं। तो फिर आप उससे भी अलग हो गये। कठिनाई थोड़ी सी पड़ेगी 'मैं' को देखने में क्योंकि वह सूक्ष्मतम है और हम उससे आइडेन्टीफाइड हैं।

लेकिन 'मैं' को भी आप लोग देख सकते हैं। जब आप सड़क पर चलते हैं एकान्त, सड़क पर कोई भी नहीं है। फिर अचानक दो आदमी सड़क पर निकलते हैं तब आपने ख्याल किया है कि कोई साँप आपके भीतर सरक कर फन उठा लेता है। उसे जरा गौर से देखना जब आप अकेले थे तो आप कुछ और थे, अब दो आदमी सड़क पर आ गये तो आप कुछ और क्यों हो गये ? यह कुछ और क्या है ? यह भीतर 'मैं' का भाव खड़ा हो गया। कोई आदमी आपको गाली देता है तब जरा भीतर गौर से देखना कि कोई साँप फन उठाता

है, जैसे फुफकारता हो, जैसे सोये साँप को चोट मार दी हो, कोई आपके भीतर उठकर खड़ा हो जाता है। जरा उसे गौर से देखना। जब आप सुन्दर कपड़े पहनकर निकलते हैं सड़क पर तब आप वही नहीं होते जब आप दीन हीन कपड़े पहन कर निकलते हैं। भीतर थोड़ा सा फर्क होता है। आज मैं छोटी सी कहानी एक मित्र को लिख रहा था।

लिख रहा था कि एक हाथी ने एक दिन एक चूहे को देखा। चूहे जैसा छोटा प्राणी हाथी ने कभी देखा नहीं था। इसलिए नहीं कि छोटे प्राणी नहीं हैं बल्कि हाथी जैसे प्राणी को कहाँ ये छोटे छोटे प्राणी दिखायी पड़ें। चूहे को एक दिन देख लिया, ऐसे ही फुर्सत में रहा होगा विश्राम में रहा होगा। चूहे को देखकर बड़ा हैरान हुआ। उसने कहा, तुझसे क्षुद्र प्राणी मैंने जीवन में नहीं देखा। बड़ी अकड़ से कहा कि तुझसे क्षुद्र प्राणी मैंने कभी नहीं देखा। क्षुद्रतम है तू। चूहे ने पता है क्या कहा ? चूहे ने ऊपर हाथी को देखा और कहा, माफ करें ऐसा मैं सदा नहीं होता, जरा मेरी तबियत खराब थी। यह मेरा सदा का रूप नहीं है, आई हैव बीन सिक, यह मेरी सदा की स्थिति नहीं, जरा मैं बीमार पड़ गया था।

हाथी को होगा अहंकार, तो चूहे को भी है। वह भी अपने अहंकार को बचाने की कोशिश करेगा। हम सब कर रहे हैं। फर्क कुछ भी नहीं है। वही चूहे वाली बुद्धि है। इसको थोड़ा अगर जागकर देखते रहेंगे कि कब कब खड़ा होता है ? जब कोई आपसे कहता है कि अरे, तब कई बार आपका मन भी ऐसा होता है न कहने का, कि यह मेरी सदा की हालत नहीं है, मैं जरा बीमार रहा।

अहंकार को देखते ही छलांग लग जाती है

वह जो भीतर 'मैं' है, उसको जरा जाग कर खोजते रहेंगे कि वह कहाँ कहाँ खड़ा होता है तो जल्दी आपकी उससे मुलाकात होने लगेगी, जगह जगह मुलाकात होगी। आइने के सामने खड़े होंगे तो शकल कम दिखायी पड़ेगी, अहंकार ज्यादा दिखायी पड़ेगा। किसी से हाथ मिलायेंगे तो आप कम मिलते हुए मालूम पड़ेंगे, अहंकार ज्यादा मिलता हुआ मालूम पड़ेगा। किसी से बात करेंगे तो आप बात करते हुए नहीं मालूम पड़ेंगे, अहंकार भीतर खड़ा हुआ मालूम पड़ेगा। थोड़ा होश का प्रयोग करेंगे तो धीरे-धीरे आपके और आपके

अहंकार के बीच एक गैप, एक फासला पैदा हो जायेगा। और आप देख पायेंगे, यह है अहंकार, यह रहा अहंकार।

और जिस दिन आप अहंकार को भी देख पायेंगे, उसी दिन, उसी दिन छलांग, उसी दिन आप इस आठ वाली प्रकृति से छलांग लगाकर उस भीतर की परा प्रकृति में पहुँच जायेंगे जो कृष्ण कहते हैं, मेरा स्वरूप, मेरी चेतना। और उसी चेतना में सब धारण किया हुआ है। तब आप पायेंगे कि आपके शरीर को भी उसी ने धारण किया हुआ है। तब आप पायेंगे कि आपकी बुद्धि को भी उसी ने धारण किया हुआ है। तब आप पायेंगे, आप कभी भीतर गये ही नहीं, उसको आपने कभी देखा ही नहीं जो प्राणों का प्राण है। आपने उसे देखा ही नहीं जो सारी परिधि का केन्द्र है। आपने कभी मालिक को देखा ही नहीं, आप नौकरों से ही उलझे रहे। और अनेक बार आपने नौकरों को ही समझ लिया कि यह 'मैं' हूँ। आप मालिक तक कभी पहुँचे ही नहीं।

कृष्ण अर्जुन को उस मालिक की तरफ ले जाने की एक एक कदम कोशिश कर रहे हैं। कहा, यह है आठ की प्रकृति। अर्जुन तू इसे ठीक से समझ ले। और फिर इसके पार होने के लिए मैं उस बात की तुझे खबर दूँ जो परा है, वह जो चैतन्य है। पीछे सबके छिपा है, जो सबका निर्माता, जो सबका आधार और जो सबको फिर अपने में आत्मसात् कर लेता है।

ओम है योग

तीसरा प्रवचन

गीता-ज्ञान-यज्ञ, बम्बई, रात्रि दिनांक २४ मई, १९७१

एतद्योनीनि भूतानि सर्वाणीत्युपधारय ।
अहं कृत्स्नस्य जगतः प्रभवः प्रलयस्तथा ॥६॥
मत्तः परतरं नान्यत्किंचिदस्ति धनंजय ।
मयि सर्वमिदं प्रोतं सूत्रे मणिगणा इव ॥७॥

और हे अर्जुन, तू ऐसा समझ कि संपूर्ण भूत इन दोनों प्रकृतियों से ही उत्पत्ति वाले हैं और मैं संपूर्ण जगत् का उत्पत्ति तथा प्रलयरूप हूँ, अर्थात संपूर्ण जगत् का मूल कारण हूँ।

हे धनंजय, मेरे से सिवाय किंचित्मात्र भी दूसरी वस्तु नहीं है। यह संपूर्ण जगत् सूत्र में सूत्र के मणियों के सदृश मेरे में गुँथा हुआ है।

जगत् प्रगट है, ऐसे ही जैसे माला के मनके प्रगट होते हैं। परमात्मा अप्रगट है, वैसे ही जैसे मनकों में पिरोया हुआ धागा अप्रगट होता है। पर वह जो अप्रगट है, उसी पर प्रगट सँभला हुआ है। जो नहीं दिखायी पड़ता उसी पर जो दिखायी पड़ता है, आधारित है।

परमात्मा मनकों के भीतर छिपे धागे की भांति अप्रगट है

जीवन के आधारों में सदा ही अदृश्य छिपा होता है।

वृक्ष दिखायी पड़ता है, जड़ें दिखायी नहीं पड़ती हैं। फूल दिखायी पड़ते हैं, पत्ते दिखायी पड़ते हैं, जड़ें पृथ्वी के गर्भ में छिपी रहती हैं, अन्धकार में अदृश्य में। पर उन अदृश्य में छिपी जड़ों पर ही वृक्ष की, जीवन की सारी लीला निर्भर है।

यदि हम ऊपर से ही देखें तो शायद समझें, फूलों में प्राण होंगे, तो शायद हम समझें कि पत्तों में प्राण होंगे, तो शायद हम समझें कि वृक्ष की शाखाओं में प्राण होंगे। ऊपर से जो देखेगा उसे ऐसा ही दिखायी पड़ेगा। लेकिन प्राण तो उन जड़ों में हैं जो नीचे अन्धकार में, अदृश्य में छिपी और दबी हैं।

इसलिए कोई पत्तों को तोड़ डाले, फूलों को तोड़ डाले, शाखाओं को काट डाले, वृक्ष का अंत नहीं होता। फिर नये अंकुर फूट जाते हैं, फिर नये पत्ते आ जाते हैं, फिर नये फूल खिल जाते हैं। लेकिन कोई जड़ों को काट डाले, तो वृक्ष का अन्त हो जाता है। फिर पुराने फूल मौजूद हों तो थोड़ी ही देर में कुम्हला जाते हैं और पुराने पत्ते भी थोड़ी ही देर में पतझड़ को उपलब्ध हो जाते हैं।

जीवन का विराट रूप भी ऐसा ही है। जो दिखायी पड़ता है, जिसने भूल से यह समझ लिया कि वही प्राण है, वह अधार्मिक जीवन में डूब जाता है। जो दिखाई पड़ता है, उसके भीतर जिसने जड़ों को खोजा, अदृश्य को खोजा, मनकों के भीतर धागे को खोजा, वह जीवन में धर्म की यात्रा पर निकल जाता है।

अदृश्य की खोज धर्म है, अदृश्य में उलझ जाना संसार है।

जो दिखायी पड़ता है, उसको सब कुछ मान लेना संसार है। और जो नहीं दिखायी पड़ता है, उस न दिखायी पड़ने वाले का भी मूल आधार जानना धर्म है। कृष्ण इसमें दो तीन बातें कहते हैं।

मनकों में जो उलझा वह धागे से वंचित रह जायेगा

एक तो वे अपने अदृश्य रूप की बात करते हैं। वे कहते हैं, छिपा हुआ हूँ मैं, दि हिडन, गुप्त हूँ, प्रगट नहीं हूँ। और जो प्रगट है, वह केवल प्रकृति है। और वह जो प्रगट है, वह जो मैंने अष्टधा, आठ तरह की प्रकृति की बात कही, उसका ही खेल है। वह सब मेरा बनाया हुआ खेल है। वह सब मनके मैंने निर्मित किये हैं, मैं तो धागा ही हूँ।

अदृश्य है परमात्मा, इस सत्य के ऊपर इस सूत्र में जोर दिया है। हम सब निरन्तर पूछते हैं, कहाँ है परमात्मा, कैसा है परमात्मा? जब भी हम

ऐसे सवाल उठाते हैं तो हम गलत सवाल उठाते हैं। और जो भी इन गलत सवालों के जवाब देता है वह जवाब सवालों से भी ज्यादा गलत होते हैं। ये जो हमने सारी प्रतिमाएँ खड़ी कर रखी हैं परमात्मा की, ये हमारे प्रश्नों के जवाब हैं जो हमने पूछे हैं, कहाँ हैं। तो हमने प्रतिमाएँ बना ली हैं। बताने को कि यह रहा।

लेकिन ध्यान रखना, जो मूर्ति में उलझा, वह इस अदृश्य की खोज पर न निकल पायेगा। हाँ, अगर मूर्ति सिर्फ द्वार बनती हो अमूर्ति की, अगर वृक्ष केवल जड़ों की सूचना बनता हो और मनके अगर धागे की खबर लाते हों, तब तो ठीक है।

अन्यथा मनकों से जो उलझा वह धागे से वंचित रह जायेगा।

और मजे की बात यह है कि हर मनके में धागा मौजूद है। हर मूर्ति में अमूर्त मौजूद है। हर पत्थर में अमूर्त मौजूद है। वह जो दिखाई पड़ रहा है सब जगह, उसमें न दिखाई पड़ने वाला मौजूद है। लेकिन वह न दिखाई पड़ने वाला उसी को स्मरण में आयेगा जो दिखायी पड़ने वाले से थोड़ा भीतर प्रवेश करे। दिखाई पड़ने वाला मैं नहीं हूँ।

इन्द्रियों की पकड़ में मनके ही आते हैं

कृष्ण कहते हैं, जो दिखायी पड़ता है वह प्रकृति है। दिखाई पड़ता है, इससे क्या अर्थ है? दिखायी पड़ने से अर्थ है, इंद्रियों की पकड़ में आता है जो। चाहे आँख से दिखायी पड़े, चाहे कान से सुनायी पड़े, चाहे हाथ से स्पर्श हो जाय।

जो भी इन्द्रियों की पकड़ में आता है वह प्रकृति है। और जो इन्द्रियों के पार रह जाता है वह परमात्मा है।

मनके वही हैं जो इन्द्रियों की पकड़ में आ जाते हैं और धागा वही है जो इन्द्रियों की पकड़ के बाहर छूट जाता है।

क्या जीवन में हमने कोई ऐसी चीज जानी है जो इन्द्रियों की पकड़ के बाहर हो? कोई ऐसा स्वाद जाना है, जो जीभ से न लिया गया हो? अगर नहीं जाना तो परमात्मा की हमें कोई खबर नहीं है। कोई ऐसा दृश्य देखा है,

जो आँख से न देखा गया हो ? अगर नहीं देखा तो हमें उन जड़ों की कोई खबर नहीं है जिनकी कृष्ण बात करते हैं। क्या कोई ऐसी ध्वनि सुनी है जो कानों से न सुनी गयी हो ? ऐसी ध्वनि जिसे बहरे भी सुन सके ? अगर नहीं सुनी है ऐसी कोई ध्वनि तो हमें धागे की कोई भी खबर नहीं है, हम मनकों से ही खेल रहे हैं।

जो मनकों में उलझा है, वह प्रौढ़ नहीं हो पायेगा

और जब तक कोई आदमी मनकों से खेलता है तब तक बचकाना है, जुवेनाइल है। और जैसे ही उसे मनकों के भीतर छिपे हुए धागे के रहस्य का पता चल जाता है, उसी दिन प्रौढ़ होता है। सिर्फ धार्मिक व्यक्ति ही मेच्योर होता है, प्रौढ़ होता है। अधार्मिक व्यक्ति बचकाने ही रह जाते हैं।

इसलिए जिस समाज में जितना ज्यादा अधर्म होगा, उतना बचकानापन और चाइल्डनेस बढ़ जायेगी। आज अगर अमरीका में जुवेनाइल बच्चे पागल की तरह व्यवहार कर रहे हैं तो उसके लिए जिम्मेदार बच्चे नहीं हैं। अगर आज अमरीका के बच्चे हिप्पी और बीटल और सब तरह की नासमझियों को उपलब्ध हो रहे हैं तो उसके लिए बच्चे जिम्मेवार नहीं हैं। उसके लिए वे माँ बाप जिम्मेवार हैं जिन्होंने प्रौढ़ होने का रास्ता ही तोड़ दिया है। क्योंकि प्रौढ़ होने का एक ही रास्ता है, मेच्योरिटी का इस जगत् में, वह धर्म है। एक बार धर्म हट जाय तो बूढ़े भी बचकाने होंगे। और एक बार जीवन में धर्म प्रवेश कर जाय तो बच्चे में भी उतनी ही प्रज्ञा उत्पन्न होती है जितनी वृद्धतम व्यक्ति को हो सकती है।

हम प्रौढ़ ही नहीं हो पाते

लाओत्से के सम्बन्ध में कहा जाता है कि वह बूढ़ा ही पैदा हुआ। बड़ी अजीब सी बात है। कोई आदमी बूढ़ा कैसे पैदा होगा। लेकिन अजीब न लगेगी अगर दूसरे छोर से सोचें। कई लोग बच्चे ही मर जाते हैं। अगर कोई आदमी बच्चा ही मर जाता है तो किसी आदमी के बूढ़े पैदा होने में अड़चन क्या है ?

अनेक लोग जब अपनी कब्र में जाते हैं तब, अगर गौर से देखें तो उनके हाथ में घुनघुने होते हैं, और कुछ भी नहीं। जिन चीजों से हम भी खेल रहे हैं वह

घुनघुनों से ज्यादा नहीं है। बच्चों के घुनघुने जरा ज्यादा रंगीन होते हैं, हमारे जरा कम रंगीन, तो उससे हम प्रौढ़ नहीं हो जाते। और बच्चों के घुनघुने सुबह आते हैं और साँझ टूट जाते हैं। और हमारे घुनघुने जिन्दगी भर चलते हैं, ज्यादा मजबूत होते हैं। इससे कोई भेद नहीं पड़ता। लेकिन खेलते रहते हैं हम घुनघुनों से ही। अधिक लोग मरते वक्त वही होते हैं जहाँ पैदा होते वक्त खटोले में थे। कब्र और खटोले में कोई विकास नहीं होता।

लाओत्से की बात मजाक की तो है लेकिन अर्थपूर्ण है। वह यही कहने को यह कहानी गढ़ी गयी है कि अधिक लोग कब्र में जाते वक्त घुनघुने हाथ में रखते हैं और मुँह में उनके दूध की चूसनी होती है। इसलिए उल्टी बात लाओत्से के लिए कही गयी है कि जन्म से ही वह बूढ़ा पैदा हुआ। और जब लोग लाओत्से से पूछते हैं कि तुम्हारे जन्म से बूढ़े होने का क्या मतलब है ? तो लाओत्से कहता है कि जन्म से ही मुझे जो दिखाई पड़ता है उसमें कोई रस नहीं है, जो नहीं दिखायी पड़ता उसी में मेरा रस है।

धर्म अदृश्य की खोज है

तो कृष्ण कहते हैं, मैं छिपा हूँ। धर्म जो है, वह साइंस आफ द हिडन, छिपे हुए का विज्ञान है। विज्ञान जो है वह प्रगट जगत् की खोज है।

लेकिन जो भी प्रगट है वह ऊपर है, सतह पर है और जो अप्रगट है वह गहरा है। खजाने तो छिपाकर ही रखे जाते हैं। आप भी अपनी तिजोड़ी कहाँ रखते हैं ? द्वार पर नहीं रखते हैं। न ही सड़क पर रख देते हैं, न घर की दीवाल पर रखते हैं, न घर की फेंसिग के पास रखते हैं। तिजोड़ी आप वहीं रखते हैं जो घर का अन्तरतम स्थान है।

जीवन की भी सारी सम्पदा अन्तरतम स्थानों में छिपी होती है।

जितनी बड़ी चीज खोजनी हो उतने गहरे उतरना पड़ता है।

अगर परमात्मा को खोजना हो तो बहुत गहरे उतरना पड़ेगा। और गहरे उतरने का एक ही अर्थ है कि इंद्रियाँ जब तक हमें पकड़े हैं तब तक हम गहरे नहीं जा सकते। इंद्रियो की पकड़ की हालत वैसी ही है जैसे कोई आदमी नदी के किनारे को पकड़े हो और कहता हो, मुझे नदी की गहराई की खोज

करनी है। किनारे को जोर से पकड़े हो, और कहता हो, कहीं मैं डूब न जाऊँ, इसलिए किनारा नहीं छोड़ूँगा। यद्यपि मुझे उन हीरों की खोज करनी है जो मैंने सुने हैं कि नदी के अन्तर्गर्भ में हैं, नदी की गहराई में पड़े हैं। मुझे वह हीरे खोजने हैं लेकिन किनारा मैं न छोड़ूँगा क्योंकि किनारा छोड़ दूँ तो कहीं मैं डूब न जाऊँ। लेकिन किनारा छोड़ना ही पड़ेगा।

मैं बौरी खोजन गयी, रही किनारे बैठ

कबीर ने मजाक की है हम सबके बाबत। और कहा है, मैं बौरी खोजन गयी रही किनारे बैठ। गयी तो खोजने, गयी खोजने हीरों को, लेकिन पागल ऐसी कि किनारे पर बैठ गयी। कोई पूछ सकता है, कि कबीर ने स्त्रीलिंग का प्रयोग क्यों किया है? मैं बौरी खोजन गयी, रही किनारे बैठ। क्यों न कहा कि मैं बौरा खोजन गया रहा किनारे बैठ। कोई अड़चन न थी। मैं पागल खोजने गया और किनारे बैठ गया। कहते हैं, मैं पागल खोजने गयी और किनारे बैठ रही।

कबीर जानते हैं कि परमात्मा के सिवाय पुरुष कोई भी नहीं है। क्योंकि उसका ठीक ठीक अर्थ यही है गहरे में, कि जो मालिक है। तो मालिक तो कभी खोजने नहीं जाता, भिखारी खोजने जाते हैं। अगर मालिक ही होते तो खोजने क्यों जाते। मालिक नहीं हैं इसलिए खोजने गये। इसलिए कबीर स्त्रीलिंग शब्द का प्रयोग करते हैं। कहते हैं, मैं बौरी खोजन गयी। मालिक तो एक ही है, वह परमात्मा। पर पागल की तरह किनारे पर बैठे हैं।

किनारे पर जो बैठे हैं, वे पागल ही हैं।

क्योंकि किनारे पर बैठे आदमी को हाथ में क्या लग सकता है ज्यादा से ज्यादा। हाँ, कभी कभी नदी की छाती पर सफेद झाग हीरों का धोखा देती है। समुद्र के तट पर टकराकर पत्थरों से पानी झाग बना लेता है। सूरज की किरणें कभी झाग से गुजरती हैं तो रंग बिरंगा हो जाता है। दूर से कभी बहुत प्यारा भी लगता है। पास जाकर हाथ मुट्ठी में लो तो सिवाय पानी के कुछ भी हाथ नहीं आता। नदी के तट पर तो झाग ही हाथ लग सकती है, फोम। हाँ, हीरों का धोखा हो सकता है। नदी में गहरे उतरें तो ही हीरे हाथ लग सकते हैं।

जगत् मैं ही बनाता हूँ, मैं ही मिटाता हूँ

कृष्ण कहते हैं, इंद्रियों के पार जो है वह मैं हूँ और इंद्रियों से जो पकड़ में आता है वह जगत् है। जो मैंने तुझसे कहा आठ प्रकार का। एक और बात कृष्ण अर्जुन से कह रहे हैं। यह बात बहुत सोचने जैसी है। इसलिए भी सोचने जैसी है कि भारतीय प्रज्ञा ने ही इस बात की जगत् में घोषणा की है। कहते हैं, मैंने ही बनायी है यह प्रकृति। मैंने ही रचा है यह सब। यह मुझसे ही सृष्ट हुआ और मुझमें ही प्रलय को उपलब्ध हो जायेगा।

परमात्मा की सृष्टा की तरह धारणा तो जगत् में सब जगह पैदा हुई है, द क्रिएटर। बट द डिस्ट्रायर, विनाश करने वाले की तरह की धारणा भारत की अपनी अनूठी खोज है। सारी दुनिया में परमात्मा को कहा जाता है स्रष्टा, बनाने वाला, लेकिन इतने हिम्मतवर धार्मिक लोग पृथ्वी पर कहीं न हुए कि बनाने वाले के भीतर जो छिपा हुआ, जो तर्क है, उसकी आत्यंतिक बात को भी स्वीकार कर लेते हैं, क्योंकि जो बनायेगा वही मिटायेगा। जो स्रष्टा होगा, वही विनाश भी कर सकेगा। और जिससे जगत् पैदा होगा उसी में लीन भी होगा। और जो जन्मदाता है, वही मृत्युदाता भी होगा।

दूसरी बात अप्रीतिकर है, इसलिए दुनिया में कहीं भी ख्याल में नहीं आयी। पहली बात बड़ी प्रीतिकर है कि, हे, तू पिता है, तू गोद है। लेकिन तू कब्र भी है, इसे कहने की हिम्मत। तूने जन्म दिया, तूने बनाया, तू दयालु है। लेकिन तू मिटायेगा भी, तू तोड़कर खण्ड खण्ड करके विनष्ट भी कर देगा। और फिर भी कहने की हिम्मत की कि तू दयालु है, बड़ी मुश्किल है। बनाने वाला दयालु है, लेकिन मिटाने वाला?

मिटाने वाले से हमें डर लगता है। जन्म दिया तूने बड़ी कृपा की लेकिन मृत्यु, तो सारी दुनिया में मृत्यु के लिए लोगों ने दूसरा तत्त्व खोजा। डेविल, शैतान, इबलीस—अलग-अलग नाम दिये। परमात्मा से विपरीत एक और शक्ति की कल्पना की, जो मिटायेगी। यह सिर्फ इस देश में एक ठीक, संगत विचार की व्यवस्था हुई और वह यह कि जो बनायेगा वही मिटायेगा। लेकिन हमारी धारणा यह है कि बनाना भी उसकी कृपा है और मिटाना भी उसकी कृपा है। और जो बनाने में ही कृपा देखता है वह धार्मिक नहीं है। जो मिटाने में भी कृपा देख पाता है वही धार्मिक है।

इसलिए कृष्ण कहते हैं, सृजन भी मेरा, विनाश भी मेरा, निर्मित भी हुआ सब मुझसे और प्रलय को भी उपलब्ध होगा मुझमें। सब मुझमें ही आता है और मुझमें ही खो जाता है। इसमें बड़ा वैज्ञानिक दृष्टिकोण है।

सारा जीवन वर्तुलाकार है

जीवन की सारी गति वर्तुलाकार है। और चीजें जहाँ से शुरू होती हैं वहीं समाप्त होती हैं। जैसे कि हम एक वर्तुल बनायें, एक सर्कल बनायें तो जहाँ से हम बनाना शुरू करें वहीं से दूसरी रेखा से जोड़ें तब वर्तुल पूरा बने।

सारा जीवन वर्तुलाकार है।

बचपन में जहाँ से हम यात्रा करते हैं, जवानी के बाद उसी दुनिया में सीढ़ियाँ उतरते हैं। और जन्म जिस बिन्दु पर घटित होता है उसी बिन्दु पर मृत्यु भी घटित होती है। वर्तुल पूरा हो गया। और मृत्यु जन्म से विपरीत नहीं है बल्कि जन्म के साथ जुड़ा हुआ दूसरा कदम है। और विनाश, सिर्फ विश्राम है। इसे समझ लेना जरूरी है।

इस मुल्क में ही विनाश को विश्राम समझने की सामर्थ्य पैदा हुई। विनाश विश्राम है। सृष्टि तो श्रम है, और प्रलय? प्रलय विश्राम है। इसलिए सृष्टि को हमने कहा ब्रह्मा का दिन और प्रलय को हमने कहा, ब्रह्मा की रात्रि। श्रम हो गया, सुबह हम उठे, दौड़े, जिये, हारे, जीते, अज्ञानी ज्ञानी बने, समझ नासमझ झेली। और फिर साँझ आयी और अँधेरा उतरा और सो गये और फिर वापस वहीं खो गये जहाँ से सुबह उठे थे। दिन है श्रम, रात्रि है विश्राम।

जीवन है श्रम, मृत्यु है विश्राम

जीवन है श्रम, मृत्यु है विश्राम। सृजन श्रम, विनाश है विश्राम।

विनाश को हमने कभी शत्रु की तरह नहीं देखा, मृत्यु को कभी हमने शत्रु की तरह नहीं देखा।

और ध्यान रहे, जिसने भी मृत्यु को शत्रु की तरह देखा उसका जीवन नष्ट हो जायेगा। यह बड़ी उल्टी दिखाई पड़ेगी बात। पर ऐसा ही है। जिसने

भी मृत्यु को शत्रु की तरह देखा वह जी न पायेगा, वह जिंदगी भर मृत्यु से डरेगा और बचेगा। जीना असंभव है।

लेकिन जिसने मृत्यु को भी मित्र माना, वही जी पायेगा। क्योंकि जिसे मृत्यु भी दुख नहीं दे पाती उसे जीवन कैसे दुख देगा। और जिसे मृत्यु भी मित्र है उसे जीवन तो महामित्र हो जायेगा और उसे जीवन से विपरीत नहीं दिखाई पड़ती मृत्यु, बल्कि जीवन की ही पूर्णता दिखायी पड़ती है। जैसे कि वृक्षों पर फल पक जाते हैं ऐसे ही जीवन पर मृत्यु पकती है। जिसे मृत्यु जीवन की ही परिपूर्णता दिखायी पड़ती है और प्रलय भी सृजन का अंतिम चरण मालूम होता है उसका जीवन आल्हाद से भर जाये तो कोई आश्चर्य नहीं। और आह्लाद से न भरे जीवन तो धर्म का हमें कोई भी पता नहीं।

अमृत भी मैं हूँ, जहर भी मैं हूँ

इसलिए कृष्ण जब कहते हैं, मैं ही हूँ सृजन और मैं ही हूँ विनाश। इस तरह की हिम्मत की घोषणा कहीं भी नहीं की गयी है। अगर कहीं घोषणाएँ भी की गयी हैं तो कहा गया है कि मैं हूँ स्रष्टा और वह जो शैतान है वह है दुष्ट। वह कर रहा है विनाश। उससे सावधान रहना।

लेकिन अमृत भी मैं और जहर भी मैं, इन दोनों की एक साथ स्वीकृति बड़ी अद्‌भुत है।

और सचाई है उसमें। क्योंकि जीवन के समस्त द्वन्द्व संयुक्त होते हैं, अलग अलग नहीं होते। अँधेरा और प्रकाश संयुक्त हैं। और अगर कोई परमात्मा कहता हो, प्रकाश हूँ मैं और अँधेरा कोई और तो वह परमात्मा भी बेईमान है। अँधेरा कौन होगा और? और अगर परमात्मा प्रकाश और अँधेरा कोई और तो उस जगत् में शक्ति का विभाजन हो जायेगा। रात किसी और की और दिन किसी और का।

सुना है मैंने कि एक आदमी मर रहा है, एक ईसाई मर रहा है। पादरी उसे आखिरी पश्चात्ताप और प्रार्थना करवाने आया है। पादरी उससे कहता है, बोल कि शैतान, अब मुझे तुझसे कोई वास्ता नहीं। अब मैं परमात्मा की शरण जाता हूँ। हे दुष्ट शैतान, अब तुझसे मेरा कोई सम्बन्ध नहीं। अब मैं प्रभु की शरण जाता हूँ। लेकिन वह आदमी सुनता है और आँख बन्द कर

लेता है और कुछ बोलता नहीं। पादरी और जोर से कहता है कि शायद मृत्यु ज्यादा निकट है और उसे सुनायी नहीं पड़ रहा। वह फिर भी सुन लेता है, फिर आँख बन्द कर लेता है। पादरी और जोर से कहता है सिर हिला कर। वह कहता है हिलाओ मत, मैं अच्छी तरह सुन रहा हूँ। वह पादरी पूछता है, तू बोलता क्यों नहीं।

वह कहने लगा, मरते वक्त किसी को भी नाराज करना ठीक नहीं। पता नहीं किसकी शरण जाऊँ। आखिरी वक्त में किसी की झंझट में मैं नहीं पड़ना चाहता। पता नहीं, सच में किसकी शरण जाऊँ इसलिए मुझे चुपचाप जाने दो। जिसकी शरण पहुँच जाऊँगा उससे ही कह दूँगा। अगर शैतान के पहुँच गया तो कह दूँगा कि हे ईश्वर तुझसे मेरा कोई वास्ता नहीं क्योंकि जिसके साथ रहना है उसी के साथ दोस्ती बतानी उचित है। और अभी मुझे कुछ पता नहीं।

दो के प्रति निष्ठा खतरनाक है

डिवाइडेड, अगर हम जगत् को दो सत्ताओं में तोड़ दें तो हमारी निष्ठा भी विभाजित होती है। और विभाजित निष्ठा कभी भी निष्ठा नहीं है। अविभाजित निष्ठा ही निष्ठा है, अनडिवाइडेड। अगर पश्चिम में धर्म इस बुरी तरह नष्ट हुआ तो उसके नष्ट होने का अकेला कारण नास्तिक नहीं है, उसका बहुत गहरा कारण पश्चिम में धर्म का विभाजित निष्ठा का नियम है।

दो के प्रति निष्ठा खतरनाक है, वह दो नावों पर यात्रा है। जीवन की कोई यात्रा दो नावों पर नहीं हो सकती। और जीवन के सभी द्वन्द्व संयुक्त हैं। यहाँ जीवन और मृत्यु एक ही सिक्के के दो पहलू हैं। और अँधेरा और प्रकाश भी एक ही सिक्के के दो पहलू हैं। यहाँ, जिसे हम विरोध कहते हैं, वह विरोध भी विरोध नहीं है, केवल दूसरा अंग है। इसलिए कृष्ण बड़ी सरलता से कह पाते हैं कि मैं हूँ सृजन, मैं ही हूँ प्रलय। सब मुझसे ही पैदा होता और मुझ ही में लीन हो जाता है। यहाँ हमने परमात्मा को अविभाजित, अनडिवाइडेड जाना है। और ध्यान रहे, अगर हम परमात्मा को अविभाजित न जाने तो हमारे भीतर अविभाजित श्रद्धा होने की कोई संभावना नहीं है। और हमने एक बार जगत् को दो हिस्सों में तोड़ा कि हमारे भीतर का हृदय भी दो हिस्सों में टूट जायेगा

इसलिए पश्चिम में जो आज मनोवैज्ञानिकों के सामने सबसे बड़ी बीमारी है वह है स्प्लिट पर्सनालिटी, व्यक्तित्व का टूटा हुआ होना। विखंडित होना। लेकिन पश्चिम के मनोवैज्ञानिक को भी कोई ख्याल नहीं है कि मनुष्य का मन दो में क्यों टूट गया। और यह पश्चिम में ही विखण्डित, स्प्लिट पर्सनालिटी क्यों पैदा हुई? उसका कारण उनके ख्याल में नहीं है। उसका कारण है कि निष्ठा जब दो में टूट जाय और निष्ठा जब विभाजित हो तो भीतर हृदय भी दो में टूट जाता है और विभाजित हो जाता है।

जब निष्ठा एक में हो और अविभाज्य हो तो निष्ठावान हृदय भी अविभाजित हो जाता है और एक हो जाता है। एक परमात्मा, तो भीतर एक आत्मा का जन्म होता है। और अगर दो शक्तियाँ हमने स्वीकार कीं तो भीतर भी चित्त डांवाडोल और दो में टूट जाता है। और आज तो हालत ऐसी है कि स्वीकृत हो गया है पश्चिम में कि हर आदमी खण्ड खण्ड होगा।

एक आदमी तो एक मनोवैज्ञानिक के पास गया और उसने कहा कि कोई तरकीब करो कि मेरी पर्सनलिटी को स्प्लिट कर दो, मेरे व्यक्तित्व को हिस्सों में तोड़ दो। वह मनोवैज्ञानिक तो हैरान हुआ, उसने कहा, तुम पागल तो नहीं हो? क्योंकि हमारे पास तो जो लोग आते हैं वह इसलिए आते हैं कि हम उनके व्यक्तित्व को इकट्ठा कैसे कर दें। तुम्हारा दिमाग ठीक तो है न! तुम यह क्या कह रहे हो कि तुम्हारे व्यक्तित्व को दो हिस्सों में तोड़ दें! तुम्हारा प्रयोजन क्या है?

उस आदमी ने कहा, मैं बहुत अकेलापन अनुभव करता हूँ। दो हो जाऊँगा तो कम से कम कोई साथ तो होगा! आई फिल टू मच लोनली, बहुत अकेला लगता हूँ। तो मुझे दो हिस्सों में तोड़ दो। तो कम से कम मेरा एक हिस्सा तो मेरे साथ हो सकेगा।

पश्चिम में दोनों घटनाएँ घटी हैं। आदमी बिल्कुल अकेला है और टूट गया है। और इस टूटने की जड़ उस विचार में है जिसमें हमने जगत् को ही दो हिस्सों में तोड़ दिया।

वही कृष्ण को समझ पायेगा जिसे समस्त स्वीकृत हो

कृष्ण कहते हैं, दोनों ही मैं हूँ। बुरा भी मैं हूँ, भला भी मैं हूँ। अपने को भला कहने की बात तो बड़ी आसान है। अपने को महात्मा कहने की बात तो

बड़ी आसान है। लेकिन अपने को दुरात्मा कहने की हिम्मत बड़ी कठिन है।

कृष्ण कहते हैं, दोनों ही मैं हूँ। वह जो तुम्हें अच्छा लगता है वह भी मैं हूँ, वह जो तुम्हें बुरा लगता है वह भी मैं हूँ, दोनों ही मैं हूँ। जिसको यह समस्त स्वीकृति, यह टोटल एक्सेप्टबिलिटी समझ में आ जाय, वही कृष्ण के तत्त्व दर्शन को ठीक से समझ पायेगा।

इसलिए कृष्ण के साथ बहुत अन्याय भी हुआ है। क्योंकि कृष्ण का व्यक्तित्व समाहित, समग्र को इकट्ठा लिये हुए है। तो किसी को शक होता है कि कृष्ण दोनों काम कैसे कर पाते हैं। इनकंसिस्टेंट मालूम पड़ते हैं, असंगत मालूम पड़ते हैं, एक तरफ परमात्मा की बात करते हैं, दूसरी तरफ युद्ध में उतारते हैं। परमात्मावादी को तो पैसीफिस्ट होना चाहिए, उसको तो शान्तिवादी होना चाहिए। अशांति तो दुष्टों का काम है, युद्ध तो दुष्टों का काम है।

तो कृष्ण कैसे आदमी हैं, एक तरफ परमात्मा की बात और दूसरी तरफ अर्जुन को युद्ध में जाने की प्रेरणा। यह दुनिया के जितने शान्तिवादी हैं उनको बड़ी बेचैनी होगी। वह तो कहेंगे, कृष्ण जो हैं, ठीक आदमी नहीं हैं। कृष्ण को तो मौका चूकना नहीं था। अर्जुन भाग रहा था, शान्तिवादी बन रहा था। फौरन रास्ता बनाना था कि भाग जाये। आगे आगे दौड़ना था, लोगों से कहना था, हटो। अर्जुन को निकल जाने दो, यह शान्तिवादी हो गया।

परमात्मा में चुनाव नहीं किया जा सकता

कृष्ण बेबूझ हैं।

क्योंकि कृष्ण कहते हैं, दोनों ही मैं हूँ, युद्ध भी मैं और शांति भी मैं। दोनों ही मैं हूँ। अँधेरा भी मैं और प्रकाश भी मैं। और जब दोनों की तरह तू मुझे देख पायेगा तभी तू मुझे देख पायेगा। अगर तू बाँट कर देखेगा, आधे को देखेगा, चुन के देखेगा तो तू मुझे कभी नहीं देख पायेगा।

परमात्मा में चुनाव नहीं किया जा सकता, यू कैनाट चूज।

और अगर आपने चुनाव किया तो वह परमात्मा आपके घर का होममेड परमात्मा होगा, घर का बनाया हुआ। वह परमात्मा असली नहीं होगा।

परमात्मा तो जैसा है उसके लिए वैसे ही होने के लिए राजी होना पड़ेगा। अगर वह प्रलय है तो सही, अगर वह मृत्यु है तो सही, राजी हैं। अगर आपने कहा कि नहीं, हम तो जरा परमात्मा के चेहरे पर रंग रौगन करेंगे। हम तो जरा शकल को सुन्दर बनायेंगे। मेकप में हर्ज भी क्या है? हम थोड़ा इसकी शकल को ठीक कर लें। अगर आपने ऐसा किया तो जो आपके हाथ में लगेगा वह आपके हाथ का बनाया हुआ परमात्मा होगा। उससे परमात्मा का कोई भी सम्बन्ध नहीं है।

धार्मिक आदमी दुस्साहसी है। दुस्साहस उसका यह है कि जैसा है, ऐज इट इज, वह उसे स्वीकार करता है। वह कहता है, यह भी तेरा और यह भी तेरा। जन्म भी तेरा और मृत्यु भी तेरी। दोनों के लिए मैं राजी हूँ। इसलिए कृष्ण, अर्जुन को कहते हैं—प्रलय भी मैं, सृजन भी मैं। दोनों ही मैं हूँ।

समस्त विरोधों को आत्मसात् करना हो वेदान्त का सार है

विरोधों को आत्मसात् करने की यह घोषणा वेदान्त का सार है।

अविरोध पैदा होता है फिर। और जब जीवन की दृष्टि अविरोध की होती है तो आपके भीतर अविरोधी हृदय का जन्म होता है। जो आपके परमात्मा का रूप होगा वही आपके हृदय का रूप बन जायेगा। आपका हृदय ढलता है उसी रूप में जिस रूप में आप परमात्मा को स्वीकार करते हैं। तोड़कर नहीं, जोड़ कर, इकट्ठा, सबको लिये हुए।

और जब सुबह आपके पैर में काँटा गड़े तो यह मत सोचना कि शैतान ने गड़ाया, तब उसको भी सोचना कि परमात्मा ने गड़ाया और परमात्मा ने आपको इस योग्य समझा कि काँटा गड़ाया। उसके लिए भी धन्यवाद देना। और जिस दिन फूल के लिए ही नहीं, काँटे के लिए भी परमात्मा को कोई धन्यवाद दे पाता है, उस दिन उसे मंदिरों में जाने की जरूरत नहीं रह जाती। वह जहाँ है वहीं मंदिर आ जाता है।

भगवान् श्री, यदि सत्य 'अद्वैत' है तो अपरा और परा को भिन्न कहने का क्या अर्थ है? क्या अपरा और परा आपस में परिवर्तनशील हैं?

सत्य एक है, लेकिन जिन्हें पूरा सत्य दिखायी पड़ता है उन्हें। जिन्हें नहीं दिखायी पड़ता उसके लिए एक नहीं। उन्हें जो दिखायी पड़ता है, अन्धों को

जो दिखायी पड़ता है उसका नाम है अपरा। हम जो नहीं जानते, हमें जो दिखायी पड़ता है आधा आधा। वृक्ष और जड़ें तो एक हैं। आप कहीं वह रेखा न खींच पायेंगे जहाँ आप कहें यहाँ से जड़ शुरू होती है और यहाँ से वृक्ष शुरू होता है। कोई डिस्कंट्यूनिटी नहीं है, दोनों के बीच सातत्य कहीं भी नहीं टूटता। कहाँ जड़ें समाप्त होती हैं और कहाँ वृक्ष शुरू होता है।

वृक्ष और जड़ अलग-अलग नहीं है

अगर किसी को भी आप जोर से पकड़ लें तो आप मुश्किल में पड जायेंगे। ऐसे आप जानते हैं कि जड़ें अलग और वृक्ष अलग, वृक्ष ऊपर और जड़ें भीतर लेकिन अगर कोई जिद्द करे और कहे कि ठीक-ठीक बताइए, कहाँ से होती जड़ शुरू और कहाँ से होता है वृक्ष शुरू, तो आप बहुत मुश्किल में पड़ जायेंगे। ऐसी कोई जगह आप न खोज पायेंगे, जहाँ वृक्ष और जड़ एक हैं।

लेकिन जिस आदमी ने सिर्फ वृक्ष देखा और जड़ें नहीं देखीं, उससे कहना पड़ेगा, यह जो तुझे दिखायी पड़ रहा है, यह ऊपर ऊपर है। एक और भी है जो नीचे है, जो सबको सम्हाले हुए है, वह जड़ है। न दिखायी पड़ने वाले आदमी से कहना पड़ता है कि जो तुझे दिखायी पड़ रहा है वह अपरा है, वह नीचे का जगत् है, स्थूल का जगत् है, इन्द्रियों का जगत् है। और एक जगत् है परा का, जो तुझे दिखायी नहीं पड़ रहा है। हम तुझे उस तरफ ले चलते हैं। लेकिन जिस दिन दिखाई पड़ेगा उस दिन दोनों जगत् एक हो जायेंगे। उस दिन दोनों के बीच एक सातत्य हो जायेगा। फिर जो फर्क है वह ऐसा ही है जैसे वृक्ष के ऊपर होने का और जड़ों के नीचे होने का है। फिर भी फर्क तो है। फर्क तो है, अगर जड़ें उखाड़कर फेंक दें तो कुछ न बचेगा। वृक्ष उखाड़कर फेंक दें तो जड़ें बचेंगी और जड़ों से फिर वृक्ष पैदा हो जायेगा।

फर्क नहीं है सातत्य में, लेकिन फर्क मूल शक्ति में है। जड़ें ज्यादा शक्ति-शाली हैं। उनके पास जीवन की केन्द्रीय ऊर्जा है। वृक्ष केवल फैलाव है। अगर ठीक से समझें तो जड़ें असेंसियल हैं और वृक्ष नानएसेंसियल हैं। क्योंकि जड़ों का होना वृक्ष के बिना भी हो सकता है, लेकिन वृक्ष का होना जड़ों के बिना नहीं हो सकता। फिर भी दोनों एक हैं। यह जो आखिरी पत्ता है वृक्ष का वह भी जड़ का फैला हुआ हाथ है। वह भी जड़ ही है, फैल गयी आकाश

तक। न जानते हैं जो, अज्ञान में हैं जो, जिन्हें परमात्मा की समग्रता का कोई भी पता नहीं, कृष्ण उनके लिए विभाजन कर रहे हैं।

सब विभाजन बच्चों के लिए किये जाते हैं।

सत्य अविभाज्य है

सत्य तो अविभाज्य है लेकिन अविभाज्य सत्य की कोई शिक्षा नहीं दी जा सकती। शिक्षा देने के लिए विभाजन करना पड़ता है। एक कहीं से तो शुरू करना पड़ेगा, वन हैज टु बिगिन समव्हेअर। और जहाँ से भी शुरू करेगा वहीं से विभाजन करना पड़ेगा। कहाँ से शुरू करें?

तो ऊपर से शुरू करना उचित है, क्योंकि अर्जुन को पता है ऊपर का। वह समझेगा कि पृथ्वी क्या है, वह समझेगा कि जल क्या है, वह समझेगा कि अग्नि क्या है? फिर धीरे धीरे उसकी समझ बढ़ेगी। जैसे जैसे समझ बढ़ेगी, भीतर की बात कृष्ण उससे कहेंगे। कहेंगे, बुद्धि क्या है, विचार क्या है, मन क्या है? कहेंगे अहंकार क्या है? और जब उसे अहंकार की सूझ ख्याल में आ जायेगी, तब कहेंगे इसके पार, बियोन्ड दिस, परा का लोक है। इसके पार 'मैं' हूँ, इसके पार भागवत चैतन्य है। लेकिन उस 'मैं' तक लाने के लिए यह मिट्टी पदार्थ से लेकर, पृथ्वी से लेकर आठ तत्त्वों की यात्रा कृष्ण को करवानी पड़ेगी।

और भलीभाँति जानते हैं कि सब जुड़ा हुआ है, सब इकट्ठा है। सब इकट्ठा है, कहीं कुछ टूट नहीं गया है। सब संयुक्त है। निम्नतम, बाह्यतम वस्तु भी अन्तरतम से जुड़ी है। निम्नतम श्रेष्ठतम का ही नीचे का फैलाव है। सब संयुक्त है, अस्तित्व संयुक्त है, लेकिन जिन्हें कुछ भी पता नहीं है उनसे करनी है बात। और जिन्हें पता है उनसे बात करने का कोई अर्थ नहीं है।

लेकिन अज्ञानी की भाषा में बोलना पड़ता है

तो एक बात ध्यान में रख लेंगे और वह यह है कि दो ज्ञानी अगर मिलें तो बातचीत का कोई उपाय नहीं। दो अज्ञानी मिलें तो बातचीत बहुत होगी, हो बिल्कुल न पायेगी। दो ज्ञानी मिलें बातचीत बिल्कुल न होगी, फिर भी हो जायेगी। दो अज्ञानी मिलें, बातचीत बहुत चलेगी, भारी चलेगी, हो न पायेगी बिल्कुल। फिर बातचीत कहाँ हो पाती है?

एक ज्ञानी और एक अज्ञानी के बीच बात-चीत हो पाती है। लेकिन समझौते करने पड़ते हैं, कम्प्रोमाइज करनी पड़ती है। ज्ञानी को ही करनी पड़ती है क्योंकि अज्ञानी तो क्या करेगा, अज्ञानी कैसे करेगा? ज्ञानी को ही करनी पड़ती है। उसे ही अज्ञानी की भाषा में बोलना शुरू करना पड़ता है। इस आशा में कि धीरे-धीरे, क्रमशः, एक एक कदम वह राजी कर लेगा, और उस जगत् तक ले जायेगा, जहाँ शब्द के बिना कहने की सम्भावना है। उस परा तक इशारा कर पायेगा।

इसलिए सारी चर्चा, जब भी होती है—चाहे कृष्ण और अर्जुन के बीच, चाहे बुद्ध और आनन्द के बीच, चाहे महावीर और गौतम के बीच और चाहे जीसस और ल्यूक के बीच—सारी चर्चा एक ज्ञानी और एक अज्ञानी के बीच है।

और ध्यान रहे, अज्ञानी बिल्कुल समझौता नहीं करता, कोई उपाय भी नहीं, वह समझौता करेगा भी किस बात के लिए! अज्ञानी तो डटकर अपने अज्ञान में खड़ा रहता है। वह तो कहता है, यही ठीक है। समझौता करना पड़ता है ज्ञानी को। वह नीचे उतरता है, अज्ञानी की जगह आता है। उसका हाथ पकड़ता है, यात्रा पर निकलता है। हाथ पकड़ता है तो अज्ञानी की भाषा का उसे उपयोग करना पड़ता है।

सब विभाजन अज्ञानी की भाषा है।

ज्ञानी की भाषा में तो कोई विभाजन नहीं है, अद्वैत है, एक है। लेकिन उस एक को कहने का कोई उपाय नहीं, मौन रह जाना ही सिर्फ काफी है। अगर कृष्ण ज्ञानी की भाषा का उपयोग करते तो चुप रह जाते। फिर गीता पैदा नहीं होती। तो अर्जुन की बुद्धि से चल रहे हैं। इसलिए बहुत स्थूल से शुरू किया, पृथ्वी, स्थूलतम, फिर सूक्ष्म के पास आये, अहंकार।

और अर्जुन का अहंकार भारी रहा होगा। क्षत्रिय था, क्षत्रिय तो जीता ही अहंकार पर है। उसकी तो सारी चमक और रौनक ही अहंकार की है। उसकी तो सारी धार अहंकार की है। अगर एकदम से कह देते कि अहंकार, तो शायद वह नाराज ही होता, समझ न पाता। एकदम से कह देते, यह अहंकार सब प्रकृति है, कुछ भी नहीं है, सब बेकार है, तो अर्जुन और कृष्ण के बीच संवाद की संभावना ही टूटती और कुछ न होता क्रमशः। और अहंकार तलाश में रहता है इस बात की कि मुझे चोट न पहुँचा दो। खोज

में रहता है, तो बहुत सेंसीटिव है, छुई-मुई। जरा सा इशारा लगा दो, जरा सा, जरा तिरछी आँख से देख दो तो वह दिक्कत में पड़ जाता है। और दिक्कत में इसलिए पड़ जाता है कि उसके पास वस्तुतः कोई आधार तो है नहीं, हवाई किला है, ताश का घर है, जरा सी फूँक और सब गिर जायेगा।

तब ही अर्जुन कृष्ण हो पायेगा

सुना है मैंने, एक फकीर ठहरा था एक महानगरी के बाहर। अमावस की रात, महानगरी में विद्युत् के दीये पूरे नगर में जल रहे थे जैसे दीवाली हो। फकीर लेटा था अँधेरे में एक वृक्ष के तले। एक जुगनू उड़ती हुई आकर फकीर के पास बैठ गयी। बैठकर उसने पंख बन्द कर लिये। उसकी चमकती हुई रोशनी बन्द हो गयी। तभी अचानक बिजली के कारखाने में कुछ गड़बड़ हुई होगी और सारे नगर की बिजली चली गयी। उस जुगनू ने फकीर से कहा, एक्सक्यूज मी फार मेंशनिंग, कहने के लिए क्षमा करें। बट डू यू सी इन व्हाट शेप दिस ग्रेट सिटी विल बी, इफ आई ऐम गौन समव्हेयर एल्स। अगर मैं कहीं और चली जाऊँ तो इस बड़े नगर का क्या होगा? देखते हैं, कहने के लिए क्षमा करें। क्योंकि जुगनू ने सोचा कि चूँकि मैंने पंख बन्द किये और मेरी चमक बन्द हुई इसलिए सारा नगर अन्धकार में डूब गया।

फकीर मन ही मन में हँसा, ऊपर नहीं, क्योंकि ऊपर हँसे तो जुगनू से फिर बातचीत नहीं हो सकती। उसने कहा कि तेरी सूचना के लिए धन्यवाद। मैं तो सदा से ही ऐसा जानता था। तेरी बड़ी कृपा है कि तू इस नगर को छोड़कर नहीं जाती। नगर की तो बात दूर, अगर तू इस विश्व को छोड़कर चली जाय तो आकाश में जो तारे टिमटिमा रहे हैं, ये भी एकदम बन्द हो जायँ। ये भी एकदम बन्द हो जायँ और बुझ जायँ। जुगनू पास सरक आयी और उसने कहा, आदमी तुम काम के मालूम पड़ते हो। कुछ और बातें करें।

कहते हैं सुबह तक जुगनू फकीर हो गयी, मगर फकीर को जुगनू होने से शुरू करना पड़ा। रात भर चली बात सुबह तक जुगनू फकीर हो गयी।

ऐसा ही होने वाला है इस कथा में भी। यह अर्जुन बेचारा बचेगा नहीं, यह कृष्ण हो जाने वाला है लेकिन अभी लंबी है दूरी, अभी वह सुबह है दूर। अभी तो जुगनू की भाषा में कृष्ण को बोलना है। उसके सिवाय कोई उपाय नहीं है।

रसोऽहमप्सु कौन्तेय प्रभास्मि शशिसूर्ययोः ।
प्रणवः सर्ववेदेषु शब्दः खे पौरुषं नृषु ॥८॥
पुण्यो गन्धः पृथिव्यां च तेजश्चास्मि विभावसौ ।
जीवनं सर्वभूतेषु तपश्चास्मि तपस्विषु ॥९॥

हे अर्जुन, जल में मैं रस हूँ, तथा चन्द्रमा और सूर्य में प्रकाश हूँ और संपूर्ण वेदों में ओंकार हूँ तथा आकाश में शब्द और पुरुषों में पुरुषत्व हूँ। तथा पृथ्वी में पवित्र गन्ध और अग्नि में तेज हूँ और संपूर्ण भूतों में उनका जीवन हूँ अर्थात् जिससे वे जीते हैं वह मैं हूँ और तपस्वियों में तप हूँ।

उस अदृश्य की ओर इशारा कृष्ण ने शुरू किया है। दृश्य को बताया, और कहा उस दृश्य में 'मैं' कौन हूँ। इशारा किया दृश्य की तरफ और फिर भी इशारा किया अदृश्य की तरफ। कहा, जल में 'मैं' रस हूँ, जल में रस ! रस को थोड़ा समझना पड़ेगा।

रस आंतरिक अनुभूति है

रस बहुत अद्भुत शब्द है। और बहुत सूक्ष्म और बहुत अदृश्य, दिखाई जो नहीं पड़ता। कोई पेय आप पीते हैं, अमृत भी पियें, तो जो दिखायी पड़ता है, जब आप पीते हैं, तो जो अनुभव में आता है क्या वह वही है जो दिखायी पड़ता है ? जब पीते हैं तो जो अनुभव में आता है, वह तो दिखाई बिल्कुल न पड़ता था। जो दिखायी पड़ता था वह तो कुछ और दिखायी पड़ता था और जो फिर अनुभव में आता है पीने पर, वह कुछ और ही है। वह जो अनुभव में आता है पीने पर, वह है रस। वह रस आंतरिक अनुभूति है।

ऐसा ही नहीं है, जब आपका प्रेमी आपके पास है, आप हाथ में हाथ लेकर बैठ गये हैं। हाथ तो प्रेमी का हाथ में है, लेकिन भीतर जो एक स्वाद उत्पन्न होता है प्रियजन के पास होने का, वह रस है। अगर हम वैज्ञानिक के पास दोनों के हाथ लेबोरेटरी में पहुँचा दें और कहें कि काट पीट कर पता लगाओ कि इनको कैसा रस उपलब्ध हुआ क्योंकि ये दोनों कह रहे थे कि जन्म जन्म तक हम ऐसे ही हाथ लिये बैठे रहें। कि चाँद तारे बुझ जायें और हमारे हाथ अलग न हों। यह कुछ ऐसी बातें सुनी है हमने। जरा कृपा करके इन दोनों के हाथ का पता तो लगाओ खोज बीन कर कि इसमें रस कहाँ है ? खून मिलेगा बहता हुआ, पानी मिलेगा बहता हुआ, हड्डी, माँस मज्जा सब मिल जायेगी, रस नहीं मिलेगा। रस अदृश्य है पर उन्हें जरूर मिल रहा था। उन्हें जरूर मिल रहा था, भ्रांत हो, सपना हो, पर उन्हें जरूर मिल रहा। प्रत्येक वस्तु के भीतर जो आंतरिक अनुभव में उतरता है, उसका नाम रस है।

सभी रस अदृश्य हैं

तो कृष्ण कहते हैं, समस्त जलीय द्रव्यों में, समस्त पेय पदार्थों में, वह जो तुम पीते हो वह मैं नहीं हूँ, वह जो तुम पीकर अनुभव करते हो, वह मैं हूँ। रस हूँ मैं। रस अदृश्य है।

सभी रस अदृश्य हैं।

फूल है खिला गुलाब का। गये आप उसके पास, कहें, बहुत सुन्दर है, लेकिन कोई पकड़ ले आपको। मिल जाय कोई तार्किक और पूछे, कहाँ है सौंदर्य, जरा मुझे भी दिखाओ, तो आप पड़ेंगे कठिनाई में। कितना ही बतायेंगे, नहीं बता पायेंगे। और जितना बतायेंगे उतना ही पायेंगे कि बताने में असमर्थ हैं। और आप हारेंगे आपकी हार निश्चित है। वह तार्किक जीतेगा, उसकी जीत निश्चित है। क्योंकि उसने दृश्य को पकड़ा और आपने अदृश्य की घोषणा की है, जिसको आप न बता पायेंगे। सौंदर्य बताया नहीं जा सकता। असल में फूल में नहीं है, सौंदर्य फूल के अनुभव में आपके भीतर जो बोध पैदा होता है, उस रस में है।

इसलिए फूल को तोड़कर अगर आप पता लगाने चलेंगे तो हाँ, केमिकल्स मिलेंगे, रस न मिलेगा, रासायनिक वस्तुएँ, मिल जायेंगी रस न मिलेगा। रंग

मिल जायेंगे, सब कुछ मिल जायेगा, फूल की पूरी अनालिसिस हो जायेगी, पूरा विश्लेषण और वैज्ञानिक एक एक शीशी में अलग निकाल कर रख देखा कि यह है लेबल लगाकर। लेकिन कोई ऐसी शीशी न होगी जिसको वह लेबल लगाये कि यह रहा सौंदर्य। सौंदर्य के लेबल वाली शीशी खाली रह जायेगी, वह कहेगा, कोई सौंदर्य नहीं है।

असल में फूल में कोई सौंदर्य नहीं था। सौंदर्य तो आपको जो रस उपलब्ध हुआ फूल को देखकर, उसमें आया। वह आपका आन्तरिक रस है, लेकिन मजे की बात है, फूल को भी तोड़कर देख लो तो भी रस न मिलेगा, आपको भी तोड़कर देख लें तो भी रस न मिलेगा। फिर रस कहाँ था, वह अदृश्य है। वह धागे की तरह भीतर मनकों में छिपा है। मनके पकड़ में आ जायेंगे पर धागे का आपको कोई पता न चलेगा।

जीवन के सारे गहरे अनुभव, रस के अनुभव हैं

इसलिए कृष्ण कहते हैं, पेय पदार्थों में 'मैं' रस हूँ, जल में 'मैं' रस हूँ। लेकिन उदाहरण लेते हैं जल का। वह अर्जुन को समझ में आयेगा और रस की तरफ इशारा हो सकेगा।

जीवन में जो भी हमारे गहरे अनुभव हैं, रस के अनुभव हैं।

चाहे हो सौंदर्य, चाहे हो प्रेम, चाहे हो संगीत, जो भी हमारे अनुभव हैं, वह रस के अनुभव हैं। अनुभव रस रूप है। या ऐसा कहें कि समस्त अनुभवों का जो निचोड़ है उसे हमने रस कहा है। रस की धारणा भारत में अनूठी है। रस की धारणा ही अनूठी है। दुनिया में कोई भी रस के करीब इतना नहीं पहुँचा। सौंदर्य की उन्होंने व्याख्याएँ कीं, लेकिन उनकी व्याख्याएँ बड़ी ऊपरी हैं। पश्चिम ने सौंदर्य का बड़ा शास्त्र ईस्थेटिक्स पैदा किया। लेकिन उनकी सौंदर्य की परिभाषा बड़ी ऊपरी है। सौंदर्य रस है, प्रेम रस है, आनन्द रस है और उपनिषद् ने तो घोषणा की कि ब्रह्म रस है।

ब्रह्म रस है।

वह कृष्ण वही घोषणा कर रहे हैं। जलों में मैं रस हूँ। फिर वे एक एक उदाहरण लेते चलते हैं। कहते हैं, पृथ्वी में मैं गंध हूँ, पवित्र गंध।

पवित्र सुगन्ध वही है, जो जीवन ऊर्जा को ऊपर उठाये

यह भी थोड़ा कठिन होगा, रस से कम कठिन नहीं होगा। क्योंकि पवित्र कृष्ण न लगाते तो आसानी पड़ जाती। लेकिन गन्ध में पवित्र लगाने का क्या प्रयोजन? सुगन्ध काफी न था कहना? कहते हैं, पृथ्वी में पवित्र सुगन्ध। सुगन्ध काफी मालूम पड़ता है लेकिन कृष्ण जैसे लोग तो बहुत टेलीग्रैफिक होते हैं। अगर एक भी शब्द जरूरी न होता तो उपयोग न करते। लेकिन इससे बड़ी उलझन खड़ी हो गयी है। कहा पवित्र सुगन्ध, तो इसका यह अर्थ हुआ कि अपवित्र सुगन्ध भी होती है। और कहा पवित्र सुगन्ध तो इसका अर्थ हुआ कि पवित्र दुर्गन्ध, अपवित्र दुर्गन्ध। इनकी संभावना है क्या? इनकी संभावना है। इसलिए जानकर लगाया पवित्र सुगन्ध। सभी सुगन्धें पवित्र नहीं होतीं।

उस सुगन्ध को पवित्र कहा है कृष्ण ने जिसकी भनक पड़ते ही जीवन की ऊर्जा ऊपर की तरफ प्रवाहित होती है।

ऐसी सुगन्धें भी हैं जिनकी भनक पड़ते ही जीवन की ऊर्जा नीचे की तरफ प्रवाहित होती है। जगत् के कोने कोने में अनुभवी वेश्याओं से पूछें आप। या पेरिस के बाजार में जहाँ दुनिया भर की अपवित्र सुगन्धें पैदा की जाती हैं, परफ्यूम। और सब तरह की जाँच परख की जाती है कि कौन सी परफ्यूम आदमी में सेक्सुअलिटी ज्यादा पैदा करेगी। सुगन्ध है वह। लेकिन आपके भीतर काम वासना को जगाने में कौन सी सुगन्ध काम करेगी, उसके एक्सपर्ट हैं, उसके विशेषज्ञ हैं। वह खबर लाते हैं कि कौन सी सुगन्ध वेश्या के द्वार पर हो तो ग्राहक के आने में सुविधा बनेगी। कौन सी सुगन्ध स्त्री के कपड़ों पर हो तो स्त्री गौण हो जायेगी और पुरुष का मन सुगन्ध की वजह से आन्दोलित होगा। अपवित्र सुगन्धें हैं। जो सुगन्ध जीवन ऊर्जा को नीचे की ओर ले जाती है, काम वासनाओं के मार्गों की ओर ले जाती है, वे अपवित्र हैं। फिर पवित्र सुगन्ध कौन सी है?

अभी तक किसी बाजार में तो कहीं पैदा होती दिखायी नहीं पड़ती। कभी-कभी पवित्र सुगन्ध की घटना घटती है, वह मैं आप से कहूँ, तब यह सूत्र आपकी समझ में आयेगा। अन्यथा यह समझ में नहीं आयेगा। और गीता पर हजारों टिकाएँ लोगों ने लिखी हैं। लेकिन पवित्र सुगन्ध के बाबत कुछ ध्यान नहीं दिया है। कभी आती है वह।

वह है पवित्र सुगन्ध, जो महावीर के शरीर से उठती थी

महावीर के सम्बन्ध में कहा जाता है, महावीर जहाँ खड़े हो जायँ वहाँ एक सुगन्ध व्याप्त हो जायेगी। चलेंगे तो, उठेंगे तो, चारों तरफ की हवाओं में एक सुगन्ध चलेगी। महावीर का शरीर भी पृथ्वी का ही बना हुआ है। जैसा हमारा बना हुआ है। महावीर के शरीर में जो सुगन्ध उठती है उस सुगन्ध का नाम है, पृथ्वी में 'मैं' सुगन्ध हूँ।

जरूरी नहीं है कि महावीर आपके पास से निकलें तो आपको सुगन्ध का पता चले। क्योंकि जो दुर्गन्ध के आदी हैं उनको सुगन्ध का पता चलना मुश्किल होता है। और जो अपवित्र सुगन्ध के आदी हैं, उनके पास से पवित्र सुगन्ध गुजर जायेगी, स्पर्श भी न होगा। क्योंकि खुले द्वार भी चाहिए। लेकिन जिनके द्वार खुले हैं और जिनका हृदय संवेदनशील है वह महावीर की सुगन्ध को पकड़ पायेंगे। तो महावीर जैसे शरीर से जब सुगन्ध उठती है, उस सुगन्ध का नाम है, पृथ्वी में पवित्र सुगन्ध। 'मैं' पृथ्वी में पवित्र सुगन्ध हूँ अर्जुन।

ध्यान की गहराइयों में शरीर से एक विशेष सुगंध निकलती है

कभी आपने ख्याल किया, कि पृथ्वी में दुर्गन्ध, सुगन्ध, सबकी अनन्त सम्भावना है। एक ही बगीचा है, आपके घर में छोटा सा। एक छोटा सा किचन गार्डन है उसमें आप नीम का झाड़ लगा देते हैं। और हवाओं में चारों तरफ कड़वाहट फैलनी शुरू हो जाती है। वह नीम उस जमीन से ही रस लेती है। उसी के बगल में आप गुलाब का एक पौधा लगा देते हैं। वह गुलाब का पौधा भी उसी जमीन से रस लेता है। लेकिन गुलाब के फूल में सुगन्ध कोई और, और नीम के पत्तों में कुछ और, नीम की बौरियों में सुगन्ध कुछ और। बात क्या है?

जमीन एक, सूरज एक, हवाएँ एक, मालिक बगीचे का एक, माली एक, पानी एक, पृथ्वी एक। गुलाब का बीज कुछ और चुनाव करता है, नीम का बीज कुछ और चुनाव करता है। नीम का बीज उसी पृथ्वी में से कड़वाहट को इकट्ठा कर लेता है। गुलाब का बीज उसी पृथ्वी में कुछ और इकट्ठा करता है। शरीर हमारा भी वही, महावीर का भी वही, कृष्ण का भी वही,

क्राइस्ट का भी वही, लेकिन जरूरी नहीं है कि हम सबके शरीर से जो गन्ध निकले वह एक हो।

इस सम्बन्ध में और भी कुछ बातें आपसे कहूँ। जिन लोगों ने कामवासना के सम्बन्ध में गहरी खोजबीन की है, वे कहते हैं कि जब संभोग के क्षण में स्त्री पुरुष अति आकुल होते हैं, तो दोनों के शरीर से विशेष दुर्गन्ध निकलनी शुरू हो जाती है। आपके अनुभव में भी आती है। तीव्र कामवासना के क्षण में शरीर से दुर्गन्ध निकलनी शुरू हो जाती है। क्या हुआ?

शरीर वही है। लेकिन कामवासना में आप और नीचे उतरे, नीम की तरफ गये। आपके शरीर का चुनाव बदल गया। उसकी अलग ग्रंथियाँ काम करने लगीं और आपके शरीर से दुर्गन्ध फैलने लगी। अगर कामवासना में शरीर से दुर्गन्ध निकल सकती है, इसके लिए फिज्योलाजिस्ट राजी हैं। इसके लिए शरीरशास्त्री सहमत हो गये हैं कि कामवासना में शरीर से दुर्गन्ध निकलती है। तो दूसरी बात के लिये राजी होने में बहुत देर नहीं है।

ध्यान की गहराइयों में शरीर से एक तरह की सुगन्ध निकलती है क्योंकि तब ऊर्जा ऊपर की तरफ जाती है।

और शरीर की दूसरी ग्रंथियाँ काम करती हैं, जो बिल्कुल ही कामवासना से दूसरे छोर पर हैं।

पवित्र सुगन्ध मात्र मनुष्य से हो पैदा हो सकती है

तो महावीर जैसे व्यक्ति का पूरा जीवन का फूल खिलता है ध्यान का तो आसपास एक सुगन्ध फैलनी शुरू हो जाती है। यद्यपि उन्हीं को पता चलेगा जो सौभाग्यशाली हैं। अगर आपको महावीर के शरीर से सुगन्ध का पता चले तो किसी और को मत बताना, नहीं तो वह कहेगा कि हमें नहीं पता चलता। गलत कहते हो, किसी भ्रम में पड़ गये हो। कोई इलूजन में आ गये हो, धोखा खा गये हो, लेकिन एकाध आदमी को पता चलता हो ऐसा नहीं है, महावीर के पास लाखों लोगों को पता चलता है। महावीर के पास निकट जो लोग रहते थे वह कहते थे कि अगर हम दूर भी हों, अँधेरे में बैठे हों और महावीर एक विशेष सीमा के भीतर आ जायँ तो हम कह सकते हैं कि वह सीमा के भीतर आ गये। उनकी सुगन्ध उनके पहले ही चली आती है। सैकड़ों बार लोगों ने प्रयोग करके देखे।

जब कृष्ण कहते हैं, पृथ्वी में 'मैं' पवित्र सुगन्ध, तो सिर्फ सुगन्ध नहीं कहते, नहीं तो गुलाब के फूल की सुगन्ध काम कर जाती। पवित्र सुगन्ध फूल में पैदा नहीं होती। पवित्र सुगन्ध तो मनुष्य नाम की सुगन्ध में पैदा होती है कभी कभी। वही हूँ 'मैं' अर्जुन। बहुत रेयर फेनामिना है, मुश्किल से कभी घटता है। लेकिन घटता है। और एक शरीर में घट सकता है तो सब शरीर में घटने की खबर लाता है। तो कहते हैं, पृथ्वी में 'मैं' पवित्र सुगन्ध, चन्द्र ताराओं में, सूरज में, ग्रहों में आभा, प्रकाश। इसे भी थोड़ा ख्याल में ले लें। क्योंकि आप कहेंगे कि प्रकाश तो बड़ी दृश्य बात है।

हमने अभी तक प्रकाश नहीं देखा

नहीं, प्रकाश बहुत अदृश्य घटना है। आप कहेंगे, सरासर कैसी बात मैं कह रहा हूँ। आपने देखा है प्रकाश, अभी देख रहे हैं? सुबह सूरज निकलता है, आप प्रकाश देखते हैं। आपसे प्रार्थना करता हूँ, पुनर्विचार करना, आपने प्रकाश अभी तक नहीं देखा है, केवल प्रकाशित चीजें देखी हैं। प्रकाश आपने कभी नहीं देखा। प्रकाश को देखना असंभव है, प्रकाश अदृश्य चीज है।

जब आप कहते हैं प्रकाश है, तो उसका कुल मतलब इतना होता है कि चीजें दिखायी पड़ रही हैं और कोई मतलब नहीं होता। जब चीजें दिखायी नहीं पड़ी तो आप कहते हैं अँधेरा है। आपको बल्ब दिखाई पड़ रहा है, बल्ब एक चीज है। मैं दिखायी पड़ रहा हूँ। यह टेबल, कुर्सी, तख्त दिखायी पड़ रहा है, यह सब चीजें हैं। आपको प्रकाश नहीं दिखायी पड़ रहा है, केवल प्रकाशित चीजें दिखायी पड़ रही हैं। प्रकाश जिनके ऊपर आकर लौट रहा है वे लोग दिखायी पड़ रहे हैं, प्रकाश आपको दिखाई नहीं पड़ रहा है। प्रकाश आज तक किसी मनुष्य को साधारणतः दिखायी नहीं पड़ा है जिस तरह हम सोचते हैं। प्रकाश अदृश्य चीज है।

तो कृष्ण कहते हैं, सूर्यों, ताराओं, चंद्रों में 'मैं' प्रकाश। सूरज नहीं, चाँद नहीं, तारा नहीं, जो तुम्हें दिखायी पड़ता है वह नहीं। मैं वह प्रकाश हूँ जिसके कारण तुम्हें दिखायी पड़ता है लेकिन जो तुम्हें कही दिखायी नहीं पड़ता। प्रकाश अदृश्य उपस्थित है, सिर्फ प्रेज़ेन्स है, कभी दिखायी नहीं पड़ता।

आप सोचते होंगे, अन्ध को दिखायी नहीं पड़ता। मैं कह रहा हूँ, आँख वालों को भी प्रकाश नहीं दिखायी पड़ता। अन्धे और आँख वालों में फर्क यह नहीं है कि एक को प्रकाश दिखायी पड़ता और एक को प्रकाश नहीं दिखायी पड़ता। फर्क इतना है, एक को प्रकाशित चीजें दिखायी पड़ती हैं, एक को प्रकाशित चीजें नहीं दिखायी पड़तीं। प्रकाश तो दोनों को नहीं दिखायी पड़ता है।

अन्तरतम आँखें खुलें, तभी प्रकाश दिखायी पड़ता है

प्रकाश तो उसे दिखायी पड़ता है जो इन आँखों को छोड़कर भीतर की और भी अन्तरम आँखें हैं, उनको खोलता है, उसे प्रकाश दिखायी पड़ता है। फिर चाँद तारे नहीं दिखायी पड़ते, यह भी बड़े मजे की बात है। जब तक चाँद तारे दिखायी पड़ते हैं तब तक प्रकाश दिखायी नहीं पड़ता और जिस दिन प्रकाश दिखायी पड़ता है उस दिन चाँद तारे दिखायी नहीं पड़ते। उस दिन यह सारा जगत् प्रकाश ही रह जाता है। फिर कोई प्रकाशित वस्तु नहीं रह जाती, कोई आब्जेक्ट नहीं रह जाता। सिर्फ प्रकाश का सागर, सिर्फ अनन्त प्रकाश होता है। न कोई सूर्य जिससे निकलता है, न कोई और विषय जिस पर पड़ता है, सिर्फ प्रकाश ही प्रकाश रह जाता है। इसलिए कृष्ण कहते हैं, चाँद ताराओं में, सूर्यों में अर्जुन, तू मुझे प्रकाश जान। चाँद तारे तुझे दिखायी पड़ते हैं, मैं तुझे दिखायी नहीं पड़ता।

तपस्वियों में तेज देखने, ध्यान करना पड़ता है

तपस्वियों में तेज। सोचने जैसा है। तपस्वियों में तेज। तपस्वी तो दिखायी पड़ते हैं सभी को और तपस्वी को देखना बहुत कठिन नहीं है। बड़ी छोटी परीक्षाएँ हैं, उससे पता चलता है। आदमी उपवास कर रहा है, कि एक टाँग पर खड़ा है, कि काँटे बिछाये हैं कि शरीर को सता रहा है, कि धूप में खड़ा है, कि पानी में गला रहा है शरीर को। तपस्वी दिखायी पड़ जाता है। लेकिन कृष्ण कहते हैं, मैं तपस्वी नहीं हूँ, तपस्वियों में तेज हूँ। यह तेज क्या है? आम तौर से हम सबने अपनी अपनी घरेलू व्याख्याएँ कर रखी हैं। तेज से हम क्या मतलब समझते हैं?

हम समझते हैं कि चेहरे पर कुछ रौनक दिखायी पड़े तो तेज हो गया। कि स्वास्थ्य दिखायी पड़े तो तेज हो गया, कि आदमी शक्तिशाली दिखायी

पड़े तो तेज हो गया। जो आपको दिखायी पड़े वह तो तेज होगा ही नहीं। क्योंकि कृष्ण बात कर रहे हैं अदृश्य की। तपस्वियों में तेज। इसकी खोज की विधि है।

अगर किसी तपस्वी में तेज देखना हो तो तपस्वी पर ध्यान करना पड़ता है। महावीर बैठे हैं आपके सामने, आप भी उनके सामने बैठ गये हैं और महावीर को देखें। कि बुद्ध बैठे हैं, देखें। और देखते चले जायँ अपलक। एक ऐसी घड़ी आयेगी कि महावीर खो जायेंगे, सिर्फ तेज पुंज रह जायेगा। तभी आप समझना, अन्यथा नहीं। महावीर बचेंगे ही नहीं। कोई रूपरेखा न बचेगी। कोई शरीर, देह न दिखायी पड़ेगी। आदमी खो जायेगा बिल्कुल, सिर्फ तेज पुंज रह जायेगा, सिर्फ आभा।

और ऐसी आभा, जिसमें स्रोत नहीं होता। दिये में आभा होती है तो दिये में स्रोत होता है। उसके चारों तरफ आभा होती है एक सेन्टर होता है। तेज अगर महावीर में दिखायी पड़ेगा तो उसमें कोई न दिया होगा, न तेल होगा, न बाती होगी, न कोई स्रोत होगा। सिर्फ केन्द्र रहित परिधि होगी। इसलिए हम महावीर, बुद्ध, कृष्ण, क्राइस्ट और नानक और कबीर के आसपास सिर पर वह जो गोल घेरा बनाते हैं, वह कोई केमरे की पकड़ में आने वाली चीज नहीं है।

और बड़े मजे की बात है, हम जो भी करते हैं वह गलत ही करते हैं। असल में हम इतने गलत हैं कि हमसे ठीक कुछ हो नहीं सकता। अगर वह गोल घेरा बनाना हो तो कृपा करके भीतर महावीर को खड़ा मत करो, सिर्फ गोल घेरा रहने दो क्योंकि दोनों घटनाएँ एक साथ कभी नहीं घटीं। जिनको महावीर दिखायी पड़े उनको वह आभा दिखायी नहीं पड़ी। और जिनको आभा दिखायी पड़ी उनको महावीर दिखायी नहीं पड़े। ये दोनों एक साथ नहीं घटतीं। यह असंभव है, यह कभी घटती ही नहीं। क्योंकि वह आभा दिखायी ही तब पड़ती है जब आकार खो जाता है।

तब तपस्वियों में 'मैं' तेज, तपश्चर्या नहीं उन्होंने कहा। महात्माओं के साथ बड़ी ज्यादती कर दी। कहना चाहिए था तपस्वियों में तपश्चर्या, लेकिन कहा, तपस्वियों में तेज। कितनी ही तपश्चर्या करो अगर वह अनुभव की स्थिति नहीं आती जहाँ कि 'मैं' बिल्कुल खो जाता है और सिर्फ प्रकाश का पुंज

रह जाता है। आपसे मैंने कहा, आप देखो महावीर को, यह तो आपकी बात है। आप तो कभी देखोगे बहुत मेहनत करोगे तो दिखायी पड़ेगा।

तेज है बातीरहित दीये की ज्योति

लेकिन जहाँ तक महावीर का सम्बन्ध है, जिस दिन से ज्ञान हुआ कोई चालीस साल की उम्र में, उसके बाद वह चालीस साल और जिन्दा थे। फिर चालीस साल वह जिन्दा थे उसमें वह शरीर नहीं थे। उसमें वह सिर्फ एक प्रकाशपुंज थे जो चल रहा था, डोल रहा था, आ रहा था, जा रहा था, बोल रहा था, सो रहा था, उठ रहा था, बैठ रहा था, लेकिन फिर उसमें कोई शरीर नहीं था।

जिस दिन बुद्ध मरे, किसी ने उनसे पूछा कि मरने के बाद आप कहाँ होंगे। तो बुद्ध ने कहा, चालीस साल से मैं जहाँ था वहीं। पर उसने कहा, नहीं, हम कैसे मानें क्योंकि शरीर तो आपका अब खो जायेगा और इस देह को तो हमें जला देना पड़ेगा, गाड़ देना पड़ेगा। यह तो मिट्टी हो जायेगी। तो बुद्ध ने कहा, मेरे लिए तो यह चालीस साल पहले खो चुकी। चालीस साल तो मैं सिर्फ एक शून्य की भाँति, एक बाती रहित दिये की भाँति, एक प्रकाश की भाँति जी रहा हूँ। और अब मेरे मिटने का कोई उपाय नहीं क्योंकि जो भी मिट सकता था वह मिट चुका है। और अब तो मौत आये कि महामृत्यु, जो है वह रहेगा।

तेज अमृत्व है, शरीर मरणधर्मा है। तपस्वियों में तेज, उसका अर्थ है, तपस्वियों में वह जो कभी नहीं मरता, लेकिन आपने अगर चेहरे पर रौनक देखी तो मर जायेगी तपस्वी के साथ। अगर शरीर में थोड़ी लाली दिखायी पड़ी है तो वह तो जरा इंजक्शन लगा कर खून बाहर निकाल लो तो निकल जायेगी। उससे तेज का कोई सम्बन्ध नहीं है।

तेज को देखकर ही उपलब्धि के सम्बन्ध में कहा जा सकता है

तेज एक बहुत आकल्ट, एक गुप्त रहस्य है।

और उनको देखने की विधियाँ हैं। और जब तक वह न दिखायी पड़े तब तक कोई तपस्वी नहीं है। तप कितना ही करे कोई। महावीर के पास भिक्षु

आयेंगे, साधक आयेंगे, बुद्ध के पास आयेंगे। बुद्ध उनको देखेंगे और कहेंगे, तुम तपश्चर्या कर रहे हो वह ठीक, लेकिन अभी तपस्वी नहीं हुए। क्या मापदण्ड है जानने का?

जानने का एक ही मापदण्ड है, बुद्ध जैसे आदमी आँख किसी पर डालते हैं वह, तत्काल दिखायी पड़ता है कि तेज है या नहीं। तो वही तेज जानने का माध्यम है। और कोई जानने का माध्यम नहीं। और कोई मेज़रमेंट का उपाय भी नहीं है कि किस आदमी को ज्ञान उपलब्ध हो गया। बुद्ध कह देते हैं कि फलाँ आदमी को ज्ञान उपलब्ध हो गया, फलाँ आदमी को ज्ञान उपलब्ध हो गया। लोग आकर उनसे पूछते हैं कि आपने उस आदमी को ज्ञान उपलब्ध कह दिया, वह तो अभी छः दिन पहले आया था, मैं तो छः साल से तपश्चर्या कर रहा हूँ। आपने अभी तक मेरी घोषणा नहीं की। तो बुद्ध कहते हैं, अभी तुम ठहरो, अभी तुम तपश्चर्या ही कर रहे हो, अभी तेज पैदा नहीं हुआ। उस तेज की बात, कृष्ण कहते हैं, तपस्वियों में तेज।

सारा अस्तित्व शब्द से भरा है

एक एक चीज में वह अदृश्य का इशारा करते हैं। कहते हैं, आकाश में शब्द। आकाश दिखायी पड़ता है, आकाश में सब चीजें दिखायी पड़ती हैं, सिर्फ एक शब्द दिखायी नहीं पड़ता। ख्याल किया आपने? आकाश दिखायी पड़ता है, विस्तार, एक्सपेंशन। और आकाश में सब चीजें दिखायी पड़ती हैं, शब्द दिखायी नहीं पड़ता, फिर भी आकाश शब्दों से भरा हुआ है, शब्द से भरा हुआ है। शब्द की तरंगों से भरा हुआ है।

अब तो वैज्ञानिक कहते हैं कि आज नहीं कल, कृष्ण ने जो गीता कही है वह हम फिर पकड़ लेंगे यंत्रों के द्वारा। क्योंकि अगर वह कभी भी कही गयी है तो शब्द कभी मरता नहीं वह मौजूद है। हम उसको पकड़ लेंगे, जरा वक्त लगेगा। अगर दिल्ली से एक शब्द बोला जाता है रेडियो स्टेशन पर और आठ सेकण्ड या दस सेकण्ड बाद बम्बई में पकड़ा जा सकता है। अगर दस सेकण्ड बाद पकड़ा जा सकता है तो दस साल पकड़ने में कोई वैज्ञानिक बाधा नहीं है। दस करोड़ साल बाद पकड़ने में कोई वैज्ञानिक बाधा नहीं है। चाहे हम अभी जल्दी यंत्र बना पायें या न बना पायें। दिल्ली में बोला गया शब्द या लंदन में बोला गया शब्द अगर एक क्षण के बाद भी बम्बई में पकड़ा

जाता है तो उसका मतलब यह है कि शब्द जब पैदा होता है, उसके बाद मर नहीं जाता, होता है। और जब वह आपके बम्बई से गुजर गया तब भी मर नहीं जाता, तब भी मौजूद होता है। सूक्ष्म होता चला जाता है, सूक्ष्म होता चला जाता है, सूक्ष्म होता चला जाता है। यह सारा अस्तित्व शब्दों की पर्तों से भरा हुआ है। अदृश्य पर्तें हैं। इस जगत् में जो भी शब्द कभी बोला गया है वह रेकार्डेड है। वह रेकार्ड के बाहर कभी नहीं जा सकता।

बुरा मत बोलना सब अनन्त तक रिकार्ड हो जायेगा

इसलिए धर्म कहता है कि ऐसा कोई बुरा शब्द मत बोलना जो तुम्हारा रिकार्ड बन जाय। क्योंकि वह अनन्त यात्रा तक तुम्हारा रिकार्ड होगा। उससे बच नहीं सकते हो फिर। उससे बचने का कोई उपाय नहीं है, वह आपकी कथा है। कोई खाताबही लिये हुए नहीं बैठा है परमात्मा कि उसमें लिख रहा है, कि फलाँ आदमी ने क्या बोला। यह अस्तित्व शब्द का विनाश नहीं करता। अस्तित्व शब्द को पी जाता है और समाहित कर लेता है।

कृष्ण कहते हैं, आकाश में 'मैं" शब्द। सर्वाधिक आकाश में व्याप्त जो वस्तु है वह शब्द है और सबसे कम दिखायी पड़ती है। इसलिए गलत बोलने से तो बेहतर है चुप रह जाना, न बोलना। तो न बोलना रिकार्ड में रहेगा कि यह आदमी मौन था। जरूरी नहीं कि मौन में जो आदमी था वह अच्छा आदमी रहा हो, लेकिन इतना तो कम से कम पक्का है कि सक्रिय रूप से बुरा नहीं था।

सुना है मैंने कि एक जहाज पर आदमी पहरेदारी का काम करता था। नया नया आदमी था, पहरेदारी कर रहा था। पहरेदारी के बाद दूसरे दिन उसने देखा तो कैप्टन ने जहाज के उसके रिकार्ड में लिखा हुआ है कि यह आदमी आज शराब पिये हुए था। रिकार्ड सारा खराब हो गया। आठ दिन वह आदमी चुपचाप रहा। आठ दिन बाद कैप्टन ड्यूटी पर था तो उसने जाकर रिकार्ड की किताब में लिखा कि आज वह आदमी शराब नहीं पिये हुए है। आज वह शराब नहीं पिये हुए है। लिखा तो यही कि नहीं पिये हुए है लेकिन पता उससे सिर्फ इतना ही चलता है कि बाकी छः दिन पिये रहा होगा। आप चुप हैं, इससे कुछ पक्का पता नहीं चलता कि आप अच्छे आदमी हैं। छः दिन पता नहीं क्या कर रहे हों। बुरे होने की वजह से चुप रहे हों,

लेकिन एक बात तय है कि कम से कम निष्क्रिय हैं। शुभ शब्दों को बोलने के लिए बड़े प्रयास किये गये हैं।

राज मेरे हाथ में आ गया है

मुझे अपने बचपन की स्मृति है जो कभी नहीं भूलती। मेरे गाँव में जिस आदमी का मुझे सबसे पहला स्मरण है और शायद मरते वक्त सबसे आखिरी स्मरण रहेगा। उस आदमी का मुझे नाम भी पता नहीं, क्योंकि बहुत छोटा था तभी वह आदमी मर गया। एक ही बात स्मरण है कि वह आदमी अपने घर से नदी तक स्नान करने सुबह जाता था तो घर से नदी तक का फासला पैदल चलने में मुश्किल से पाँच मिनट का था। लेकिन उसको नदी तक पहुँचने में दो घंटे लगते थे। नदी में स्नान करने में मुश्किल से, वह जिस ढंग से स्नान करता था, पाँच मिनट से ज्यादा लगने की कोई जरूरत न थी। लेकिन नदी में उसको स्नान करने में दो घंटे लगते थे। घर लौटने में पाँच मिनट का फासला था, लेकिन फिर दो घंटे लगते थे। असल में उस आदमी की जिंदगी सुबह और शाम नहाने में जाती थी। सुबह छः घंटे नहाने में और शाम छः घंटे नहाने में। मामला क्या था?

मामला यह था कि वह आदमी घर से निकला कि बस बच्चों की और लोगों की भीड़ उसके चारों तरफ इकट्ठी हो जाती है। और लोग चिल्लाते हैं, राधेश्याम, राधेश्याम। और वह पत्थर फेंक रहा है, नाराज हो रहा है, चिल्ला रहा है, दौड़ रहा है, वह राधेश्याम का दुश्मन था। कहता कि कहो राम, और लोग चिल्लाते राधेश्याम। बस दो घंटे उसको नदी तक जाने में लगते। तो वह नहा रहा है और लोग चिल्ला रहे हैं, बीच बीच में निकल कर आ रहा है आधा नहाया हुआ। वह कपड़ा धो रहा है और लोग चिल्ला रहे हैं। भीड़ लगी है और वह भाग रहा है। न वह कपड़ा धो पाता है, न वह नहा पाता है। उसकी मुझे याद है। मैं भी उसके पीछे बहुत बार नदी तक उसे छोड़ने गया हूँ और नदी से उसको वापस घर तक लाया हूँ। उसके पीछे मेरे भी छः घंटे बहुत दफे खराब हुए हैं।

लेकिन धीरे धीरे मुझे ख्याल आना शुरू हुआ कि वह आदमी हाथ में पत्थर भी उठाता है, मारने को दौड़ाता भी है, लेकिन जब भी राधेश्याम कहो तो उसकी आँखों में कोई चमक आ जाती है। तब मुझे शक पैदा हुआ। गाँव भर में खबर थी कि वह राम का भक्त है। वह जा रहा था एक दिन नदी, मैं अपने टेम्पटेशन को रोक कर, क्योंकि उस आदमी को नदी तक पहुँचाने में बड़ा टेम्पटेशन था। किसी तरह रोक कर अपने को, वह नदी गया है, मैं चोरी से उसकी दीवाल को छलांग लगाकर उसके घर में गया। अपने घर में वह कभी किसी को घुसने नहीं देता था। कहते हैं, जिस दिन वह मरा उसी दिन लोग उसके घर में घुसे। बरसों से उसके दरवाजे से किसी ने भीतर प्रवेश नहीं किया। मैंने जाकर उसके घर के भीतर देखा तो राधाकृष्ण की मूर्ति उसके घर में रखी है और फूल चढ़े हैं। फिर मैं वहीं बैठा रहा। उस आदमी ने आकर दरवाजा खोला, मुझे भीतर देखकर एकदम पागल हो गया। उसने कहा, भीतर कैसे आये, क्योंकि मेरे घर में मैंने कभी किसी को प्रवेश नहीं करने दिया। तो मैंने उससे कहा, अब तो मैं भीतर आ गया और अब आप चाहें तो बाहर निकाल दें, लेकिन राज मेरे हाथ में आ गया है।

उस आदमी की आँखों में आँसू आ गये। उसने कहा, इस गाँव में इतने लोग हैं, लेकिन किसी ने मेरे हृदय में भीतर प्रवेश करके नहीं देखा। मैं सिर्फ इसी लिए नाराज होता हूँ कि लोग राधेश्याम का नाम ही ले लें। मेरी जिन्दगी इसी में बीत रही है, लेकिन मैं प्रसन्न हूँ। क्योंकि मैं जानता हूँ कि शब्द के जगत् में मैंने बहुत से राधेश्याम की ध्वनियों को संग्रहीत करवा दिया है। और कोई मुझे चिढ़ाने को ही नाम लेता होगा राधेश्याम का, तो भी लेता तो राधेश्याम का ही नाम है। अभी चिढ़ाता रहेगा, चिढ़ाता रहेगा, चिढ़ाता रहेगा; लेकिन किसी दिन, आखिर तुम भी तो चिढ़ाते चिढ़ाते नदी छोड़कर एक दिन मेरे घर के भीतर आ गये हो। वह भी भीतर आ जायेगा।

वह आदमी जिस दिन मरा, उसी दिन गाँव को पता चला। लेकिन उसने मुझसे प्रार्थना की ओर मेरे पैर पकड़ कर प्रार्थना की। मैं तो बहुत छोटा था, वह बूढ़ा था, पैर पकड़कर प्रार्थना की कि तुम आ गये सो ठीक, जब भी आना हो, दीवाल कूदकर आ जाना, लेकिन किसी को बताना मत कि मेरे घर में राधेश्याम की प्रतिमा है नहीं तो गाँव में खबर हो जायेगी तो मुझे कोई चिढ़ायेगा नहीं। बात ही समाप्त हो जायेगी। इस राज को राज ही रहने देना जब तक मैं मर न जाऊँ।

जगत् के मंगल की कामना के साथ प्रार्थना शुरू करना

बुद्ध कहते थे अपने भिक्षुओं से कि प्रार्थना शुरू करना जगत् के मंगल की कामना के साथ, प्रार्थना पूरी करना जगत् के मंगल की कामना के साथ। शायद प्रार्थना तो बेकार चली जाय लेकिन मंगल का जो उद्घोष है वह रिकार्ड हो जायेगा। क्योंकि प्रार्थना तो बेकार जा सकती है, उसको तो करने वाले की सामर्थ्य चाहिए, लेकिन मंगल का उद्घोष तो कोई भी कर सकता है।

आकाश में 'मैं' शब्द। सूक्ष्मतम आकाश में जो संग्रहीत होता है—अदृश्य, अरूप कहना चाहिए, वह शब्द है वह 'मैं' हूँ। वेदों में ओंकार। वेद में कितना क्या है? कहा जाय, करीब करीब सब कुछ है। जगत् में धर्म की दिशा में जो भी खोजा गया है, करीब करीब सब है।

लेकिन उस सबको छोड़ कर कृष्ण कहते हैं, वेदों में ओंकार, सिर्फ ओम्। बस, उतना हूँ 'मैं'। बाकी 'मैं' नहीं हूँ। बाकी तो सब जगत् है। सिर्फ ओम्, अगर कृष्ण से पूछा जाय तो वह कहेंगे, सब शास्त्र नष्ट हो जायँ, अकेला ओम् बच जाय तो सब शास्त्र बच गये। और सब शास्त्र बच जायें, अकेला ओम् खो जाय तो सब शास्त्र खो गये। और बड़े मजे की बात है, यह ओम् बिलकुल ही अर्थहीन शब्द है, मीनिंगलेस। इसमें कोई अर्थ नहीं है, इसमें कोई फिलसुफी, कोई दर्शन नहीं है। यह शब्द एक अर्थ में बिलकुल एब्सर्ड है। इसमें कुछ अर्थ नहीं है। और कृष्ण इतना मोह दिखलाते हैं कि वेदों में ओंकार, बस वेद में 'मैं' ओम् हूँ। क्यों? बहुत बड़ी प्रक्रिया है। थोड़ी सी बात आपसे कह दूँ।

ओम् में समस्त मंत्रयोग की साधना छिपी है

इस एक छोटे से शब्द में, ओम् में भारत ने समस्त मंत्र योग की साधना को बीज की तरह बन्द कर दिया। जैसे आइन्स्टीन का रिलेटिविटी का फार्मूला है, छोटा सा, दो तीन शब्द, दो तीन अक्षर, पूरा हो जाता। ऐसे

ही भारत में जो भी अन्तर-जीवन में अनुभव किया है और जितनी विधियाँ मनुष्य ने विकसित की हैं सत्य की तरफ यात्रा करने की, वे सब की सब बीज मंत्र की तरह ओम् में रख दी हैं।

यह ओम् अ, ऊ और म, इन तीन मूल ध्वनियों का जोड़ है। सारे शब्दों का विस्तार ओम् का विस्तार है। सब वेदों में ओम्। ओम् होगा तो सब वेद पुनः निर्मित हो सकते हैं, सीक्रेट-की आपके हाथ में है। ये तीन अ, ऊ और म, अगर ये तीन हों तो जगत् के सब शास्त्र निर्मित हो सकते हैं। लेकिन सब शास्त्र बच जायँ और कुंजी खो जाय तो सब शास्त्र बेकार हो जायेंगे। ताले रह जायेंगे, चाभी खो जाये तो गयी।

पार्वती तू 'ऊ' में डूब जा

विज्ञान भैरव में शिव ने पार्वती को कहा है कि तू ज्यादा न पूछ, ज्यादा में तुझे अड़चन होगी। थोड़े में तुझे कह दूँ, अ ऊ म, यह जो ओम् है इसमें तू अ को भी भूल जा, इसमें तू म को भी भूल जा, वह जो बीच में बचता है, ओम् के बीच में, अ भी छूट जाय, म भी छूट जाय, वह जो बीच में बचता है ऊ, उस 'ऊ' में तू डूब जा। तो मैं तुझे उपलब्ध हो जाऊँगा।

यह तो टेकनीक की बात है, अगर आप ऊ में डूब सकें। आप कभी जोर से कहें ऊ, तो आप को पता चलेगा कि पूरी नाभि भीतर सिकुड़ गयी। जितने जोर से ऊ कहेंगे उतने ही जोर से नाभि पर जोर पड़ेगा और नाभि जीवन का मूल ऊर्जा स्रोत है। उसको ठीक टेप करना जिसको आ जाय, ओम्, उसको ही हेमर, उसको ही चोट पहुँचाने की तरकीब आती है, और उस पर जो विधिवत चोट पहुँचा दे, उसके जीवन की ऊर्जा उठनी शुरू हो जाती है। कुण्डलिनी जागने लगती है। ऊपर की यात्रा पर आदमी निकल जाता है।

सुना है मैंने कि एक छोटे गाँव में एक बहुत बड़े कारखाने में एक नयी मशीन लगायी गयी है। महीने भर ठीक चली और फिर अचानक बन्द हो गयी। कोई खराबी भी न थी। कोशिश करके हार गये इंजीनियर उस

कारखाने के, लेकिन कोई रास्ता न निकला। फिर तो बड़े शहर से, राजधानी से विशेषज्ञ को बुलाना पड़ा। हजार रुपया उसके आने जाने का खर्च हुआ। वह विशेषज्ञ आया, एक छोटी सी हथौड़ी, उसने अपनी पेटी में से निकाली और मशीन को तीन जगह, ठक ठक ठक तीन जगह उसने किया, मशीन चल पड़ी।

मालिक ने कहा कि बड़ी कृपा आपकी, आपका बिल क्या हुआ? उसने लिखा, एक हजार रुपया। मालिक ने कहा, मजाक तो नहीं कर रहे आप? तीन जगह ठक ठक ठक करने का एक हजार रुपया? आइटमवाइज बिल बनाइये। आपने और तो कुछ किया भी नहीं, ठक ठक ठक। इसमें पहली ठक का कितना रुपया, दूसरी ठक का कितना रुपया, तीसरी ठक का कितना रुपया? आँख से मैं देख रहा हूँ।

उस आदमी ने बिल बनाया, उसने लिखा कि तीन ठकों का एक रुपया, टेपिंग रुपी वन एण्ड नोइंग व्हेयर टू टेप रूपीज नाइन हण्ड्रेड नाइनटी नाइन। कहाँ, उसके नौ सौ निन्यानवे रुपये और जहाँ तक ठोंक का सवाल है, एक रुपये से चल जायेगा। और उसने नीचे लिखा कि अगर आप को ज्यादा तकलीफ हो रही हो तो टेपिंग का आप छोड़ भी सकते हैं, वह एक रुपया न भी दें, बाकी नोइंग व्हेयर टु टेप के दीजिये। ओम् जो है वह सीक्रेट है समस्त वेदों का। वह व्यक्ति के भीतर जो परमात्मा की ऊर्जा छिपी है, उसको टेप करने की तरकीब है। उसको चोट करने की तरकीब है। तो कृष्ण कहते हैं, वेदों में ओंकार। ऐसा 'मैं' अदृश्य हूँ। ऐसे दृश्य में तू मुझ अदृश्य को खोज।

'मैं' है योग

चौथा प्रवचन

गीता-ज्ञान-यज्ञ, बम्बई, रात्रि, दिनांक २५ मई, १९७१

बीजं मां सर्वभूतानां विद्धि पार्थ सनातनम् ।
बुद्धिर्बुद्धिमतामस्मि तेजस्तेजस्विनामहम् ॥१०॥

बलं बलवतामस्मि कामरागविवर्जितम् ।
धर्माविरुद्धो भूतेषु कामोऽस्मि भरतर्षभ ॥११॥

हे अर्जुन, तू संपूर्ण भूतों का सनातन कारण मेरे को ही जान। 'मैं' बुद्धिमानों की बुद्धि और तेजस्वियों का तेज हूँ।

और हे भरत श्रेष्ठ, मैं बलवानों का आसक्ति और कामनाओं से रहित बल अर्थात् सामर्थ्य हूँ और सब भूतों में धर्म के अनुकूल अर्थात् शास्त्र के अनुकूल काम हूँ।

परमात्मा स्वयं अपना परिचय देना चाहे तो निश्चित ही बड़ी कठिन बात है। आदमी भी अपना परिचय देना चाहे तो कठिन हो जाती है बात। और परमात्मा अपना देना चाहे तो और भी कठिन हो जाती है।

अस्तित्व विराट है

एक तो इसलिए कठिन हो जाती है कि परमात्मा भी अपना स्वयं परिचय दे तो सदा ही अधूरा पड़ेगा, पूरा नहीं हो सकता। अस्तित्व इतना विराट है, और शब्द इतने छोटे पड़ जाते हैं। परमात्मा भी कहना चाहे तो कहकर पायेगा कि जो कहना था वह नहीं कहा जा सका है। कहना चाहा था, वह छूट गया है। और जो कहा गया है, वह बहुत दूर की खबर लाता है।

कृष्ण को भी वैसी ही कठिनाई है। और जब भी किसी व्यक्ति के भीतर से परमात्मा ने स्वयं को अभिव्यक्ति किया है, तब सदा ही ऐसी ही कठिनाई

हुई है। कृष्ण की पीड़ा हम समझ सकते हैं। वे जो उदाहरण दे रहे हैं, वे जिन बातों के सहारे समझाने चल रहे हैं, वे बातें बहुत साधारण हैं। लेकिन इसके अतिरिक्त कोई उपाय नहीं, कोई विकल्प नहीं।

आदमी से बात करनी हो तो आदमी की भाषा में ही बात करनी पड़ेगी।

जो आदमी इशारे को पकड़ लेगा वह भटक जायेगा

इशारे करते हैं। इशारों से ज्यादा नहीं है यह बात। और जो आदमी इशारे को पकड़ लेगा, वह भटक जायेगा।

और हम सबकी आदत इशारों को पकड़ने की है। हम मील के पत्थरों को छाती से लगाकर बैठ जाते हैं यह सोचकर कि यह मंजिल हुई। हालांकि हर मील का पत्थर, केवल एक तीर का इशारा है, आगे की तरफ, कि मंजिल आगे है।

और मैं चाँद को अँगुली से बताऊँ तो बहुत डर है कि अँगुली पकड़ ली जाय और चाँद समझ ली जाय। यद्यपि अँगुली चाँद नहीं है, लेकिन अंगुली चाँद की तरफ इशारा कर सकती है। लेकिन यह इशारा उसी की समझ में आयेगा जो अँगुली को छोड़ दे और भूल जाय, और चाँद की तरफ देखे। और मैंने अँगुली उठायी चाँद की तरफ, और आपने सोचा कि शायद मैं अँगुली उठा रहा हूँ तो अँगुली में कुछ होगा। और आप मेरी अँगुली से अटक गये तो आप चाँद तक कभी भी न पहुँच पायेंगे।

अँगुली चाँद को बताती है, वह चाँद नहीं है। उसे छोड़ ही देना पड़ेगा। उसे भूल ही जाना पड़ेगा। उसे तो बिल्कुल पीछे छोड़कर जब आँख आकाश की तरफ उठेगी, वहाँ कोई अँगुली न होगी, वहाँ तो चाँद होगा।

तो कृष्ण यह जो बातें कह रहे हैं, वह अँगुलियाँ हैं। अधूरे इशारे हैं, आंशिक उनमें सूचना है। जो उनको पकड़ लेगा, वह खतरे में पड़ेगा। जो उनको छोड़ देगा, उनके ऊपर उठेगा, पार जायेगा, वह इशारे को समझने में समर्थ हो सकता है। कल रात्रि भी उन्होंने कुछ इशारे किये थे। उसमें एक इशारा छूट गया था, उसकी भी हम बात कर लें।

पुरुषों में 'मैं' पुरुषत्व हूँ

उन्होंने कहा है, पुरुषों में 'मैं' पुरुषत्व हूँ। पुरुषों में पुरुषत्व, पुरुष नहीं। पुरुषत्व क्या है? यह संस्कृत का शब्द बहुत कीमती है। और इस शब्द की थोड़ी सी पर्तों को उघाड़ना जरूरी है।

हम सभी जानते हैं कि पुर कहते हैं नगर को, बस्ती को। जिन्होंने पुरुष शब्द का उपयोग किया है उन्होंने कहा है कि यह आदमी तो एक नगर है, एक पुर है। और इसके भीतर एक मालिक बस रहा है, वह पुरुष है। इस नगरी के भीतर जो छिपा है वह।

तो पुरुष से अर्थ, स्त्री के विपरीत जो है, वैसा नहीं है। पुरुष का अर्थ मेल नहीं है। पुरुष तो स्त्री के भीतर भी है। स्त्री और पुरुष, जैसा हम प्रयोग करते हैं, ये तो नगर की खबर देते हैं। स्त्री की बस्ती अलग है, उसका शरीर अलग है। और जिसे हम पुरुष कहते हैं, उसकी भी बस्ती अलग है और शरीर अलग है। लेकिन भीतर जो बस रहा है पुरुष, उस नगर के बीच में जो बस रहा है मालिक, वह एक है।

इसलिए कई को यह ख्याल हो सकता है कि कृष्ण ने स्त्रियों की जरा भी बात न कही। कुछ तो कहना था, कि स्त्रियों में 'मैं' कौन हूँ? ज्यादती मालूम पड़ती है। सबकी बात कर रहे हैं, और स्त्री कोई छोटी घटना नहीं है कि उसकी बात छोड़ी जा सके। जिसे हम पुरुष कहते हैं उससे तो थोड़ी बड़ी ही घटना है।

क्योंकि जीवन के इस सृजन में पुरुष तो सांयोगिक है, एक्सीडेंटल है, स्त्री आधारभूत है।

लेकिन कृष्ण ने स्त्री की बात नहीं की जानकर, क्योंकि पुरुष में स्त्री सम्मिलित हो गयी है। अगर नगर की बात करते तो फासला था स्त्री और पुरुष का। वे तो उसकी बात कर रहे हैं जो नगर के बीच में बसा है। स्त्री के भीतर भी वह पुरुष है, पुरुष के भीतर भी वह पुरुष है। फिर भी पुरुष की बात नहीं कह रहे हैं।

पुरुषत्व तो शाश्वत है

कह रहे हैं पुरुषों में 'पुरुषत्व' जैसे कि हजारों फूल को निचोड़कर हम थोड़ा सा इत्र बना लें। ऐसा ही समस्त पुरुष जहाँ जहाँ है, उनके भीतर जो पुरुषत्व है, वह जो निचोड़ है, वह जो इत्र है, वह 'मैं' हूँ। यह भी सोचने जैसा है। क्योंकि जब हम कहते हैं पुरुष, तो एक पर्टीक्युलर, एक विशेष व्यक्तित्व का ख्याल आता है। जब हम कहते हैं पुरुषत्व, तो युनिवर्सल, सार्वभौम सत्य का ख्याल आता है। जब हम कहते हैं पुरुष, तो सीमा बनती है और जब हम कहते हैं पुरुषत्व तो असीम हो जाता है।

यूनान में प्लेटो ने जिसे आइडिया कहा है, प्रत्यय कहा है। वैसे ही पुरुषत्व एक प्रत्यय है, आइडिया है। जब हम कहते हैं प्रेमी, तो एक सीमा बन जाती है। लेकिन जब हम कहते हैं प्रेम तो सब सीमाएँ टूट जाती हैं, तब असीम हो जाता है सब। जब हम कहते हैं पुरुष, तो एक रेखा खिंच जाती है चारों ओर। और जब हम कहते हैं पुरुषत्व तो विराट आकाश की तरह सब विस्तीर्ण हो जाता है। पुरुषत्व की कोई सीमा नहीं है। पुरुष आयेंगे और जायेंगे, पुरुष बनेंगे और मिटेंगे।

पुरुषत्व तो शाश्वत है।

शकलें बदलेंगी, घर बदलेंगे, नगर बसेंगे और उजड़ेंगे। आज आपका एक नाम है, पिछले जन्म में दूसरा था, अगले जन्म में और तीसरा होगा। कितने कितने पुरुष होने का आपको ख्याल पैदा होगा कि मैं यह हूँ, मैं यह हूँ, मैं यह हूँ। लेकिन भीतर वह जो निर्गुण, वह जो निराकार है, वह एक है।

लहरों में 'मैं' सागर हूँ

इसलिए भी कहा पुरुषत्व, जब हम लहरों की बात करते हैं तो अक्सर डर होता है कि सागर कहीं भूल न जाये। कृष्ण यह कह रहे हैं कि लहरों में 'मैं' सागर। लहर भला दिखायी पड़ती हो, लेकिन सिर्फ दिखायी पड़ती है, एपियरेंस है, सिर्फ एक आभास है। सत्य तो सागर के नीचे है।

बड़ी मजे की बात है, सागर के किनारे जायें तो लहरें ही दिखायी पड़ती हैं, सागर कभी दिखायी नहीं पड़ता। अक्सर आप कहते हैं कि मैं सागर के

दर्शन करके आ रहा हूँ, लेकिन गलत कहते हैं। कहना चाहिए, लहरों के दर्शन करके आ रहा हूँ। सागर तो दिखायी नहीं पड़ता। दिखायी तो लहरें पड़ती हैं। फिर भी आप कहते हैं कि सागर का दर्शन करके आ रहा हूँ। इसी ख्याल से कि लहर की क्या गिनती करनी, लहर तो आप देख भी नही पाये होंगे और मिट गयी होगी और दूसरी बन गयी होगी। जो मिट गयी थी लहर, उसमें भी 'जो' था और जो बन गयी है लहर, उसमें भी 'जो' है। हालांकि वह आपको दिखायी नहीं पड़ा है। लेकिन आप खबर यही देते हैं कि मैं सागर के दर्शन करके आ रहा हूँ।

तो कृष्ण लहरों की बात नहीं कर रहे हैं, वह तो सागर की बात कर रहे हैं। वह पुरुषों की बात नहीं कर रहे, पुरुषत्व की बात कर रहे हैं। जिसके ऊपर सारा खेल निर्मित होता है। एक रूप, दूसरा रूप, हजार रूप, वह पुरुषत्व लेता चला जाता है। और फिर भी अरूप है। न मालूम कितने आकार बनते हैं और विसर्जित होते हैं, फिर भी वह निराकार है।

'मैं' वीरों का वीर्य हूँ

तो पुरुषों में 'मैं' पुरुषत्व हूँ। इस सूत्र में भी उन्होंने कुछ बातें कही हैं, कुछ कीमती बातें कही हैं। कहा है, वासना से रहित, काम से रहित, वीरों का वीर्य हूँ। वासना से रहित, कामना से रहित वीरत्व हूँ, वीरता हूँ। आदमी वासना में डूब कर बड़े वीरता के कार्य कर सकता है। लेकिन कृष्ण कह रहे हैं कि 'मैं' मनुष्य के भीतर वह जो वीर्य की ऊर्जा घटित होती है वह हूँ। 'मैं' तब वह हूँ जब वहाँ काम न हो, वासना न हो। आपको एक ख्याल दिलाना चाहूँगा।

महावीर का, जन्म का नाम वर्द्धमान था। बाद में दिया गया नाम महावीर। और महावीर नाम दिया गया उस वीरता की वजह से जिसकी कृष्ण चर्चा कर रहे हैं। महावीर किसी से लड़े नहीं। लड़ने की बात दूर, पाँव फूंक कर रखा कि कोई चींटी न दब जाय। किसी से कोई स्पर्धा न की, किसी से कोई प्रतियोगिता न की। कैसी वीरता है उनकी? अगर महावीर को हम देखेंगे तो उनके चारों तरफ कोई भी तो घटना घटती हुई मालूम नहीं पड़ती कि जिसमें वीरता का पता चलता हो। न युद्ध के मैदान पर लड़ते हैं, न तलवारों, भालों के बीच में खड़े होते हैं, कैसे वीर होंगे! लेकिन इस मुल्क

ने उनको महावीर कहा। इस मुल्क ने इस सूत्र की वजह से महावीर कहा। वासना बिल्कुल नहीं है, फिर एक वीर्य का उनमें उदय हुआ है। उस वीर्य को हम थोड़ा पहचाने कि वह कैसा है ?

अब 'मैं' अकेला काफी हूँ

महावीर साधना में लगे, कठोर तपश्चर्या में डूबे, भूल गये जगत् को, याद रखा अपने को ही। नग्न खड़े होते थे गाँव के बाहर। लोग सताने लगे। एक दिन सुबह ऐसी घटना हुई। एक ग्वाले ने आकर अपनी गायों को वहाँ चराने के लिए छोड़ा। फिर उसको कुछ काम आ गया, तो उसने खड़े हुए महावीर से कहा कि सुनो, जरा मेरी गायों को देखते रहना, मैं अभी लौटकर आता हूँ। जल्दी में था, उसने यह भी फिक्र न की कि नग्न खड़ा हुआ साधु कुछ बोला नहीं। या सोचा होगा कि मौन सम्मति का लक्षण है, चला गया।

दोपहर जब वापस लौटा, तो महावीर तो अपने दूसरे ही लोक में थे, लौटा तब तक गायें चरती हुई दूर निकल गयीं। महावीर से बहुत पूछा, वह कुछ न बोले, आंख बन्द किये खड़े थे, खड़े रहे। सोचा, या तो यह आदमी पागल है या चालाक है। गायें या तो चोरी चली गयीं, इस आदमी का हाथ है। या फिर यह आदमी पागल है, या गूँगा है या बहरा है। वह गायों को ढूँढ़ने गया, जंगल भर में घूम आया लेकिन गायें न मिली।

और जब साँझ महावीर के पास से निकलता था, गायें चरकर लौट आयी थीं और महावीर के पास वापस बैठी हुई थीं। तब तो पक्का शक हो गया। सोचा कि यह आदमी बेईमान है, मुझे धोखा दिया, गायों को छिपाये रहा, अब रात में लेकर निकल जायेगा। उसने महावीर को गालियाँ दीं, मारा, कान में लकड़ियों की खूँटियाँ ठोक दीं। क्योंकि यह देखकर कि तू समझ रहा है कि तू बहरा है, तू सुनता नहीं। हम तेरे बहरेपन को पूरा किये देते हैं। कान में उसने खूँटियाँ ठोंक दीं, लहूलुहान, महावीर के कान से खून बहने लगा। वह खूँटियाँ ठोंक कर अपनी गायों को लेकर चला गया।

मीठी कथा है कि देवता पीड़ित और परेशान हुए और इन्द्र ने आकर महावीर से कहा कि क्षमा करें, हमें आज्ञा दें, ताकि हम आपकी रक्षा करें। ऐसा दुबारा न हो, अन्यथा बदनामी हमारी होगी कि भले लोग जमीन पर थे

और महावीर के कान में खूँटियाँ ठोंक दी गयीं। हमें आज्ञा दें, महावीर ने आँख खोली और कहा, वह ग्वाला भी अपने ढंग से मुझे विचलित करने आया था, तुम अपने ढंग से मुझे विचलित करने आये हो। मुझे छोड़ दो मुझ पर, जो भी होना है मुझ अकेले पर होने दो। जन्मों जन्मों बहुत तरह के साथ मैंने लिये, सब साथ व्यर्थ गये, अब मैं अकेला हूँ। जन्मों जन्मों न मालूम कितने कंधों पर हाथ रखे और सोचा कि वे साथी बनेंगे, कोई साथी कभी बना नहीं। अब मैं अकेला हूँ।

अब यह वीर्य, यह वीरता दिखायी नहीं पड़ेगी बाहर किसी युद्ध के मैदान में। लेकिन युद्धों में जो वीर हैं वे बच्चे हैं।

महावीर की वीरता यह है कि वे कहते हैं कि अब संगी और साथी न बनाऊँगा, अब अकेला काफी हूँ। जन्मों जन्मों बहुत संगी साथी बनाये, सब व्यर्थ हो गये। पाया आखिर में कि अकेला हूँ। अब मुझे तुम अकेला ही होने दो। और एक तरह से वह विचलित करने आया था, तुम दूसरी तरह से विचलित करने आये हो। इन्द्र ने कहा, आप हमें गलत न समझें, हम आप को विचलित करने नहीं, सिर्फ रक्षा करने आये हैं।

एक ही वीरता है इस पृथ्वी पर, अकेले होने का साहस

महावीर ने कहा, जिनने भी मेरे लिए सदा वचन दिये रक्षा करने के और जिन्होंने कहा, हम रक्षा करेंगे, वे ही थोड़े दिन में मेरे कारागृह बन गये। जिनने भी कहा था कि हम रक्षा करेंगे, जिनने भी कहा था कि हम साथ देंगे, संगी बनेंगे, दुख से बचायेंगे, आखिर में मैंने पाया कि वे ही मेरे दुख के कारण बने, और वे ही मेरे कारागृह की दीवालें बने। अब नहीं, अब मैं अकेला काफी हूँ। अब सुख हो या दुख, मैं अकेला काफी हूँ। तुम मुझे मुझ पर छोड़ दो।

महावीर ने कहा है, एक ही वीरता है इस पृथ्वी पर, अकेले होने का साहस, दी करेज टु बी अलोन।

बहादुर से बहादुर आदमी भी अकेला नहीं हो सकता। कम से कम तलवार तो साथ रखता ही है। इसलिए जिसके हाथ में तलवार देखें, समझ लेना कि भीतर कायर छिपा है। नहीं तो तलवार किसके लिए ! महावीर नग्न खड़े हैं, हाथ में एक लकड़ी का टुकड़ा भी नहीं है।

कृष्ण कहते हैं, जिसकी वासना हट गयी, जिसका काम हट गया, उसमें 'मैं' वीर्य हूँ। उसमें 'मैं' बल हूँ। उसका 'मैं' बल हूँ। इसमें एक बात और समझ लेने जैसी है। जहाँ भी कामवासना है, वहाँ वीर होना उसी तरह आसान है जैसे किसी आदमी को शराब पिला दी जाय और लड़ने को भेज दिया जाय। नशे में बहादुर हो जाना आसान है क्योंकि नशे में आदमी मूर्छित होता है। इसलिए हाथियों को जब युद्ध पर भेजते हैं तो शराब पिलाकर भेजते हैं। क्योंकि मरने का ख्याल ही नहीं रह जाता, होश ही नहीं रह जाता। कामवासना भी एक जहर है, एक इंटाक्सिकेंट है। और जब आप कामवासना से भरते हैं तो कामवासना से भरा हुआ आदमी, आग लगे मकान में प्रवेश कर सकता है।

जो धर्म से भरा है उसकी 'मैं' वासना भी हूँ

तुलसीदास की कहानी हम सबने सुनी है। कामवासना से भरा हुआ आदमी नदी में मुर्दे को हाथ का सहारा लगाकर पार हो गया। उसे पता न चला कि मुर्दा है, उसने समझा कि कोई लकड़ी का टुकड़ा है, उसके सहारे मैं पार हो जाऊँ। तुलसीदास बरसात की अँधेरी रात में छज्जे से लटके हुए साँप को रस्सी समझ कर ऊपर चढ़ गये। रस्सी दिखायी पड़ी, साँप दिखायी न पड़ा। आँखें अन्धी थीं। वासना ही क्या जो अन्धा न कर जाय। कोई कह सकता है कि बड़े बहादुर रहे होंगे। तुलसीदास साँप को पकड़ कर चढ़ गये, कम बहादुर हैं। लेकिन तुलसीदास नहीं चढ़े साँप को पकड़ कर, साँप को पकड़ कर वासना चढ़ी। और वासना अन्धी है। उसमें कोई बहादुरी नहीं होती। तुलसीदास नहीं चढ़े साँप को पकड़ कर। तुलसीदास को साँप दिख जाता तो भाग खड़े होते, वह दिखायी नहीं पड़ा। आँखें अन्धी थीं। जब आँखें खोलीं तो पता चला कि क्या किया है?

तीव्र वासना के क्षण में आप मूर्छित होते हैं, बेहोश होते हैं। बेहोशी में बल का कोई अर्थ नहीं है। पागल होते हैं, पागलपन में बल का कोई अर्थ नहीं है। इसलिए कृष्ण उसे काट देते हैं। वह कहते हैं, कामवासना को छोड़कर बलवानों का 'मैं' बल हूँ।

और भी एक बात कहते हैं, इसी संदर्भ में, यह भी कहते हैं कि जो धर्म से भरा है उसकी मैं कामवासना भी हूँ। ये उल्टे दिखायी पड़ेंगे वक्तव्य।

बलवान के लिए कहा, जो कामवासना से रहित है, उसका 'मैं' बल हूँ। लेकिन तब यह सवाल उठ सकता है, फिर यह कामवासना का क्या होगा? कृष्ण कहते हैं, कामवासना भी 'मैं' उसकी, जो धर्म से भरा है। इसका क्या अर्थ होगा, धर्म से भरी कामवासना का क्या अर्थ होगा? जैसे ही व्यक्ति के जीवन में धर्म उतरता है वैसे ही कामवासना वासना नहीं रह जाती। वैसे ही काम, सेक्स, यौन, यौन नहीं रह जाता। इसे थोड़ा समझना जरूरी है।

धर्म का अमृत ऐसा है कि जहर भी अमृत हो जाता है

कुछ ऐसा है कि जिस व्यक्ति के जीवन में धर्म का अवतरण होता है, उस व्यक्ति के जीवन का सभी कुछ धार्मिक हो जाता है। धर्म इतना डुबाने वाला है कि सिर्फ आपकी बुद्धि को ही डुबायेगा ऐसा नहीं, सिर्फ आपके हृदय को ही डुबायेगा ऐसा नहीं, आपके शरीर को भी डुबा लेगा। धर्म इतनी बड़ी घटना है। घटे तो आप पूरे के पूरे उसमें डूब जायेंगे। आपकी कामवासना कहाँ बचेगी, वह भी उसमें डूब जायेगी।

कहना चाहिए, धर्म का अमृत ऐसा है कि अगर जहर की बूँद भी उसमें पड़ जाय तो अमृत हो जायेगी।

हमें समझना बहुत कठिन होगा। हमारी सामान्य समझ तो यह कहती है कि सारा का सारा अमृत जहर हो जायेगा अगर एक बूँद जहर की पड़ गयी। क्योंकि जहर से ही हम परिचित हैं, अमृत से हम परिचित नहीं हैं। हमने जहर ही जाना है, हमने अमृत जाना नहीं है। सच बात तो यह है कि अमृत की कसौटी और परीक्षा ही यही है कि वह जहर को भी अमृत बना पाये। अन्यथा उसकी कोई कसौटी नहीं, कोई परीक्षा नहीं।

धर्म की कसौटी ही यही है कि आपके भीतर जो जहर है वह अमृत हो जाय।

आपके भीतर जो यौन है, जो वासना है, कामना है, वह भी राम अर्पित हो जाय, वह भी प्रभु समर्पित हो जाय। वह ऊर्जा भी ब्रह्म की ऊर्जा बन जाय। क्या होता होगा? जब कोई व्यक्ति धर्म से भरता होगा तो उसकी कामवासना की गति क्या होती होगी? उसकी कामवासना की गति आमूल बदल जाती है।

अभी आप कामवासना से भरते हैं अचेत होकर, मूर्छित होकर, विक्षिप्त होकर। निर्णय करते हैं हजार बार कि कामवासना से बचूँगा, बचूँगा, बचूँगा। और आप निर्णय करते रहते हैं और भीतर वासना संग्रहीत होती चली जाती है। और एक क्षण आता है कि आपके निर्णय का पत्थर उठाकर फेंक दिया जाता है, और वासना का झरना फूट पड़ता है। फिर कल के जैसा आप पछतायेंगे और फिर पछताकर यही करेंगे कि फिर वासना को दबाकर इकट्ठा करेंगे। और फिर वह वक्त आयेगा कि आपके संकल्प को तोड़कर वासना पुनः बह उठेगी।

अभी वासना का हम पर हमला होता है, वी आर द विक्टिम्स। अगर इसे ठीक से समझें तो हम वासना के मालिक नहीं हैं, शिकार हैं। वासना हमें पकड़ लेती है, भूत प्रेत की भाँति। और हमसे कुछ करा डालती है। जो कि शायद हमने अपने होश में कभी न किया होता। जब हम होश में आते हैं तब पछताते हैं, दुखी और पीड़ित होते हैं कि हमने ऐसा सोचा, ऐसा किया?

लेकिन फिर वही होता है। हम वासना के हाथ में धागे बँधी हुई गुड्डियों की तरह हैं, जो नाचते हैं। प्रकृति हम से काम लेती है, हम प्रकृति के गुलाम हैं। प्रकृति आज्ञा देती है और हम काम में लग जाते हैं।

धर्म को उपलब्ध व्यक्ति, प्रकृति के बाहर हो जाता है

धर्म से भरे हुए व्यक्ति को प्रकृति आज्ञा देना बन्द कर देती है। असल में जो व्यक्ति धर्म को उपलब्ध होता है, प्रकृति की आज्ञा सीमा के बाहर हो जाता है।

प्रकृति उसे कोई भी आज्ञा नहीं दे सकती। और एक नयी घटना घटती है कि धर्म को उपलब्ध व्यक्ति प्रकृति को आज्ञा देने लगता है। एक आमूल रूपांतरण होता है।

जब तक हम धर्म में नहीं जीते हैं तब तक प्रकृति हमें आज्ञा देती है, हम गुलामों की तरह होते हैं। हम चलाये जाते हैं, चलते नहीं। हम खींचे जाते हैं, चलते नहीं। हम धकाये जाते हैं, हम चलते नहीं। हमारी जिन्दगी हमारी वृत्तियों का जबरदस्त दबाव है। न तो आपने कभी क्रोध किया है, क्रोध करवाया गया है। न आपने कभी कामवासना की है, कामवासना करवायी

गयी है। आप सिर्फ एक विक्टिम हैं, सिर्फ एक शिकार हैं। चारों तरफ से आपको धक्के दिये जा रहे हैं। जैसे हवा में पत्ता काँपता है। बायें हवा बहती है, तो बायें, और दायें बहती है तो दायें। वह पत्ता भी शायद मन में सोचता होगा कि अब बायें, बहुत थक गया, अब जरा दायें बहूँ। जब हवा दायें चलने लगती है तब वह सोचता होगा, अब बायें चलूँ। वैसे ही आप सोचते हैं कि मैं क्रोध कर रहा हूँ, कि मैं वासना से भर रहा हूँ, नहीं आप सिर्फ भरे जाते हैं। आप बिल्कुल हेल्पलेस विक्टिम, असहाय शिकार हैं।

धर्म से भरा व्यक्ति, प्रकृति को आज्ञा दे सकता है

धर्म से भरा हुआ व्यक्ति प्रकृति के ऊपर उठता है, वह प्रकृति को आज्ञा देना शुरू करता है। वैसे व्यक्ति के जीवन में कामवासना वासना नहीं रह जाती। हाँ, वैसे व्यक्ति के जीवन में यदि काम की कोई घटना भी घटे, जैसे कि कुछ घटनाएँ घटी हैं तो उनके कारण बहुत ही दूसरे होते हैं।

जैसे जीसस के बाबत कहा जाता है कि वह क्वाँरी मरियम से पैदा हुए। यह उदाहरण मैं आपको दे रहा हूँ, ताकि आपकी समझ में आ सके कृष्ण की बात। जीसस के बाबत कहा जाता है कि वह क्वाँरी मरियम से, वर्जिन मैरी से पैदा हुए। अब क्वाँरी लड़की से कोई कैसे पैदा होगा?

लेकिन हो सकता है। अगर कृष्ण के सूत्र को समझें तो हो सकता है। मैरी, जीसस की माँ किसी कामवासना से भर कर अगर संभोग में न उतरी हो, वरन् जीसस की आत्मा को जन्म देने के लिए ही अपने शरीर की प्रकृति को आज्ञा दी हो तो वह क्वाँरी है। और आपसे मैं कहूँ कि आप जब किसी बच्चे को जन्म देते हैं तब भी आपको पता नहीं होता कि उस बच्चे की आत्मा आपके चारों तरफ मँडरा रही है और आपको प्रेरित कर रही है कि आप उसे जन्म दें। लेकिन आप बेहोश हैं। उसके लिए प्रकृति आपको धक्के दिलाती है और बच्चे का जन्म करवाती है।

लेकिन कामवासना जिस दिन धर्म से रूपांतरित होती है उस दिन आप सचेत रूप से एक आत्मा से बात कर पाते हैं जो आपके द्वारा जन्म लेना चाहती है। और अगर आप जन्म देना चाहते हैं तो आप अपने शरीर को आज्ञा देते हैं कि वह वासना में उतरे, वह काम कृत्य में उतरे। लेकिन यह

आज्ञा होती है। और इसलिए इसमें बुनियादी फर्क है। जब आप कामवासना में उतरते हैं तो आप बेहोश होते हैं और जब ऐसा व्यक्ति कभी कामवासना में उतरता है तो बिल्कुल होश में होता है। वह अपने शरीर का उपयोग, एक उपकरण, एक यंत्र की भाँति कर रहा होता है। मालिक होता है, शरीर उसका उपयोग नहीं कर रहा होता। तो कृष्ण कहते हैं, 'मैं' कामवासना भी हूँ, लेकिन उनकी, जो धर्म से भरे हैं। जीवन ने बहुत से सत्य खोज लिये थे जो धीरे-धीरे बार-बार खो जाते हैं, उनमें से एक सत्य यह भी था। इस संदर्भ में एक बात आपको कहना चाहूँगा।

आज सारी पृथ्वी पर संतति निरोध का आंदोलन है। सब जगह, किसी भी तरह आने वाले बच्चों को रोकना है। लेकिन एक ही उपाय मालूम पड़ता है और वह यह है कि हमारे शरीर में कुछ फर्क किया जाय। और कोई उपाय मालूम नहीं पड़ता। एक ही उपाय मालूम पड़ता है कि हमारे शरीर की ग्रंथियाँ काट डाली जायँ या शरीर में ऐसे रासायनिक द्रव्य डाले जायँ। या ऐसा इंतजाम किया जाय कि आनेवाली आत्मा जो हमारे भीतर प्रवेश करती है वह अवसर न पा सके और प्रवेश न कर पाये। यह बड़ी असहाय स्थिति है। इससे अन्यथा नहीं हो सकता क्या? लेकिन आदमी को देखकर नहीं कहा जा सकता है कि हो सकता है। दूसरी बात भी हो सकती है।

विराट आत्मा को जन्म लेने का अवसर बनाया जा सकता है

कृष्ण के इस सूत्र से वह बात दूसरी निकलती है। हम व्यक्तियों को इतना सचेतन बना सकते हैं, शरीर को बदल कर नहीं, उनकी चेतना को बदल कर कि जब कोई आत्मा उनसे निवेदन करे कि वे जन्म देनेवाले बनें तो वह इन्कार कर सके। या जरूरत हो तो जन्म दे सके। इस सम्बन्ध में मैं आपसे यह भी कहना चाहता हूँ कि हजारों वर्ष तक भारत ने इसका प्रयोग किया है। इस बात के सैकड़ों प्रमाण हैं। इस बात का प्रयोग किया गया है। इस प्रयोग की पूरी की पूरी साइंस विकसित की गयी थी। जैसे कि आपने अगर महावीर या बुद्ध का जीवन पढ़ा हो तो इस मुल्क ने एक पूरा का पूरा ड्रीम एनालिसिस, एक स्वप्न विज्ञान निर्मित किया था। फ्रायड ने तो अभी अभी स्वप्न के लक्षणों को समझना शुरू किया है, वह भी समझ अभी बहुत बालपन की है। वह अभी बहुत गहरी नहीं है।

लेकिन जैन परम्परा कहती है कि जब तीर्थंकर किसी माँ के गर्भ में प्रवेश करता है तो इस इस तरह के स्वप्न, इस इस समय पर माँ को आने शुरू होते हैं। वह इस बात की खबर है कि तीर्थंकर की कोटि की आत्मा उस माँ के गर्भ में प्रवेश करना चाहती है। वह स्वप्न सूचनाएँ हैं। उन स्वप्नों से खबर मिलती है कि कोई एक विराट आत्मा माँ के भीतर प्रवेश करना चाहती है। वे स्वप्न जो हैं सिम्बालिक मैसेजेस हैं।

और यह बड़े मजे की बात है कि जैनों के चौबीस तीर्थंकर बहुत लम्बे फासले पर हुए, अन्दाजन कम से कम दस हजार साल का फासला, कम से कम। इससे ज्यादा हो सकता है। लेकिन उनकी माताओं को आनेवाले स्वप्नों का क्रम एक हैं। वे स्वप्न सूचक हैं, वे इस बात की खबर दे रहे हैं कि इन्कार मत कर देना। क्योंकि जो व्यक्ति पैदा होनेवाला है वह तुम्हें सिर्फ मार्ग बना रहा है, लेकिन इस जगत् के लिए बहुत काम का है, उसको इन्कार मत कर देना। वह कोई साधारण आत्मा नहीं है जो तुमसे आ रही है। और बुद्ध के मामले में तो यह भी जाहिर था कि बुद्ध जिससे भी जन्म लेंगे, वह माँ जन्म देकर तत्काल मर जायेगी, जी न सकेगी। क्योंकि बुद्ध जैसे व्यक्तित्व को जन्म देना है।

हम जानते हैं, साधारण बच्चे को जन्म देने में कितनी प्रसव पीड़ा होती है, साधारण बच्चे को जन्म देने में कितनी प्रसव पीड़ा होती है, लेकिन शरीर को ही पीड़ा होती है। बुद्ध जैसे व्यक्ति को जन्म देने में तो आत्मा तक प्रसव पीड़ा का प्रवेश होता है। यह कोई छोटी घटना नहीं है। एक बहुत महान घटना, एक विराट घटना घट रही है शरीर के भीतर। यह जाहिर थी बात कि बुद्ध की माँ जन्म देने के बाद बचेगी नहीं। फिर भी बुद्ध की माँ राजी थीं क्योंकि बुद्ध जैसा व्यक्ति पैदा होता है, यह सौभाग्य छोड़ने जैसा नहीं है। और कहा जाता है, देवताओं ने बुद्ध की माँ को न मालूम कितनी तरह से राजी किया। और कहा कि इन्कार मत कर देना, क्योंकि जो व्यक्ति आ रहा है वह करोड़ों के जीवन को प्रकाशमान कर देगा। उसके लिए इतना कष्ट झेलने की तैयारी रखना।

बुद्ध को मैत्रेय रूप में अवतरित होने को गर्भ नहीं मिल रहा

बुद्ध ने घोषणा की थी कि दो हजार साल बाद मैं पुनः एक नये रूप में, मैत्रेय के रूप पृथ्वी पर उतरूँगा। दो हजार साल पूरे हो गये लेकिन मैत्रेय

को ठीक गर्भ नहीं मिल पा रहा है। इसलिए एक अड़चन खड़ी हो गयी है। इसलिए जो लोग जीवन की गहराइयों से सम्बन्धित हैं, उनकी इस वक्त सबसे बड़ी बेचैनी यही है कि कोई माँ, मैत्रेय को ग्रहण करने के लिए तैयार हो जाय। लेकिन कोई माँ पृथ्वी पर दिखायी नहीं पड़ती।

बुद्ध का वचन खाली न जाय, इसलिए और तरह के प्रयोग भी किये गये। वह भी असफल हो गये। कोई गर्भ देनेवाली माँ नहीं मिलती है तो कोशिश यह की गयी कि किसी व्यक्ति के शरीर में, जीवित व्यक्ति के शरीर में ही बुद्ध की आत्मा को प्रवेश करा दिया जाय। और एक ही शरीर से दोनों आत्माएँ काम कर लें। यह आत्मा जो मौजूद है, सिकुड़ जाय और उस आत्मा को जगह दे दे। वह प्रयोग भी सफल नहीं हो सका। कृष्णमूर्ति के साथ भी वही प्रयोग किया गया था, वह सफल नहीं हो सका। एक और गहरे तल पर गर्भ का विज्ञान सोचा, समझा और पहचाना गया था। कृष्ण उसी की बात कर रहे हैं, वह कह रहे हैं, जिस दिन धर्म से भरा हुआ होता है चित्त, उस दिन काम की वासना भी 'मैं' ही हूँ।'

भगवान् श्री, कृपया, संपूर्ण भूतों का सनातन कारण, और बुद्धिमानों की बुद्धि मेरे को ही जान, स्पष्ट कीजिए।

संपूर्ण भूतों का सनातन कारण। कारण दो तरह के होते हैं। एक तो, जिन्हें हम कारण कहते हैं। हम कहते हैं, पानी भाप बन गया। कारण, क्योंकि गर्मी मिल गयी। हम कहते हैं, आदमी मर गया क्यों, कारण? क्योंकि हृदय की धड़कन बन्द हो गयी। ये कारण नहीं हैं वस्तुतः, ये तो स्थायी, ऊपर, सतह पर घटने वाली घटनाओं का तारतम्य है। यह वैसा ही झूठ है जैसे कि कोई आदमी दो घड़ियाँ अपने घर में लगा ले।

डेविड ह्यूम, एक अंग्रेज विचारक इसकी बात हमेशा किया करता था। क्योंकि वह कार्य कारण के सिद्धान्त के बड़े खिलाफ था। वह कहता था, तुम कहते हो, पानी गर्म करने से भाप बन गया, मेरी समझ में नहीं आता। मैंने तुम्हें गर्म करते भी देखा, आग जलाते भी देखा, पानी को भाप बनते भी देखा, लेकिन मैं अभी तक यह नहीं देख पाया कि गर्म करने से पानी कब भाप बना। गर्मी देखी, आग देखी, भाप बनते देखा पानी, लेकिन पानी गर्मी से कब भाप

बना, यह मैंने देखा नहीं अभी तक। आप कहते हैं, हृदय की धड़कन बन्द हो गयी, यह आदमी मर गया। ह्यूम कहेगा कि यह भी हमने देखा कि धड़कन बन्द हो गयी और यह भी हमने देखा कि आदमी मर गया लेकिन फिर भी मैंने वह घटना नहीं देखी कि हृदय की धड़कन बन्द होने से मर गया। उन दोनों के बीच का सम्बन्ध मैंने नहीं देखा।

ह्यूम कहा करता था कि एक आदमी अपने घर में दो घड़ियाँ बना सकता है। ऐसी घड़ियाँ बना सकता है कि एक घड़ी में बारह बजे और दूसरी घड़ी में बारह का घण्टा बजे। इसमें कोई कठिनाई तो नहीं है। एक घड़ी में सात बजे, दूसरे में सात का घण्टा बजे। एक में आठ बजे और दूसरे में आठ का घण्टा बजे। फिर कोई आदमी, जो घड़ी को न जानता हो, पीछे से वह घर में आ जाय तो वह सोचेगा कि जब इस घड़ी में सात बजते हैं तो सात बजने के कारण इस घड़ी में सात का घण्टा बजता है। जब कि इनमें कोई भी सम्बन्ध नहीं है ऊपर से। हम जिनको कारण कहते हैं वह ऐसे ही ऊपर से जुड़ी हुई घटनाएँ हैं।

'मैं' हूँ सम्पूर्ण भूतों का सनातन कारण

इसलिए कृष्ण ने इतना ही नहीं कहा कि सब भूतों का कारण, कहा सनातन कारण, दी अल्टीमेट काज, आखिरी, अंतिम, अनादि। अगर हम एक एक कारण को खोजने जायँ तो जगत् में अनन्त कारण हैं, हर चीज के अनन्त कारण हैं। और एक चीज भी एक कारण से नहीं होती, मल्टी-काजल होती है, अनेक कारण से होती है। आप सड़क पर जा रहे हैं और एक कार आपसे आकर टकरा गयी, तो आप जानते हैं, कितने कारण होते हैं?

हजार कारण होते हैं। आप रास्ते पर जिस भाँति जा रहे थे, अगर घर से पत्नी से लड़कर न चले होते तो शायद इस भाँति न चल रहे होते जैसे चल रहे थे। लेकिन पत्नी आपसे न लड़ती अगर बच्चा स्कूल से घर आ गया होता। बच्चा वक्त पर स्कूल से घर आ सकता था लेकिन रास्ते में मित्र मिल गये। वह जो आदमी चलाकर आ रहा है कार और आपसे टकरा गया है, वह भी शायद न टकराता, लेकिन किसी ने उसे शराब पिला दी। मित्रों ने

आग्रह किया। मित्र आग्रह करने से नहीं बच सकते थे क्योंकि यह मित्र पहले उनको कई दफा आग्रह करके पिला चुका था। और आप पीछे हटते चले जायें तो शायद सड़क पर जो आज आपको आकर कार टकरा कर लग गयी है, इसके पीछे आपको उतने ही कारण मिल जायेंगे जितने जगत् में हो सकते हैं, सब। इस छोटी सी घटना के पीछे यह पूरा जगत् कारणों का एक जाल बिछा कर खड़ा होगा। अगर आप थोड़ा भीतर उतरते जायें, उतरते जायें तो आप घबड़ा जायेंगे और आप कहेंगे कि बस, अब खोज करनी बेकार है। यह खोज का कहीं अन्त नहीं हो सकता। यह तो कारणों का जाल है।

कृष्ण इन कारणों की बात नहीं कर रहे। वह कह रहे हैं, एक कारण, सनातन कारण। सनातन कारण का अर्थ होता है, यह सब मुझसे निकला और मुझमें लीन होगा। यह सब मुझसे आया और मुझसे वापस लौट जायेगा, सब। सनातन कारण का अर्थ होता है, मेरे बिना कुछ भी नहीं हो सकता है। अगर 'मैं' नहीं हूँ तो कुछ भी नहीं है। 'मैं' हूँ तो सब है। 'मेरे' हटते ही सब शून्य हो जायेगा। 'मेरी' नजर फिरी कि सब शून्य हो जायेगा। सब 'मेरा' खेल है। सनातन कारण का अर्थ होता है जिससे सब चीजें आती हैं और जिसमें सब चीजें वापस लौट जाती हैं। बीच में जो कारणों का जाल है उससे कोई सम्बन्ध नहीं है।

'सनातन है कारण' जान लेने से कर्त्तापन का भाव मिट जाता है

हम सब ऊपर के कारणों को देखते हैं, इसलिए मुश्किल में पड़ते हैं। अर्जुन भी ऊपर के कारण देखने वाला है। वह कह रहा है कि मैं इनको छुरा मारूँगा तो ये मर जायेंगे। कृष्ण कहते हैं, तू फिक्र मत कर, क्योंकि मैं जानता हूँ। ये मेरी वजह से जी रहे हैं और जब तक मैं जी रहा हूँ, ये कोई मर सकते नहीं। तू बेफिक्री से युद्ध कर। मैं तुझे सनातन कारण कह रहा हूँ। तेरे छुरे मारने से ये मरने वाले नहीं है और न छुरे के बचने से ये बचने वाले हैं। इनका होना और न होना 'मुझ' पर निर्भर है, मैं सनातन कारण हूँ।

अगर यह बात ठीक से समझ ली जाय कि परमात्मा सभी चीजों का सनातन कारण है, तो आप कर्त्ता बनने के मोह से गिर जायेंगे। तो वह कर्त्ता बनने का मोह फिर न रह जायेग।। आप कहेंगे ठीक है। जो हो रहा है ठीक

है, जो हो जाय ठीक है, जो न हो ठीक है। और जिस दिन आप इतनी सरलता से सब स्वीकार कर लेंगे, उस दिन आपके भीतर अहंकार को खड़े होने की कोई जगह न रह जायेगी। परमात्मा सनातन कारण है ऐसा बोध आपके कर्त्तापन को गिरा जायेगा, मिटा जायेगा, धूल में डाल जायेगा और कर्त्तापन का बोध गिर जायेगा। तो ही हम परमात्मा की दिशा में एक कदम उठते हैं। और ध्यान रहे, आलसी हम ऐसे हैं कि परमात्मा अगर कहे कि एक कदम जरा सा उठा लो, तो भी हम कदम नहीं उठाते।

जो भी अभी कर रहे हो, वह दो कौड़ी का है

सुना है मैंने, एक गाँव में एक आदमी से गाँव परेशान हो गया था। परेशान इसलिए हो गया था कि न तो वह कमाता, न कुछ पैदा करता। फिर गाँव यह भी नहीं देख सकता था कि वह भूखा मरे तो गाँव को उसे देना पड़ता था। वह अपने वृक्ष के नीचे, या अपने झोपड़े में पड़ा रहता था। वृक्ष के नीचे भी मुहल्ले के लोग उसे ले आते थे, तो वह आ जाता था। और वृक्ष के पास से, बाहर से ही उसको झोंपड़े के भीतर लोग ले जाते थे, तो चला जाता था। अगर किसी दिन पड़ोस के लोग उसको झोंपड़े के बाहर न निकालते, तो वह झोंपड़े के भीतर से ही नाराजगियाँ जाहिर करता। गाँव परेशान हो गया, और गाँव ने सोचा कि इस आदमी को कब तक ढोयेंगे ?

फिर अकाल पड़ा और गाँव ने सोचा, अब तो इसको जिन्दा या मुर्दा दफना देना चाहिए। वैसे इसके जीने से कोई फर्क भी नहीं पड़ता। और उन्होंने सोचा, क्या वह राजी होगा ? उन्होंने कहा, चलकर हम देख लें। वे गाँव के लोग उसके पास गये और उससे पूछा कि हमने यह तय किया है कि हम तुम्हें दफना दें। क्योंकि तुम्हारे होने, न होने से कोई फर्क नहीं पड़ता। एक दिन तो दफनाना ही पड़ेगा जब तुम मरोगे। लेकिन हमारे लिए तुम मरे जैसे ही हो। और तुम्हारे लिए भी जीते हुए हो, ऐसा हमारा अनुभव नहीं। क्या तुम राजी हो ? उसने कहा मैं राजी हो सकता हूँ, लेकिन मरघट तक ले कौन चलेगा ? और मुझे कोई दिक्कत नहीं। बाकी ले जाना तुम्हीं को पड़ेगा। उन्होंने कहा, हमने तो सोचा भी नहीं था कि तुम इतने जल्दी राजी हो जाओगे। उन्होंने अर्थी बनायी, उस आदमी को अर्थी पर रखा, और उसको लेकर चले, वह

आदमी अर्थी में लेट गया। थोड़े वे भी चिन्तित हुए। इतना भरोसा न था उसका।

गाँव में कोई परदेशी आया हुआ था। उसे खबर मिली कि गाँव में कोई ऐसी घटना घट रही है कि जिन्दा आदमी को लोग ले जा रहे हैं दफनाने। उसने बीच रास्ते पर आकर रोका कि भाइयों, यह क्या कर रहे हो? उन्होंने कहा, हम परेशान हो गये हैं, अब और कोई उपाय नहीं बचा। हम इसे जिन्दा ही दफनाने जा रहे हैं। हमारे पास न दाना है इसको देने को, न अनाज है। उस आदमी ने कहा रुको। अगर तुम मेरी मानो तो मैं साल भर के लिए अनाज इसको दिये देता हूँ। तुम इसे छोड़ दो। इसके पहले कि गाँव के लोग कुछ बोलते, अर्थी से आवाज आयी कि पहले बात साफ हो जानी चाहिए। अनाज साफ सुथरा है न! नहीं तो पीछे कौन झंझट करेगा। पहले कुछ निर्णय करें गाँव के लोग, अर्थी से आवाज आयी। साफ कर लेना, अनाज साफ सुथरा है या नहीं। एक और दूसरी बात कि ये लोग मुझे यहीं छोड़कर चले जायेंगे तो फिर घर कौन पहुँचायेगा।

जिस आदमी के बाबत यह कहानी है वह एक सूफी फकीर था। वह कोई साधारण आदमी नहीं था। जब उसकी अर्थी नीचे उतारी और अजनबी आदमी ने उसकी यह बात सुनी जो उसने सोचा कि आदमी तो असाधारण है, उसके दर्शन करने चाहिये। उसको देखा तो उस अजनबी ने कहा, हैरान करते हो मुझे! तो उस आदमी ने कहा, तुम थोड़ा मेरी आँखों में झाँककर समझ पा रहे हो, इसलिए मैं तुमसे राज की बात कहता हूँ। ये सारे लोग समझते हैं कि मैं आलसी हूँ। लेकिन मैं उस यात्रा पर निकल गया जो कठिनतम है। और ये सारे लोग समझते हैं कि बड़े श्रमी हैं, लेकिन ये जो भी कर रहे हैं, दो कौड़ी का कर रहे हैं। तुम सोचते होगे, मैं एक कदम घर जाने को राजी नहीं। मैं तुमसे कहता हूँ, ये भी कोई अपने असली घर जाने को एक कदम राजी नहीं। और जिस घर तुम मुझे ले जा रहे हो, वह कोई असली घर नहीं है, इसलिए मैं कब्र में जाने को राजी हूँ। क्योंकि मेरे लिए वह कब्र और वह घर बराबर है। और जिस शरीर की बचाने की तुम बात कर रहे हो, इसलिए मैंने पूछा कि अनाज साफ सुथरा है न। क्योंकि इसको बचाने, इतनी मेहनत करने की मैं कोई जरूरत नहीं समझता।

लेकिन मैं एक और घर को बचाने में लगा हूँ। और मैं तुमसे कहता हूँ कि तुम सब अलाल हो और तुम समझते हो कि मैं अलाल हूँ। और ध्यान रखो, तुम मुझे जिन्दा दफना रहे हो, जब तुम दफना दिये जाओगे, तब मैं बताऊँगा। तब तुम मुझसे मिलना। और तब मैं तुझे बताऊँगा कि असली आलसी कौन था। पता नहीं, उस गाँव के लोग समझे या नहीं समझे, लेकिन आपसे मैं कहता हूँ कि एक कदम भी हम उस दिशा में उठाने की हिम्मत नहीं करते।

सनातन हमें दिख जाय, तो हमारी उत्तेजना तत्काल शांत हो जाय

कृष्ण कह रहे हैं, सनातन हूँ 'मैं' कारण। इसीलिए कह रहे हैं कि ताकि आपको बस एक ही कदम उठाने को बाकी रह जाय। वह एक कदम के आप कर्त्ता नहीं हैं, परमात्मा कारण है। अगर आप सब छोड़ पायें उस सनातन कारण पर, लेकिन हम सनातन कारण पर नहीं छोड़ते।

किसी आदमी ने गाली दे दी, तो हम क्रोध से भर जाते हैं। जरा पैर में चोट लग गयी तो हम परेशान हो जाते हैं। अगर हम सनातन कारण को देख पायें, जो उस पत्थर के पीछे भी है, और मेरे पीछे भी है। और जो गाली देने वाले के पीछे भी है, और मेरे पीछे भी है। और जो मेरे दर्द के पीछे भी है। अगर हम उस सनातन कारण को भी देख पायें, जो सुख के पीछे भी है और दुख के पीछे भी, जन्म में भी और मृत्यु में भी, सम्मान में और अपमान में भी। अगर वह सनातन हमें दिख जाय तो हमारी उत्तेजना का जगत् तत्काल शान्त हो जाय। फिर उत्तेजना का कोई कारण नहीं है।

उत्तेजना के सब कारण तात्कालिक हैं।

जिसे अनुत्तेजना के जगत् में प्रवेश करना है, शान्ति के, उसे सनातन कारण को स्मरण कर लेना चाहिए।

जो प्रज्ञा को उपलब्ध होता है, वह फूल की तरह खिल जाता है

और कृष्ण कहते हैं, बुद्धिमानों की 'मैं' बुद्धि। बुद्धिमानों की बुद्धि। सभी बुद्धिमानों में बुद्धि नहीं होती। अधिक बुद्धिमानों में तो केवल संग्रह होता है सूचनाओं का, शास्त्रों का। जरूरी नहीं कि बुद्धिमान में बुद्धि भी हो।

एक मित्र को कल ही पत्र लिख रहा था। उसे मैंने एक कहानी लिखी है, वह मैं आपसे कहूँ। उसे मैंने लिखा है, एक सम्राट का बेटा था जो मूढ़ था और सम्राट परेशान हो गया। बुद्धिमानों से सलाह ली तो उन्होंने कहा कि यहाँ तो कोई उपाय नहीं है। दूर देश किसी और राजधानी में विश्व-विद्यालय है, वहाँ भेजो। भेज दिया गया। बरसों की शिक्षा के बाद बेटे ने खबर भेजी कि अब मैं बिल्कुल निष्णात हो गया, दीक्षित हो गया, सब शिक्षा मैंने पा ली, अब मुझे वापस लौटने की आज्ञा दे दी जाय। सम्राट ने उसे वापस बुला लिया। सम्राट भी खुश हुआ, वह सभी शास्त्रों का ज्ञाता होकर आ गया। वह ज्योतिष भी जानता है, वह भविष्यवाणी भी कर सकता है, वह लोगों के पीछे अतीत में भी देख सकता है। उन दिनों जो जो विज्ञान था वह सब जानकर आ गया। सम्राट बहुत खुश हुआ। उसने देश के सभी बुद्धिमानों को स्वागत के लिए बुलाया, अपने बेटे के स्वागत का समारोह किया। बड़े बड़े बुद्धिमान आये, एक बूढ़ा भी आया। उस बूढ़े ने उस बेटे से कई सवाल पूछे। पूछा कि तुमने क्या क्या अध्ययन किया, तो वह पाठ्य-पुस्तकों की सूची, करिक्युलम, लाया था अपने विश्वविद्यालय का। उसने निशान लगा रखे थे कि क्या क्या पढ़ा, उसने सब बताया। परीक्षा के लिए बूढ़े ने, क्योंकि उसने कहा कि मैं अदृश्य चीजों को भी देख पाता हूँ, उनका भी अन्दाज लगा पाता हूँ, उनका भी अनुमान कर पाता हूँ, बातचीत करते करते अपने हाथ का छल्ला निकाल कर अपने मुट्ठी में अन्दर कर लिया। बन्द मुट्ठी उस लड़के के सामने की और कहा कि मुझे बताओ कि इस मुट्ठी के भीतर क्या है? उस लड़के ने एक सेकण्ड आँख बन्द की और कहा कि एक ऐसी चीज है जो गोल है और जिसमें बीच में छेद है। बूढ़ा हैरान हुआ। बूढ़े ने समझा कि लड़का सचमुच ही बुद्धिमान होकर लौट आया है। सब शास्त्र उसने जान लिये। फिर भी उससे एक सवाल और पूछा कि कृपा करके चीज का नाम भी तो बताओ। तो उस युवक ने आँखें बन्द कीं, बहुत देर तक नहीं खोलीं और फिर कहा कि मैंने जो शास्त्रों का अध्ययन किया उसमें नाम बताने का कहीं भी कोई आधार नहीं मिलता। फिर भी मैं अपने कामनसेंस से, अपनी बुद्धि से कहता हूँ कि आपके हाथ में गाड़ी का चाक होना चाहिए।

वह जो बेचारा पहले बताया था, वह शास्त्र था। अब जो बता रहा है, वह खुद है। उस बुद्धिमान ने अपने मन में ही सोचा, उसने अपने मन में ही

कहा, यू कैन एजूकेट ए फूल, बट यू कैन नाट मेक ए वाइज, मूढ़ को भी शिक्षित किया जा सकता है, लेकिन बुद्धिमान नहीं बनाया जा सकता। सभी बुद्धिमानों में बुद्धि होती है, इस भ्रम में मत पड़ना। अधिक बुद्धिमानों में बुद्धि का सिर्फ धोखा होता है क्योंकि उधार होती है।

कृष्ण कहते हैं, बुद्धिमानों में बुद्धि, यह जो बुद्धि है, जिसके लिए कृष्ण जोर देते हैं, जिसे विजडम कहते हैं, प्रज्ञा। जरूरी नहीं है कि बुद्धिमान बहुत कुछ जानता हो। यह जरूरी नहीं है क्योंकि बहुत कुछ जानने वाला जरूरी रूप से बुद्धिमान नहीं होता। लेकिन बुद्धिमान जो जानता है वह उसके जीवन को एक फूल की तरह खिला जाता है। एक और इस तरह की कहानी आपसे कहूँ जो ख्याल में आ जाय।

प्रज्ञा अन्तः जागरण है, अन्तः स्फूर्ति है

एक बुद्धिमान के सम्बन्ध में बड़ी खबर थी। पिछली कहानी में विश्व-विद्यालय के युवक की परीक्षा बूढ़े ने की, इस कहानी में बूढ़े की परीक्षा दो, विश्वविद्यालय के युवक ने की है। उन्होंने सुना है कि उस आदमी के पास जाओ तो वह कुछ भी बता देता है। आपका नाम भी बता देता है, जैसे मुट्ठी में बन्द चीज को बूढ़े ने जानना चाहा था। खबर थी कि वह बूढ़ा भी बता देता है, बड़ा बुद्धिमान है। तो वे दोनों युवक एक कबूतर को अपने कोट के भीतर छिपा कर आये और उस बूढ़े के सामने आकर कहा कि क्या आप बता सकते हैं कि हमारे कोट के भीतर क्या है?

उसने कहा, मैं बता सकता हूँ। वे तैयारी करके आये थे, हाथ भीतर रखा था। उन्होंने पूछा कि क्या आप बता सकते हैं कि वह जिन्दा है या मुर्दा? उन्होंने सोचा था कि अगर वह कहे जिन्दा तो अन्दर ही गर्दन मरोड़ कर बाहर निकालना। अगर वह कहे मुर्दा तो जिन्दा बाहर निकाल देना। गर्दन पर हाथ था मजबूत। बूढ़े ने एक क्षण आँख बन्द की और कहा, इट डिपेंड्ज, उसने कहा कि यह कई बातों पर निर्भर करेगा कि वह जिन्दा है कि मुर्दा। उन्होंने कहा, क्या मतलब? उस बूढ़े ने कहा कि अगर मैं कहूँ वह जिन्दा है तो गर्दन दबायी जा सकती है। अगर मैं कहूँ, वह मुर्दा है तो उसे ऐसे ही बाहर निकाला जा सकता है। लेकिन तुम्हारी मैं फिक्र छोड़ता हूँ, कबूतर की फिक्र करता हूँ। मैं कहता हूँ, वह मुर्दा है, बाहर निकालो, क्योंकि

कबूतर न मर जाय नाहक। बूढ़े ने कहा, मेरी तुम फिक्र छोड़ो, कबूतर की फिक्र करता हूँ मैं, कहता हूँ बाहर निकालो।

यह विजडम है। यह बहुत और बात है। यह बुद्धि और बात है। यह केवल जानकारी नहीं है, यह जीवन के रहस्य का बोध है। यह केवल संग्रह नहीं है ऊपर से, यह भीतर से आया हुआ आविर्भाव है। यह अन्तः जागरण है, अन्तः स्फूर्ति है। यह कुछ ऐसा नहीं है कि कल जो मैंने जाना था उस पर निर्भर है। बल्कि आज भी मेरी चेतना जाग रही है और देख रही है, और जो कहेगी वह मैं जानूँगा। बुद्धिमान, तथाकथित बुद्धिमान, अतीत के ज्ञान पर निर्भर होते हैं। दूसरों के, खुद के नहीं। वस्तुतः बुद्धि सदा सजग वर्तमान में जीती है, अभी में, और जागरूक, जैसे दर्पण। जो सामने आ जाता है दिखायी पड़ जाता है।

कृष्ण कहते हैं बुद्धिमानों की बुद्धि 'मैं' हूँ, बुद्धिमत्ता नहीं, बुद्धिमानी नहीं, नालेज नहीं, ज्ञान नहीं, बुद्धि। इन्टेलीजेंस, इन्टलेक्ट नहीं। इन्टेलीजेंस, सिर्फ बुद्धि। हम जो जो जानकारियाँ भर लेते हैं, फर्क समझ लें, थोड़ा बारीक है।

शून्य में खड़े होकर ही सत्य का दर्शन उपलब्ध होता है

एक कमरा है आपके पास। उसमें आप फर्नीचर भर लेते हैं। कभी आपने ख्याल किया कि जितना फर्नीचर भरते चले जाते हैं, कमरा उतना छोटा होता जाता है। क्योंकि कमरे का मतलब ही जगह है। अंग्रेजी का शब्द अच्छा है, रूम। उसका मतलब होता है जगह, स्थान। तो जितना आप फर्नीचर भरते जाते हैं, कमरा कम होता चला जाता है। इसलिए बड़े आदमियों के कमरे दिखायी ही बड़े पड़ते हैं, होते हैं गरीबों से भी छोटे। चीजें तो बढ़ती जाती हैं।

मैं अभी एक अमीर के घर में ठहरा हुआ था। तो उन्होंने कमरे में इतनी चीजें भर दी हैं कि वह उसमें कैसे अन्दर आते जाते हैं, मुझे कुछ पता नहीं। मुझे उसमें प्रवेश कराने लगे, मैंने कहा, आप मुझे बाहर ही रहने दो। इतनी चीजें हैं। यह रूम तो है ही नहीं, यह तो कबाड़खाना है। जो भी आता है, खरीदकर ले आते हैं और भरते चले जाते हैं, पैसा पास है। पैसे के साथ बुद्धि जरूरी रूप से आती हो ऐसा नहीं है। तो जितने मॉडल हो सकते हैं फर्नीचर के, सब उसी कमरे में इकट्ठे हैं।

कमरे में जब आप फर्नीचर भर देते हैं तो कमरा छोटा हो जाता है। बुद्धि में जितनी आप सूचनाएँ भर देते हैं, बुद्धि छोटी हो जाती है। बुद्धि तो रूम है, बुद्धि तो एक स्पेस है, खाली जगह है।

बुद्धिमान वह है जो अपनी बुद्धि को सदा खाली और ताजी और सजग रखता है।

भर नहीं लेता सिर्फ, भरकर तो सब बासा हो जाता है। कुछ नहीं भरता, खाली रखता है, ताजी रखता है, खुली रखता है। सूचनाएँ जितनी इकट्ठी हो जाती हैं भीतर, उतनी ही बुद्धि की कम जरूरत पड़ने लगती है। क्योंकि आप सूचनाओं से ही काम चला लेते हैं।

कृष्ण कहते हैं, बुद्धिमानों में 'मैं' बुद्धि हूँ। वह खाली जगह है, वह स्पेस है। उपनिषदों में जिसे इनर स्पेस आफ द हार्ट कहा है, हृदय की अन्तर्जगह, अन्तर्गुहा कहा है। हृदय में एक जगह है, जो बिल्कुल खाली है। और जो व्यक्ति उस खाली जगह में खड़ा हो जाय, वह परमात्मा के मंदिर में प्रवेश कर जाता है। तो यहाँ बुद्धि से मतलब इन्टेलेक्ट का नहीं है, यहाँ बुद्धि से मतलब चालाकी का नहीं है, यहाँ बुद्धि का मतलब दो और दो चार, जोड़ लेने का नहीं है। यहाँ बुद्धि से मतलब है उस भीतर के अन्तर आकाश में खड़े हो जाने का जो बिल्कुल खाली है, शून्य है। उस शून्य में जो खड़ा है, वही बुद्धिमान है। क्योंकि उस शून्य में खड़े होकर ही सत्य का दर्शन उपलब्ध होता है। कृष्ण कहते हैं, बुद्धिमानों में 'मैं' बुद्धि हूँ।

भगवान् श्री, कल आपने दिव्य व्यक्तित्व में, अर्थात् योगी में 'मैं' तेजस् हूँ, इसकी चर्चा की। पिछले श्लोक में कहे गये, 'मैं' तपस्वियों में तप हूँ, इसका भी अर्थ स्पष्ट करने की कृपा करें।

'मैं तपस्वियों में तप हूँ' तपश्चर्या नहीं। शब्द तो दोनों एक से हैं। लेकिन तपश्चर्या का जोर होता है कृत्य पर, एक्ट पर। और तप का जोर होता है आंतरिक उपलब्धि पर।

तपश्चर्या का अर्थ है आंतरिक उपलब्धि

एक तपस्वी है, तपश्चर्या कर रहा है। जो वह तपश्चर्या करता है वह तो बाहरी कृत्य है। वह तो बाह्य कृत्य है, कि उपवास करता है, कि प्राणायाम

करता है, कि आसन करता है, कि धूप में खड़ा होता है, कि शीत में खड़ा होता है। वह तो बाहरी कृत्य है, एक्ट है। और यह भी तो हो सकता है कि वह यह सब करता रहे और भीतर कोई भी तप फलित न हो। क्योंकि यह कोई अज्ञानी भी कर सकता है, कोई अहंकारी भी कर सकता है, कोई एक्जीबिशनिस्ट, जिसको प्रदर्शन का शौक है, वह भी कर सकता है। और अगर आप अपने तपश्चर्या करने वाले लोगों में खोजबीन करने जायें तो सौ में से नब्बे एक्जीबिशनिस्ट मिलेंगे, जो अपने प्रदर्शन को उत्सुक हैं। और जब भी प्रदर्शन करना हो तो इस तरह के काम बहुत अच्छे होते हैं।

मुझे प्रसिद्ध होना है

रॉबर्ट रिप्ले ने एक घटना लिखी है। रिप्ले एक युवक था और प्रसिद्ध होना चाहता था। लेकिन प्रसिद्ध होने के लिए उसके पास कोई सीढ़ी न थी। न तो वह किसी मिनिस्टर का रिश्तेदार था, न किसी धनी का भाई भतीजा था, न किसी यूनिवर्सिटी में प्रवेश के लिए पैसे थे उसके पास। उसके पास कुछ भी नहीं था, लेकिन प्रसिद्ध होना था।

तो उसने गाँव के एक बहुत कुशल विज्ञापनदाता से जाकर पूछा कि मुझे प्रसिद्ध होना है, मैं क्या करूँ? कोई ऐसी सरल तरकीब बताओ, क्योंकि मेरे पास कोई सहारा नहीं है, कोई सीढ़ी नहीं है, जिससे सीधा प्रसिद्ध हो जाऊँ। उसने कहा, इसमें कौन सी बड़ी बात है। तू इधर आ, मेरे पास आ। वह अन्दर गया और एक उस्तरा उठाकर लाया, उसने रिप्ले की खोपड़ी के आधे बाल छांट दिये, आधे बाल अलग कर दिये। रिप्ले ने कहा, यह आप क्या कर रहे हैं? उसने कहा, तू घबड़ा मत। दो दिन में तुझे प्रसिद्ध किये देता हूँ। उसने कहा, लेकिन आप कर क्या रहे हैं? आधे बाल उसने साफ कर दिये और आधी खोपड़ी पर लिख दिया रॉबर्ट रिप्ले। फिर कहा, तू जा पूरे गाँव में घूम आ। पर उसने कहा, इसमें बड़ा डर लगता है। उसने कहा, डर मत। अगर तू इतना भी नहीं कर सकता, तो फिर अब मैं क्या करूँ? तुझे मैं मिनिस्टर का भतीजा नहीं बना सकता। किसी धनपति से अचानक तेरा रिश्ता जुड़वा नहीं सकता, यूनिवर्सिटी में दाखिल मैं करवा नहीं सकता। पर तू मेरी मान।

रिप्ले ने लिखा है कि पहले तो बड़ी हिम्मत जुटायी, फिर किसी तरह निकला। लेकिन सच, दो दिन में सब अखबारों में मेरे फोटो छप गये। और जहाँ से निकल जाता वहाँ से लोग काम धन्धा बन्द करके बाहर आ जाते। और दो दिन में पूरे गाँव में लोग मुझे जान गये। न केवल गाँव में, गाँव के बाहर खबरें पहुँचने लगीं, राजधानी तक खबरें पहुँचने लगीं। और कुछ मैंने किया नहीं था, सिर्फ बाल काट लिये थे। रिप्ले ने कहा, फिर तो ट्रिक मेरे हाथ लग गयी। फिर तो मैं जिन्दगी भर ऐसे काम करता रहा। उसने पूरे अमरीका की यात्रा उल्टे चलकर की। सारी दुनिया में खबर हुई और कहा गया कि इतिहास का पहला मनुष्य जिसने अमरीका की यात्रा उल्टे चलकर की। एक आईना बाँध लिया सामने और चल पड़ा। जुलूस चलता था साथ में। रिप्ले ने लिखा है, लेकिन मेरी जिन्दगी बेकार गयी, भीड़ को इकट्ठा करने में गयी। एक्जीबीशनिस्ट माइण्ड था। प्रदर्शनकारी मन था। तपश्चर्या बहुत कुछ तो प्रदर्शन होती है।

तप का अर्थ है, जो सुख को सुख नहीं मानता

अगर आप किसी तपस्वी की बहुत पूजा वगैरह करते हों, तो जरा पूजा वगैरह पंद्रह दिन के लिए होलीडे पर छोड़ दें, बन्द कर दें, पंद्रह दिन में तपस्वी भाग जायेगा। फिर उसे दिखेगा कोई पूछता नहीं, कोई फिक्र नहीं करता, कोई पैर नहीं दबाता, कोई फूल नहीं चढ़ाता, कोई कुछ नहीं करता, अब क्या मतलब है। भागो इस गाँव से, कहीं और जाओ।

तपश्चर्या तो अहंकार की तृप्ति भी हो सकती है। तप क्या है? तप तो सारभूत है। कृत्य नहीं है, आत्मा है। तप का अर्थ है जब कोई व्यक्ति दुख को दुख नहीं मानता। और ध्यान रखना, दुख को दुख न मानना बहुत बड़ा तप नहीं है। दूसरी बात आपसे कहता हूँ, जब कोई व्यक्ति सुख को सुख नहीं मानता। दुख को दुख न मानना बहुत बड़ी बात नहीं है क्योंकि हम सभी चाहते हैं कि दुख न हो।

लेकिन सुख को जो सुख नहीं मानता, दुख को दुख नहीं मानता, सम्मान को सम्मान नहीं मानता, अपमान को अपमान नहीं मानता, जीवन को जीवन नहीं मानता, मृत्यु को मृत्यु नहीं मानता, तब उसके भीतर एक नये जीवन का संचार शुरू होता है। उसके भीतर तप नाम का तत्त्व पैदा होता है।

उसके भीतर क्रिस्टलाइजेशन होता है। गुरजिएफ ने जो शब्द प्रयोग किया है, वह है क्रिस्टलाइजेशन, कि क्रिस्टल बन जाता है, उसके भीतर एक।

तप का ठीक अर्थ यही है। तप का अर्थ है, वह व्यक्ति पहली दफे भीतर आत्मवान बनता है। जब तक दुख आपको हिला देता है, आप दुख से कमजोर हैं, सुख हिला देता है, सुख से कमजोर हैं। कोई एक फूल की माला गले में डाल देता है और आप कँप जाते हैं, तो आप फूल की माला से कम कीमती हैं। आपकी कीमत बहुत ज्यादा नहीं है।

आपकी जिन्दगी की असली कीमत कितनी है

मैंने सुना है, एक करोड़पति एक तालाब में गिर गया था। अनेक लोग खड़े होकर देख रहे थे। एक अजनबी आदमी भी भीड़ में था, चिल्लाया, कि तुम लोग खड़े होकर क्यों देख रहे हो। आदमी मर रहा था, उसे कुछ पता नहीं था कि वह आदमी कौन है, वह बेचारा कूद पड़ा। उस करोड़पति को बड़ी मुश्किल से, अपनी जान को जोखिम में डालकर, बचाकर बाहर लाया। जब वह होश में आया धनपति तो उसने कहा, बहुत बहुत धन्यवाद। खीसे में उसने हाथ डालकर कुछ खोजा, एक नया पैसा निकालकर उस आदमी को भेंट किया। सारी भीड़ चिल्लाने लगी कि इसीलिए तो हममें से कोई कूदकर नहीं बचा रहा था। एक नया पैसा, उस आदमी ने अपनी जिन्दगी, जान लगा दी, जोखम में डाला अपने को और यह एक नया पैसा उसको इनाम दे रहा है।

एक और आदमी, एक फकीर इस बीच उस भीड़ के पास आकर खड़ा हो गया था। उसने कहा, नाराज मत होओ। नो वन नोज़ ध वेल्यु आफ हिज लाइफ मोर धेन हिमसेल्फ, उसकी जिन्दगी की कीमत उसके सिवाय और किसको ज्यादा मालूम नहीं हो सकती है। वह बिल्कुल ठीक दे रहा है, एक नया पैसा। वह अपनी जिन्दगी की कीमत ही चुका रहा है। और किसी की जिन्दगी का कोई सवाल नहीं है। अगर मर जाता तो एक नये पैसे का नुकसान हो रहा था दुनिया का, और तो कोई खास नुकसान नहीं था। उस फकीर ने कहा, नाराज मत होओ, उसके सिवाय कोई भी नहीं जानता कि उसकी जिन्दगी की असली कीमत कितनी है। वह ठीक आँक रहा है। असल में, हमारे भीतर हमारी कोई कीमत ही क्या है? असल में हम ही कहाँ हैं, बीइंग कहाँ है, हमारे भीतर आत्मा जैसी चीज कहाँ है?

गुरजिएफ जब कहता है क्रिस्टलाइज, उसका मतलब यह है कि भीतर कुछ पैदा हुआ। और वह पैदा तभी होता है जब सुख और दुख की संवेदनाएँ छूती नहीं। वह पैदा तभी होता है, जब अनुकूल प्रतिकूल बराबर हो जाता है। वह पैदा तभी होता है, जब द्वन्द्वों के बीच में थिरता और समता आती है।

तू कहीं से भी अदृश्य में उतर जा

समत्व ही तप है।

कठिन है। तपश्चर्या बहुत आसान है। तप बहुत कठिन है।

कृष्ण कहते हैं, 'तपस्वियों में तप'। वह अनेक अनेक मार्गों से खबर दे रहे रहे हैं कि 'मुझे' तू कहीं से भी पहचान, और कहीं से भी खोज, बहुत हैं द्वार 'मेरे', बहुत हैं मार्ग। लेकिन तू कहीं से भी दृश्य को छोड़कर अदृश्य में उतर।

तपश्चर्या दृश्य है, तप अदृश्य है।

अगर तू कहीं से भी दृश्य को छोड़कर अदृश्य में उतर सके। अगर कहीं से भी रूप को छोड़कर अरूप में, आकार को छोड़कर निराकार में, व्यर्थ को छोड़कर सारभूत में, अगर तू जा सके, कहीं से भी, तो सब तरफ से वे बात कर रहे हैं। वह कह रहे हैं, कहीं से भी तेरी समझ में आ जाय। फिर धेर आर मूवमेण्ट, कुछ क्षण होते हैं जीवन में, जब समझ पकड़ में आती है। सद्गुरु जो है, उसे निरन्तर ख्याल रखना पड़ता है क्योंकि कभी कभी ऐसा क्षण आता है।

हमारा चित्त फ्लक्चुएशन में है, हमारा चित्त कभी एक जगह नहीं है। कभी नीचे खाई छूता है, कभी ऊपर शिखर छू लेता है। हमारा चित्त पूरे वक्त ऊपर नीचे हो रहा है। हमारा चित्त कभी एकतल में नहीं है। सुबह हम नर्क में होते हैं, साँझ हम स्वर्ग में हो जाते हैं। घड़ी भर पहले हम रोते हैं, घड़ी भर बाद हँसी के फूल खिल जाते हैं। हमारा चित्त पूरे वक्त नीचे-ऊँचे हो रहा है।

'मैं' जानता हूँ, तुम कब सुन पाओगे

कृष्ण जैसे व्यक्ति को स्मरण रखना पड़ता है। बहुत बार वही वही बात कहनी पड़ती है, अलग अलग रूपों में। पता नहीं अर्जुन का चित्त कब पीक पर हो, कब शिखर पर हो। और जब वह शिखर पर हो तभी बात छुएगी। जब वह नीचे घाटी में होगा तब कोई बात छुयेगी नहीं, बात ऊपर से निकल जायेगी। इसलिए बहुत पुनरुक्ति भी करनी पड़ती है। अनेक लोग गीता के इस हिस्से को पढ़ते हैं तो वह सोचते हैं कि यह कृष्ण क्या कहे चले जा रहे हैं। यह एक दो दफे कह देना काफी था। यह बार बार क्या कह रहे हैं कि 'मैं' इसमें यह और उसमें वह। एक दफा कह देते कि 'मैं' सनातन कारण हूँ, बात पूरी हो गयी। यह क्यों बार बार कहे चले जा रहे हैं?

यह बार बार इसलिए कहे चले जा रहे हैं कि पता नहीं वह क्षण अर्जुन के मन का कब हो जब प्रवेश मिल जाय। द्वार सदा बन्द होते हैं। कभी खुले होते हैं और जब खुले होते हैं, तब प्रवेश हो जाता है। कब खुले होते हैं, कहना कठिन है, एकदम कठिन है। इसलिए पुराने गुरू अपने शिष्यों को सदा पास रखने की कोशिश करते थे, कि पता नहीं कब, किस क्षण में द्वार खुला हो।

एक सूफी फकीर बाइजीद तो कभी दिन में शिक्षा ही नहीं देता था। रात जब सब शिष्य सो जाते तब वह घूमता रहता। शिष्यों से पास आकर उनकी हृदय की धड़कने सुनता। शायद उनके सपनों में झांकता। शायद उनके विचारों की पर्तों में उतरता। और जब कभी पाता, कोई शिष्य उस गहराई में है या उस ऊँचाई में, जहाँ बात प्रवेश कर सकती है तो तत्काल उसे उठा लेता और कहता सुन और सुनाना शुरू कर देता। उसके शिष्य कई बार कहते भी उससे कि आप भी क्या पागलपन करते हैं, हम दिन भर बैठे रहते हैं तुम्हारे पास। और यह क्या हिसाब आपने निकाला है कि कभी रात दो बजे उठा लिया, कभी रात तीन बजे उठा लिया।

तो बाइजीद कहता कि मैं जानता हूँ कि कब तुम सुन पाओगे? तुम जब बैठे होते हो तो जरूरी नहीं कि तुम वहाँ मौजूद भी हो। तुम जब मुझे देखते हो तब जरूरी नहीं कि तुम भीतर भी मुझे ही देख रहे हो, किसी और को देखते होगे। तुम्हारे कान जब मेरी तरफ लगे होते हैं तब जरूरी नहीं कि तुम

मुझे सुनो। तुम न मालूम क्या सुन रहे होगे। मैं उस क्षण की तलाश में होता हूँ जब मैं पाऊँ कि हाँ, ठीक वह जगह तुम हो, जहाँ मेरी बात तुम तक पहुँच पायेगी।

कृष्ण की हवा चारों ओर घूम रही है

एक तो रास्ता यह है जो बाइजीद का है, दूसरा रास्ता कृष्ण का है। युद्ध के मैदान पर इसका तो कोई उपाय नहीं था जो बाइजीद ने किया। तो कृष्ण बहुत बार, बहुत बार, वही वही बात, अलग अलग ढंग से अलग अलग मार्ग से कहे चले जाते हैं। इस आशा में कि कहीं से द्वार खुला मिल जाय। बायें नहीं मिलता हवा को मार्ग, चलो दायें घूमें। दायें न मिले तो और कहीं घूमें। आगे से नहीं मिलता तो पीछे के द्वार से मिल जाय।

कृष्ण की हवा अर्जुन के घर के चारों तरफ घूम रही है कि कहीं कोई द्वार, कहीं कोई खिड़की, कहीं कोई रन्ध्र भी मिल जाय तो प्रवेश कर जाय।

भजन है योग

पांचवां प्रवचन

गीता-ज्ञान-यज्ञ, बम्बई, रात्रि दिनांक २६ मई, १९७१

ये चैव सात्त्विका भावा राजसास्तामसाश्च ये ।
मत्त एवेति तान्विद्धि न त्वहं तेषु ते मयि ॥१२॥

और भी जो सत्व गुण से उत्पन्न होनेवाले भाव हैं और जो रजोगुण से तथा तमोगुण से होनेवाले भाव हैं उन सबको तू मेरे से ही होने हैं ऐसा जान, परन्तु वास्तव में उनमें मैं और वे मेरे में नहीं हैं।

प्रकृति परमात्मा में है, लेकिन परमात्मा प्रकृति में नहीं है। यह विरोधाभासी, पैराडाक्सिकल सा दिखने वाला वक्तव्य, अति गहन है। इसके अर्थ को ठीक से समझ लेना उपयोगी है।

परमात्मा के भीतर ही सब कुछ घटित होता है

कृष्ण कहते हैं, सत्व, रज, तम, तीनों गुणों से बनी जो प्रकृति है, वह मुझमें है, लेकिन मैं उसमें नहीं हूँ।

ऐसा करें, कि एक बड़ा वर्तुल खींचें अपने मन में, बड़ा सर्किल। उसमें एक छोटा वर्तुल भी खींचें। एक बड़ा वर्तुल खींचें, और उसके भीतर एक छोटा वर्तुल खींचें, तो छोटा वर्तुल तो बड़े वर्तुल में होगा, लेकिन बड़ा वर्तुल छोटे वर्तुल में नहीं होगा। प्रकृति तो हमें दिखायी पड़ती है कि असीम है, बहुत विराट, ओर छोर का कुछ पता नहीं चलता, लेकिन परमात्मा के ख्याल से प्रकृति न कुछ है। बहुत छोटा वर्तुल है, बहुत सीमित घटना है। ऐसी अनन्त प्रकृतियाँ परमात्मा में हो सकती हैं, होतीं हैं, बनती हैं, बिखर जाती हैं।

परमात्मा के भीतर ही सब कुछ घटित होता है। इसलिए यह ठीक है कहना, सब कुछ मुझमें है लेकिन मैं उस सब कुछ में नहीं हूँ।

विराट क्षुद्र में नहीं होता, क्षुद्र तो विराट में होता ही है।

लहर सागर में होती है तो सागर कह सकता है कि सब लहरें मुझमें हैं लेकिन मैं लहरों में नहीं हूँ। क्योंकि लहर न रहें तो भी सागर रहेगा, लेकिन सागर न रहे तो लहरें न बचेंगी। हम सोचते हैं सागर का होना बिना लहरों के, लेकिन लहरों का होना नहीं सोच सकते बिना सागर के। लहरें सागर में ही उठती हैं, सागर में ही होती हैं, फिर भी इतनी छोटी हैं, उस सागर में उठकर भी सागर को घेर नहीं पातीं। घेर भी नहीं सकती हैं। इस वक्तव्य को देने के कुछ कारण हैं। और साधक के लिए बहुत अनिवार्य है।

सारी प्रकृति मुझमें है, लेकिन मैं प्रकृति में नही हूँ

कृष्ण जब कहते हैं, यह सारी प्रकृति मुझमें है, फिर भी मैं इस प्रकृति में नहीं हूँ तो दो बातें ध्यान में रख लेने जैसी हैं। एक तो यह, कि जो परमात्मा में प्रवेश कर जाय उसमें प्रकृति होगी लेकिन जो प्रकृति में ही खड़ा रहे उसमें परमात्मा नहीं होगा। जैसे कि कृष्ण को भी भूख लगती है और कृष्ण को भी नींद आती है और कृष्ण के भी पैर में चोट लगती है तो दर्द और पीड़ा होती है। कृष्ण की मृत्यु हुई पैर में तीर लगने से। प्रकृति अपना पूरा काम करती है, कृष्ण में भी, महावीर में भी, बुद्ध में भी, जीसस में भी। जब जीसस को शूली पर लटकाया गया तो प्रकृति ने पूरा काम किया।

हम में भी प्रकृति काम करती है। हम भी खाना खाते हैं, हमारे पैर में भी दर्द होता है, पीड़ा होती है। हमें भी कोई शूली पर लटका दे तो हम भी मर जायेंगे। लेकिन हमारा शूली पर लटकना और क्राइस्ट के शूली पर लटकने में बुनियादी फर्क होगा। क्योंकि जब क्राइस्ट से प्रकृति छूट रही होगी, तब क्राइस्ट परमात्मा में प्रवेश कर रहे होंगे। और जब हमसे प्रकृति छूट रही होगी तो हम कहीं प्रवेश नहीं कर रहे होंगे, सिर्फ प्रकृति छूट रही होगी। इसलिए तो मरते समय हम इतने पीड़ित और परेशान हो जाते हैं। क्योंकि प्रकृति के अतिरिक्त हमने कुछ और जाना नहीं। और जब शरीर छूटता है तो प्रकृति छूट रही है, अब हम मरे, अब हम मिटे।

जब क्राइस्ट की प्रकृति छूट रही है, वह छोटा वर्तुल छूट रहा है तो क्राइस्ट भयभीत नहीं है, आनन्दित हैं क्योंकि बड़े वर्तुल में प्रवेश कर रहे हैं। लहर मिट रही है और सागर में प्रवेश हो रहा है। जब हमारी लहर मिटती है तो सिर्फ लहर मिटती है, सागर का हमें कुछ पता नहीं। सागर में कुछ प्रवेश नहीं होता। जब आपको भूख लगती है तो आपको भूख लगती है। जब कृष्ण को भूख लगती है तो प्रकृति को भूख लगती है। और जब आपके पैर में पीड़ा होती है तो आपको पीड़ा होती है। और जब कृष्ण के पैर में पीड़ा होती है तो प्रकृति को पीड़ा होती है। कृष्ण तो साक्षी ही होते हैं।

जिस व्यक्ति ने परमात्मा को जाना, वह प्रकृति का साक्षी मात्र रह जाता है। छोटा वर्तुल उसे दिखायी पड़ता है लेकिन वह स्वयं बड़े वर्तुल के साथ एक हो जाता है। लेकिन जिसने परमात्मा को नहीं जाना उसे तो छोटा वर्तुल ही सब कुछ दिखायी पड़ता है। उसके पार कुछ भी नहीं है। और जो हमारा ध्यान प्रकृति में अतिशय लग जाता है तो अतिशय लग जाने के कारण ही परमात्मा की तरफ ध्यान जाना मुश्किल हो जाता है।

हम ऊपर देखते ही नहीं

१८८० में यूरोप में अल्तामिरा की गुफाएँ खोजी गयीं और उन गुफाओं की खोज के वक्त एक बहुत मजेदार घटना घटी। एक बहुत बड़े जमींदार डान मार्शिलानो की जमीन पर अचानक पहाड़ियों में ये गुफाएँ मिल गयीं। एक कुत्ता भूल से गुफा के भीतर कूद गया। वर्षा में कुछ मिट्टी गलकर गिर गयीं, गड्ढा हो गया और कुत्ता उसके अन्दर चला गया, फिर निकल न पाया। वहाँ उसने बहुत शोरगुल मचाया। तब मार्शिलानो के किसान, मजदूर जाकर किसी तरह खोदकर कुत्ते को निकाले। कुत्ता तो निकल आया, साथ में गुफाओं का आविष्कार हो गया। बड़ी गहरी और बड़ी अद्भुत गुफाएँ थीं। मनुष्य के पूरे इतिहास की दृष्टि उन गुफाओं ने बदल दी।

मार्शिलानो को पता चला, तो वह इतिहास का विद्यार्थी था, उसने तत्काल सब इन्तजाम किया। विशेषकर वह मनुष्य की हड्डियों का अध्ययन कर रहा था वर्षों से। तो उसने सोचा कि ये गुफाएँ न मालूम कितनी पुरानी होंगी, इसमें कीमती हड्डियाँ मिल सकती हैं, और किसानों ने खबर दीं कि बहुत अस्थिपंजर है। तो मार्शिलानो ने सर्चलाइट लेकर गुफाओं को खुदवाया और

उनमें प्रवेश किया। छः दिन तक रोज वह सरक कर गुफाओं में जाता, एक एक हड्डी पर नजर रखता, हड्डियाँ खोजीं उसने बहुत। सातवें दिन उसको छोटी लड़की ने, सात-आठ साल की लड़की थी। उसने कहा, मैं भी अन्दर चलता चाहती हूँ। वह लड़की को ले गया।

आप जानकर हैरान होंगे कि अल्तामिरा की असली गुफाएँ उस लड़की ने खोजीं, उस सात साल की लड़की ने। सर्चलाइट लेकर वह जो इतिहासज्ञ पिता था, वह नहीं खोज पाया। बड़ी अद्‌भुत घटना घटी। जब वह लड़की को लेकर गया तो वह सरक कर अपनी हड्डियों की जाँच पड़ताल में लग गया जमीन में, एक हड्डी भी चूक न जाय, सर्चलाइट पास था। अचानक लड़की चिल्लाई, पिताजी, पिताजी, ऊपर देखिये। छः दिन से जा रहा था वह रोज, लेकिन ऊपर आँख ही नहीं उठायी थी। वह नीचे हड्डियाँ बीनने में इतना व्यस्त था कि गुफाओं के ऊपर सीलिंग पर क्या है, उसने नजर न डाली थी। सीलिंग पर तो इतने अद्‌भुत चित्र थे, जैसे कल रंगे गये हों। और ठेठ बीस हजार साल पुराने चित्र निकले।

अल्तामिरा की गुफाएँ सारे जगत् में प्रसिद्ध हो गयीं उन चित्रों के कारण। इतने अद्‌भुत चित्र थे कि जिसने भी उसे बनाया होगा, पिकासो से कम सामर्थ्य का चित्रकार नहीं था। तो सारा इतिहास बदलना पड़ा। क्योंकि ख्याल था कि पुराने जमाने में तो किसी आदमी के पास इतनी कला नहीं हो सकती। लेकिन पाया यह गया कि वह जो अल्तामिरा की गुफाओं पर, जानवरों के जो चित्र हैं, साँड़ के चित्र हैं, वे इतने कलात्मक हैं और इतने अद्‌भुत हैं कि आज भी कोई चित्रकार उनका मुकाबला नहीं कर सकता। हैरान हुआ मार्शिलानो, कि वह छः दिन से रोज सर्चलाइट लेकर आ रहा था लेकिन सर्चलाइट उसका जमीन पर लगा था। वह हड्डियाँ खोज रहा था कि कोई हड्डी चूक न जाय। तो ऊपर नजर नहीं गयी।

यह मैं इसलिए कह रहा हूँ कि हम सब भी जब तक प्रकृति में हड्डियाँ खोजते रहते हैं, बड़ा सर्चलाइट हमारे पास है। लेकिन ऊपर सीलिंग की तरफ नहीं उठ पाता, वह परमात्मा की तरफ नहीं उठ पाता। टु मच ऑक्युपाइड, जमीन पर सरकने में। और प्रकृति में खोज करने में हड्डियों की खोज है, कुछ और बहुत खोज नहीं है। जब आप कामवासना में खोज रहे हैं, तो हड्डियों से ज्यादा कुछ भी नहीं खोज रहे हैं। और जब आप सिंहासनों पर चढ़ने में

खोज रहे हैं तब भी हड्डियों से ज्यादा कुछ भी नहीं खोज रहे हैं। हड्डियों को ही चढ़ा रहे हैं सिंहासनों पर। जब आप धन खोज रहे हैं, तो सिर्फ हड्डियों की सुरक्षा खोज रहे हैं, और कुछ भी नहीं खोज रहे हैं। जब आप शक्ति खोज रहे हैं, तो हड्डियों के लिए केवल इन्तजाम कर रहे हैं सिक्योरिटी का, और कुछ भी नहीं कर रहे हैं।

प्रकृति में उलझा हुआ मन, ऊपर की तरफ नहीं उठ पाता

प्रकृति में उलझा हुआ मन ऊपर की तरफ नहीं उठ पाता। उसे नहीं देख पाता, वह जो वृहत् वर्तुल है, वह जो ग्रेटर सर्कल है। जिसकी कृष्ण बात कर रहे हैं, मुझमें है प्रकृति, लेकिन मैं प्रकृति में नहीं हूँ। उस तरफ नजर नहीं उठ पाती।

तो जो प्रकृति में उलझा हुआ है वह कृष्ण के वचन को ठीक से समझ ले, क्योंकि इस बात की भ्रांति है कि अगर कृष्ण यह कहते कि मैं प्रकृति में हूँ और प्रकृति मुझमें है, तो भी गलत नहीं था। क्योंकि छोटा वर्तुल अगर बड़े वर्तुल में है, तो बड़ा वर्तुल भी किसी न किसी अर्थ में छोटे वर्तुल में है। अगर लहर सागर में है, तो सागर कितने ही क्षुद्रतम अर्थों में लहर के भीतर है। तो तर्क किया जा सकता है। क्योंकि यह असंभव है कि बड़ा वर्तुल छोटे वर्तुल में न हो, तो छोटा वर्तुल बड़े वर्तुल में कैसे हो सकेगा। माना कि पूरा बड़ा वर्तुल छोटे वर्तुल में नहीं हो सकेगा, अंश ही होगा, लेकिन होगा तो ही।

लेकिन कृष्ण उस तर्क को मद्दे नजर कर रहे हैं जानकर। क्योंकि एक बार आदमी को यह पता चल जाय और यह ख्याल में आ जाय कि प्रकृति में परमात्मा है और परमात्मा में प्रकृति है, तो शायद हम प्रकृति से ऊपर नजर उठाने को कभी राजी न हों। कभी राजी न हों, क्योंकि हम कहें कि जब प्रकृति में ही परमात्मा है, खाने पीने में, कपड़े पहनने में, मकान बनाने में, तो फिर और परमात्मा की खोज की जरूरत क्या है? जब इस शरीर में ही परमात्मा है तो फिर शरीर ही परमात्मा हो जायेगा। हम तत्काल इस बात को अपने मतलब की तरफ झुका लेंगे। और आदमी बड़ा कुशल है, वह सब चीजों के अर्थ अपनी तरफ झुका लेता है। क्योंकि दो ही रास्ते हैं, या तो अर्थ की तरफ आप झुकिये, या तो सत्य की तरफ आप झुकिये, या तो सत्य को अपनी तरफ झुका लीजिये। अन्यथा बेचैनी अनुभव होगी।

जिस दिन कोई जानेगा बड़े वर्तुल को, परमात्मा को, उस दिन शायद वह यह भी जान ही लेगा कि प्रकृति भी उसमें ही है, वह भी प्रकृति में है। लेकिन हमसे यह कहना, यह सत्य कहना खतरनाक है। कहना इसलिए खतरनाक है कि अगर हमें यह बात पक्की हो जाय कि हम जो कर रहे हैं उसमें भी परमात्मा है, तो फिर शायद परमात्मा की तरफ नजर उठाने का ख्याल ही मिट जाय। जरूरत भी नहीं रह जाती। इसलिए कृष्ण बहुत सोच विचार कर कहते हैं, प्रकृति मुझमें है अर्जुन, लेकिन मैं प्रकृति में नहीं हूँ। तो तू प्रकृति में कितना ही खोजता रहेगा, मुझे न पा सकेगा। हाँ, मुझे पा ले तो प्रकृति पायी ही हुई है। यह भी बहुत मजे की बात है।

परमात्मा को कोई खोज ले, तो सारी दरिद्रता मिट जाती है

कोई आदमी कितना ही धन खोजे, धनी नहीं हो पाता, लेकिन कोई आदमी परमात्मा खोज ले तो दरिद्रता भी धन हो जाती है।

जीसस का वचन है—सीक इज फर्स्ट द किंगडम आफ गॉड, देन आल एल्स विल बी एडेड अन टु यू। खोज लो पहले प्रभु के राज्य को और फिर सब, सब साथ में मिल जायेगा।

लेकिन हम सबको खोजने चलते हैं, प्रभु को छोड़कर। तब प्रभु तो मिलता ही नहीं, सबमें से भी कुछ नहीं मिलता है, सिर्फ दौड़ धूप और आखिर में राख हाथ में लगती है। सपनों की राख, आशाओं की राख। यश कोई कितना ही खोजे, यश हाथ लगेगा नहीं। और कोई परमात्मा को खोज ले तो यशस्वी हो जाता है, तत्क्षण। कोई कितना ही खोजे प्रेम, प्रेम मिलेगा नहीं। और कोई प्रार्थना को खोज ले, तो जीवन प्रेम की सुगन्ध से भर जाता है। ऐसी सुगन्ध से, जो फिर कभी चुकती नहीं।

हम कुछ भी खोजें प्रकृति में, हमारे हाथ कुछ लगेगा नहीं। मिट्टी पत्थर ही लगेंगे। यद्यपि प्रत्येक मिट्टी पत्थर के भीतर परमात्मा छिपा है। लेकिन जो प्रकृति में खोजने चला है, वह परमात्मा के प्रति अन्धा होता है। वह नैरोड है, उनकी कांसेसनेस तो उसकी हड्डियों में अटकी रहती है नीचे। वह ऊपर की तरफ नहीं उठ पाता है। कितनी निकट थी वे अल्तामिरा की चित्रावलियाँ, जरा सा तो सर्चलाइट ऊपर उठाना था, सर्चलाइट हाथ में था, जरा

आँख तो ऊपर करनी थी। लेकिन जो नीचे खोजने में लगा है उसकी आँख ऊपर नहीं उठ पाती।

इसलिए कृष्ण कहते हैं, सत्व, रज, तम, सब मुझमें है अर्जुन, लेकिन मैं उनमें नहीं हूँ। बड़ी मजेदार बात है। अगर कोई आदमी परमात्मा के बिना सात्विक भी हो जाय, तो भी धार्मिक नहीं हो सकता। अगर कोई व्यक्ति परमात्मा के बिना सात्विक हो जाय, परम सात्विक हो जाय, तो भी धार्मिक नहीं हो सकता। और कोई व्यक्ति कितना ही तामसिक और कितना ही राजसिक हो, अगर परमात्मा में प्रवेश कर जाय, तो तत्काल सात्विक हो जाता है।

सात्विक व्यक्ति भी सूक्ष्म अहंकार से पीड़ित रहता है

अगर आदमी अपने ही बल से सात्विक हो जाय, तो सिवाय अहंकार के और कुछ निर्मित नहीं होता। पायस, पवित्र अहंकार निर्मित होता है। और कोई व्यक्ति कितना ही बुरा हो, दीन हो, हीन हो, पापी हो और परमात्मा में छलांग लगा जाय तो तत्काल, जैसे आग में कचरा जल जाय, ऐसे परमात्मा की आग में सब पाप जल जाते हैं। और परमात्मा में जब कुछ जलता है, तो अहंकार नहीं बचता, वह भी जल जाता है। और आदमी जब कुछ भी जलाये, कुछ भी मिटाये, कुछ भी बनाये, एक चीज पीछे बची रह जाती है, अहंकार; 'मैं' पीछे बचा रह जाता है। इसलिए सात्विक से सात्विक व्यक्ति भी एक सूक्ष्म अहंकार से पीड़ित रहता है। और परमात्मा तभी उपलब्ध होता है जब अहंकार की पतली से पतली, बारीक से बारीक दीवाल भी बीच में न रह जाय। और कोई बाधा नहीं है।

कृष्ण का भी मतलब वही है, जो क्राइस्ट का है, कि पहले तू परमात्मा को खोज। अर्जुन क्या कह रहा है, अर्जुन यह कह रहा है कि मुझे इस युद्ध से जाने दो, यह तामसिक, राजसिक मालूम पड़ता है। मैं सात्विक होना चाहता हूँ, मुझे हट जाने दो। यह सब बात बड़ी गड़बड़ मालूम पड़ती है। यह लोगों को मारना, यश के लिए, धन के लिए, राज्य के लिए, क्षुद्र मालूम पड़ता है। यह मेरे सात्विक मन को प्रीतिकर नहीं लगता, यह श्रेयष्कर नहीं है। मुझे जाने दो कृष्ण, मुझे हट जाने दो, इस युद्ध से। इससे तो बेहतर, भीख मांग कर जी लेना होगा। इससे तो बेहतर, भिखारी हो जाना होगा। इससे तो बेहतर

किसी वृक्ष के नीचे, किसी अरण्य में, बैठ जाऊँगा, प्रार्थना में डूब जाऊँगा। यह सब मैं नहीं करना चाहता, यह सब बड़ा तामसिक मालूम पड़ता है।

कृष्ण कहते हैं, सत्व, रज, तम, सब मुझमें है, लेकिन मैं उनमें नहीं हूँ। इसलिए अगर तू सात्विक भी हो जाय मेरे बिना, मुझे समर्पित हुए बिना, तो तेरे सत्व से भी कुछ हल न होगा। अगर तू अपने ही हाथ से स्वर्ग में पहुंच जाय, तो तेरा अहंकार साथ होगा और सब स्वर्ग नर्क हो जायेंगे। क्योंकि असली नर्क तेरे पीछे ही चलता रहेगा। तेरे साथ ही चलता रहेगा। तू पहले मुझे पा ले और फिर तू बात करना सत्व, रज और तम की, फिर तू बात करना प्रकृति की। पहले तू मुझे पा ले।

पहले प्रभु में प्रवेश कर जाओ

धर्म की और नीति की यही बुनियादी दूरी है। नीति कहती है, सात्विक हो जाओ। धर्म कहता है, धार्मिक हो जाओ। नीति कहती है, पहले अपने कर्म बदलो, आचरण बदलो। धर्म कहता है, पहले प्रभु में प्रवेश कर जाओ। क्योंकि तुम क्या आचरण बदलोगे। और तुम्हारा बदला हुआ आचरण तुम्हारा ही बदला हुआ होगा। वह तुमसे बड़ा नहीं हो सकता। तुम क्या सदाचरण करोगे, वह तुमसे ही निकलेगा, वह तुमसे महत्वपूर्ण नहीं हो सकता। जैसे कोई आदमी अपने जूते के बन्द पकड़कर खुद को नहीं उठा सकता, ऐसे ही कोई आदमी अपने ही द्वारा, सदाचरण को उपलब्ध नहीं हो सकता। आप ही तो सदाचरण करेंगे, आप ही। यह थोड़ा समझने जैसा है।

एक आदमी चोर है, और चोर कहता है कि मैं कोशिश कर रहा हूँ कि मैं अचोर हो जाऊँ, चोरी छोड़ दूं। अब चोर ही तो चोरी छोड़ने की कोशिश करेगा। चोर ही कोशिश करेगा चोरी छोड़ने की। यह जूते के बन्द पकड़कर, अपने को उठाने से भी कठिन काम है। यह होनेवाला नहीं है। क्योंकि अगर चोर इस योग्य होता कि चोरी उससे न होती, तब तो बात ही और थी, लेकिन यह बात नहीं है। चोर, चोर है और कसम खा रहा है कि मैं चोरी नहीं करूँगा। वह अपने साथ भी चोरी कर जायेगा। एक आदमी क्रोधी है और वह कह रहा है कि मैं क्रोध नहीं करूँगा। लेकिन उसे पता नहीं है कि जो यह कह रहा है, नहीं करूँगा, यह भी उसका क्रोधी स्वभाव है, जो कसम ले रहा है, जो संकल्प बांध रहा है कि मैं क्रोध नहीं करूँगा। सौ में सौ ही मौके

इस बात के हैं कि यह क्रोध ही बोल रहा हो कि मैं क्रोध नहीं करूँगा। अब वह दिक्कत में पड़ेगा।

जैसे कभी कभी कुत्ते को आपने देखा हो कि पूँछ पकड़ने की दिक्कत में पड़ जाता है। जोर से छलांग लगाता है, पूँछ बिल्कुल पास मालूम पड़ती है। जरा सा मुँह पास पहुँच जाय तो पूँछ पकड़ में आ जाय। लेकिन बेचारे कुत्ते को पता नहीं, कुत्ते को क्या, हमारे तथाकथित तपस्वियों, नैतिक साधकों को भी पता नहीं, तो कुत्ते का कोई कसूर नहीं है। जब पूँछ बिल्कुल करीब दिखाई पड़ती है, तो कुत्ता सोचता है कि जरा ही मुँह बढ़ा लूँ तो पूँछ पकड़ में आ जाय। मुँह बढ़ाता है, लेकिन तब तक पूँछ हट जाती है। क्योंकि वह मुँह से ही पीछे जुड़ी है, यह उसे पता नहीं। जब छूटती है तो और जोर से कूदता है। सोचता है कि शायद थोड़ा कम कूदा, इसलिए पूँछ पकड़ में नहीं आ सकी। पर जितने जोर से कूदता है, पूँछ भी उतने ही जोर से कूदती है। अब एक विसियस सर्कल, एक दुष्चक्र पैदा होता है जिसमें कुत्ता दिक्कत में पड़ेगा, थकेगा, परेशान होगा, कभी पूँछ पकड़ में आयेगी नहीं। जब कोई हिंसक आदमी कहता है कि अब मैं अहिंसक होने की कोशिश करूँगा, तब वह आदमी कुत्ते के तर्क पर चल रहा है। नहीं, आप अपने में बदलाहट न ला सकेंगे। क्योंकि लायेगा कौन बदलाहट ? आप ही !

इसलिए कृष्ण कहते हैं, या क्राइस्ट कहते हैं कि परमात्मा की तरफ पहले नजर उठा लो, फिर बदलाहट आ जायेगी। क्योंकि तब तुम परमात्मा के हाथ में होओगे और उसके हाथ में पड़ते ही बदलाहट शुरू हो जाती है। उसकी तरफ आँख उठाते ही बदलाहट शुरू हो जाती है, कि आप दूसरे ही आदमी हो जाते हैं। उसकी तरफ नजर पड़ते ही सब कुछ बदल जाता है, क्योंकि जैसे ही विराट दिखायी पड़ता है, वैसे ही हमारी क्षुद्रताएँ गिर जाती हैं, कि हम भी कैसे पागल थे, हम खोज क्या रहे थे, हम पाने की कोशिश क्या कर रहे थे ?

जिस दिन परमात्मा की ओर दृष्टि होगी, उस दिन सब बदल जायेगा

बुद्ध के पास एक स्त्री सुबह सुबह आयी। उसका लड़का मर गया है और बुद्ध गाँव में रुके हैं। तो वह छाती पीटती हुई आयी और उसने कहा कि मैं तुम्हारी बातें तभी सुनूँगी, जब तुम मेरे लड़के को जिन्दा कर दो। लोग कहते

हैं, तुम भगवान् हो, तो भगवान् ने तो इतना बड़ा जगत् बनाया, तुम मेरे इस लड़के को ही जिन्दा कर दो। बुद्ध के संन्यासी, भिक्षु मुश्किल में पड़ गये, अब क्या होगा! बुद्ध ने कहा, कर दूँगा साँझ तक, एक छोटा सा काम तू पहले मेरे लिए कर ला। गाँव में जा, मैं इसे जिन्दा करने की दवाई बुला रहा हूँ, और किसी भी घर से सरसों के बीज ले आ, उस घर से जिसमें कभी कोई मरा न हो। जा, साँझ तक लेकर आ जाना, बस तू सरसों के बीज ले आना उस घर से जिस घर में कोई कभी न मरा हो, मैं इसे साँझ तक जिन्दा कर दूँगा। औरत खुशी से भागी पागल होकर, कि जरूर किसी न किसी के घर में सरसों के बीज मिल जायेंगे और उसका बेटा जिन्दा हो जायेगा। उसने एक एक घर के द्वार पर दस्तक दी। जिस घर में भी गयी वहीं लोगों ने कहा, सरसों के बीज तो हैं, अभी अभी फसल कटी है, बुद्ध ने कोई कठिन दवाई नहीं माँगी है, लेकिन हमारे घर के सरसों के बीज काम न पड़ेंगे, हमारे घर में तो बहुत लोग मरे हैं। साँझ तक एक एक घर छान डाला और साँझ तक यही बात सुनकर कि हर घर में कोई मरा है, और मृत्यु जीवन का नियम है, वह स्त्री सुबह रोती हुई आयी थी, साँझ हँसती हुई आयी।

बुद्ध ने कहा, ले आयी सरसों के बीज। उस स्त्री ने कहा, सरसों के बीज तो नहीं लायी लेकिन बड़ी बुद्धिमत्ता लेकर आयी हूँ। बच्चे को लौटा दें, मैं अपनी प्रार्थना वापस लेती हूँ, उसे जिन्दा करने की कोई जरूरत नहीं है। बुद्ध ने कहा, इतनी जल्दी कैसे तू बदल गयी? उस स्त्री ने कहा, जिस तथ्य की तरफ मेरी कभी आँख ही न उठी थी, उस तथ्य का दर्शन होते ही सब बदल गया। जब सभी मरते हैं और जब सभी को मरना है तो मेरे बेटे के साथ भी अपवाद कैसे हो सकता है! नहीं, अब मैं दुखी नहीं हूँ। और अब मैं लड़के को जिलाने की प्रार्थना वापस लेने आयी हूँ। और आपसे यह भी प्रार्थना करने आयी हूँ कि आज से मैं भी समझिये कि मर गयी, क्योंकि मर ही जाऊँगी। मरने के पहले जीवन को जानने की कोई विधि हो तो मुझे बतायें। अब सदा जीने की कोई आकांक्षा नहीं है क्योंकि मृत्यु तथ्य है, इसलिए मृत्यु का कोई भय भी नहीं है। लेकिन जब तक जी रही हूँ तब तक जीवन को जानने की कोई विधि हो तो मुझे बतायें। बुद्ध ने कहा, दिन भर में तेरी इतनी बदलाहट! वह तो साँझ संन्यासिनी हो गयी, उसने बुद्ध से उसी साँझ दीक्षा ली।

किस बात से यह बदलाहट हुई?

एक तथ्य की तरफ दृष्टि उठी, एक बड़े तथ्य की तरफ कि मृत्यु जीवन का हिस्सा है।

खंडों में पूर्ण है, लेकिन पूर्ण में खंड नहीं

जिस दिन परमात्मा की तरफ दृष्टि उठेगी कि प्रकृति परमात्मा का हिस्सा है, जिस दिन ऊपर की तरफ देखेंगे, उस विराट की तरफ, जिसमें सारी प्रकृति समायी हुई है, उस दिन आप दूसरे आदमी हो जायेंगे। उस दिन चोरी असंभव होगी, उस दिन क्रोध असंभव होगा, उस दिन बेईमानी मुश्किल हो जायेगी। उस दिन बेईमानी ऐसी होगी, जैसे कोई आदमी अपने एक खीसे से रुपये चुराकर दूसरे खीसे में रख ले, बस। ऐसे कुछ लोग हैं कि अपने खीसे से ही चुराकर अपने दूसरे खीसे में रख लेते हैं। सभी लोग ऐसे हैं, अगर सत्य दिखायी पड़े तो, क्योंकि आपका खीसा भी थोड़ी दूर पर सिर्फ मेरा ही खीसा है। जिस दिन परमात्मा दिखायी पड़े, उस दिन चोरी असंभव है क्योंकि सबमें ही परमात्मा दिखायी पड़ेगा। अपनी ही चोरी कौन करता है?

वह तो चोरी हम करते इसलिए हैं कि दूसरा, दूसरा है। और जिस दिन परमात्मा दिखायी पड़े उस दिन सब मालकियत का ख्याल खो जाता है। क्योंकि जब असली मालिक का पता चल गया, तब हमें पता चल जाता है कि हम मालिक नहीं हैं और हम मालिक नहीं हो सकते। जब मालकियत ही नहीं हो सकती तब क्या चोरी? क्योंकि चोरी तो मालकियत की व्यवस्था है, किसी तरह मालकियत कायम करने की चेष्टा है।

कृष्ण कहते हैं, मुझमें तो सारी प्रकृति है, लेकिन मैं प्रकृति में नहीं हूँ। तू मुझे खोज ले, तो पूरी की पूरी प्रकृति तुझे मिल जाय, और तूने प्रकृति खोजी तो तू मुझे न पा सकेगा। इसलिए तू सत्व गुण की बात मत कर, तू यह तम और रज की निन्दा मत कर, ये तीनों मुझमें हैं। तू मेरी बात कर, तू मेरी शरण आ। टुकड़ों की बात मत कर, पूरे की बात कर। खण्डों की बात मत कर, पूर्ण की बात कर। खण्डों में पूर्ण है, लेकिन पूर्ण में खण्ड नहीं है। यह आध्यात्मिक गणित का एक कीमती सूत्र है। कहाँ से शुरू करनी है यात्रा, उसे स्मरण दिलाने के लिए कृष्ण ने ऐसा कहा है।

पागलों, बड़ा सरल इलाज है

एक छोटी सी घटना मुझे याद आती है। सुना है मैंने कि कन्फ्यूसियस के जमाने में, चीन में दो चीनियों ने आमने सामने दुकान खोली, होटल। एक का नाम था येन और दूसरे का नाम था यांग, उन दोनों ने दुकानें खोलीं। दोनों की दुकानें अच्छी चलने लगीं, बहुत जोर से चलने लगीं। धन इकट्ठा होने लगा, तिजोड़ी भरने लगी लेकिन दोनों का दुख भी बड़ा होने लगा, जैसा कि अक्सर होता है। सफलता के साथ न मालूम कैसी गहरी उदासी आने लगती है, क्योंकि आप अकेले ही सफल नहीं होते, दूसरा भी सफल हो रहा होता है। दोनों परेशान हो गये। दोनों की दुकान अच्छी चलती है, भीड़ भड़क्का होता है, ग्राहक काफी आते हैं। लेकिन दोनों परेशान हो गये, दोनों का हृदय चाप बढ़ गया, दोनों की नींद हराम हो गयी, अनिद्रा पकड़ गयी। दोनों चिकित्सकों का चक्कर लगाने लगे, लेकिन कोई रास्ता न सूझे, धन बढ़ता गया और बेचैनी बढ़ती चली गयी। बेचैनी यह थी कि दोनों अपने अपने काउण्टर पर बैठकर देखते थे कि दूसरे की दुकान में इतने ग्राहक जा रहे हैं, उनकी गिनती करते थे। रात परेशान होते थे कि इतने ग्राहक चूक गये, अपने पास भी आ सकते थे।

चिकित्सकों ने कहा, हम तुम्हारा इलाज न कर पायेंगे, क्योंकि यह बीमारी शारीरिक नहीं है। तुम कन्फ्यूसियस के पास चले जाओ। उन्होंने कहा, कन्फ्यूसियस इसमें क्या करेगा ? उपदेश देगा, उपदेश से कुछ होनेवाला नहीं है। सवाल असल यह है कि दूसरे की दुकान पर ग्राहक बहुत जा रहे हैं, और उन्हें हम देखते हैं, आँख बन्द नहीं कर सकते। सामने ही दुकान है, छाती पर चोट लगती है। हर बार भीतर एक आदमी प्रवेश करता है, फिर छाती पर चोट लगती है। नींद न जायेगी तो होगा क्या ? फिर भी चिकित्सकों ने कहा, तुम कन्फ्यूसियस के पास जाओ। वह आदमी होशियार है और वह आदमी की गहरी बीमारियों को जानता है। वे दोनों गये।

कन्फ्यूसियस ने तरकीब बतायी और वह काम कर गयी और दोनों स्वस्थ हो गये। बड़ी मजेदार तरकीब थी, शायद ही इस जमीन पर किसी और

होशियार आदमी ने ऐसी तरकीब बतायी हो। कन्फ्यूसियस ने कहा, पागलों बड़ा सरल सा इलाज है, दूकानें चलने दो, तुम एक दूसरे के काउण्टर पर बैठने लगो। येन यांग के काउण्टर पर बैठे, यांग येन के काउण्टर पर बैठे, तब तुम दोनों का चित्त बड़ा प्रसन्न होगा। दूसरे की दूकान में जो घुस रहे हैं, वह अपनी ही दूकान में जा रहे हैं, तुम ऐसा कर लो। और कहते हैं, उन दोनों ने ऐसा कर लिया और उस दिन से उनकी सब बीमारियाँ समाप्त हो गयीं। वे दिन भर बैठे मजा लेते रहते कि ठीक, काफी लोग जा रहे हैं अपनी दुकान में। वह दूसरे की दुकान अपनी हो गयी अब।

सारा विराट अपना है

जिस दिन कोई परमात्मा को झाँक लेता है, उस दिन सब दुकानें अपनी हो जाती हैं, सब कुछ अपना हो जाता है। उस दिन भीतर की प्रफुल्लता का कोई अन्त नहीं है, उस दिन फूल खिलते हैं भीतर के। सहस्त्र पंखुड़ियों वाला फूल उस दिन खिलता है भीतर का, क्योंकि उस दिन हम परम आनन्द में विराजमान हो जाते हैं। सब अपने हैं, सब अपना है, सारा विराट अपना है। लेकिन जो प्रकृति में खोजने जायेगा, वह न खोज पायेगा ऐसे। इसे तो परमात्मा में कोई खोजने जायेगा तो प्रकृति में भी पा लेगा। टेनिसन ने कहा है, एक दीवाल के पास से निकलते हुए, जिसमें एक छोटा सा घास का फूल खिला है। निकलते वक्त उसने कहा है, अगर मैं इस छोटे से फूल के राज को समझ लूँ तो मुझे सारी दुनिया का राज समझ में आ जायगा। लेकिन वह कृष्ण से पूछे तो कृष्ण कहेंगे, तू कभी इस फूल के राज को न समझ पायेगा। अगर तुझे सारी दुनिया का राज समझ में आ जाय तो इस फूल का राज समझ में आ सकता है।

धर्म अवतरण है, पूर्ण से नीचे की ओर

धर्म की दृष्टि, पूर्ण से नीचे की तरफ यात्रा करती है, अधर्म की दृष्टि, खण्ड से ऊपर की तरफ यात्रा करती है।

धर्म अवतरण है, पूर्ण से नीचे की ओर।

और हमारी सब सोच समझ, हमारी तथाकथित सांसारिक समझ, नीचे से ऊपर की ओर चढ़ाव है। एक एक कदम, एक एक सीढ़ी, पर्वत से उतरना सदा आसान है, पर्वत पर चढ़ना बहुत कठिन है। सबसे बड़ी कठिनाई तो यही होती है पर्वत पर चढ़ने में कि जिस कदम पर आप खड़े होते हैं, वहाँ आपने जो इकट्ठा कर लिया होता है वही अगले कदम उठाने में बाधा बनता है। और हर कदम पर आप कुछ इकट्ठा करते चले जाते हैं। यश, धन, मान, सम्मान, मित्र, प्रियजन इकट्ठा करते हैं, हर कदम पर। फिर हर अगले कदम पर यही फाँसी बन जाते हैं, यही बोझ की तरह चारों तरफ लटक जाते हैं। ये कहते हैं, कहाँ जाते हो, हमें छोड़कर कहाँ जाते हो? ये सब तिजोड़ियाँ छाती से अटक जाती हैं। ऊपर से नीचे की तरफ उतरना बड़ा सुगम है, जैसे सूरज की किरण उतरती है। नीचे से ऊपर की तरफ जाना बहुत कठिन है।

कृष्ण यह कह रहे हैं कि प्रकृति की तरफ अगर तूने ध्यान दिया, तो तू मुझ तक न आ पायेगा। यद्यपि प्रकृति मुझमें है, फिर भी तू मुझ तक न आ पायेगा क्योंकि मैं छिपा हूँ। और जो तुझे दिखायी पड़ेगा, वह मैं नहीं हूँ, जो नहीं दिखायी पड़ेगा, वह मैं हूँ। हाँ, तू मुझे देख ले, अदृश्य को, जब तू अदृश्य को देख लेगा, तो दृश्य में देख लेना तो बहुत सरल है।

विज्ञान खण्ड से और धर्म अखण्ड से शुरू करता है

जब कोई आदमी ध्वनिरहित ध्वनि को सुन ले तो फिर ध्वनि को सुनना कठिन नहीं है। और जब कोई शब्दरहित शब्द को जान ले, फिर शब्दों को पहचानना कठिन नहीं है। और जब कोई विराट को देख ले तो क्षुद्र को देखने में क्या अड़चन है। इसलिए कृष्ण का तर्क, या कृष्ण की पद्धति पूर्ण से शुरू करने की है। समस्त धर्म की पद्धति पूर्ण से शुरू करने की है। समस्त विज्ञान की पद्धति खण्ड से, टुकड़े से शुरू करने की है, फ्राम द पार्ट। और धर्म की पद्धति फ्राम द होल। वही विज्ञान और धर्म की पद्धतियों का बुनियादी भेद है।

विज्ञान शुरू करता है एटम से, अणु से। और अणु से छोटी चीज मिले तो उससे। और भी छोटी चीज मिल जाय तो उससे। जितनी क्षुद्र मिल

जाय, विज्ञान उससे शुरू करेगा। क्योंकि जितनी क्षुद्र हो, आदमी अपने हाथ में उसे उतनी ही आसानी से ले सकता है। जितनी क्षुद्र हो उतना ठीक से विश्लेषण हो सकता है। जितनी क्षुद्र हो, प्रयोगशाला में प्रयोग हो सकता है। जितनी क्षुद्र हो, आदमी उसका मालिक हो सकता है।

और धर्म शुरू करता है विराट से। निश्चित ही फर्क पड़ेगा। विराट को आप अपने हाथ में नहीं ले सकते। अगर विराट को जानना है, तो आपको स्वयं ही विराट के हाथों में गिर जाना होगा। क्षुद्र को आप अपने हाथ में ले सकते हैं, प्रयोगशाला की परखनली में जाँच कर सकते हैं, काट पीट कर सकते हैं, क्षुद्र के आप मालिक बन सकते हैं, लेकिन विराट के मालिक आप नहीं हो सकते हैं। विराट को ही आपको अपना मालिक बना लेना होगा। इसलिए पूर्ण से जब धर्म शुरू होता है तो समर्पण उसकी विधि हो जाती है। और चूंकि विज्ञान क्षुद्र से शुरू होता है, इसलिए संघर्ष उसकी विधि होती है। इसलिए विज्ञान सोचता है, इन टर्म्स आफ कांकरिंग, जीतने की भाषा में। और धर्म सोचता है हारने की भाषा में, आदमी कैसे हार जाय परमात्मा के चरणों में। इसलिए कृष्ण कहते हैं कि मैं तो छिपा हूँ इस सब क्षुद्र में भी, लेकिन तू मुझसे शुरू कर।

त्रिभिर्गुणमयैर्भावैरेभिः सर्वमिदं जगत् ।
मोहितं नाभिजानाति मामेभ्यः परमव्ययम् ।।१३।।

गुणों के कार्यरूप सात्विक, राजस और तामस, इन तीनों प्रकार के भावों से यह सब संसार मोहित हो रहा है इसलिए इन तीनों गुणों से पर मुझ अविनाशी को तत्त्व से नहीं जानता।

प्रकृति के मोह में सारे ही लोग हैं, अलग अलग कारण होंगे मोह के, अलग अलग बहाने होंगे। बस बहाने ही अलग अलग होते हैं, मोह का परिणाम एक ही होता है।

जो सत्त्व, रज, तम से मोहित हैं, वे मेरे तत्त्व को न जान पायेंगे

बड़ा क्रांतिकारी सूत्र है—सत्त्व, रज, तम, तीनों से ही जो मोहित हैं, वे मेरे तत्त्व को न जान पायेंगे क्योंकि मैं बियॉन्ड हूँ, मैं पार हूँ तीनों के। इसको समझना पड़ेगा। क्योंकि हमें लगता है, चोर नहीं जान पायेगा, बेईमान नहीं जान पायेगा, लेकिन हमें लगता है कि सज्जन तो जान लेगा, सज्जन तो सत्त्व से मोहित है। हम कहते हैं, वह आदमी नहीं जान पायेगा जो सिर्फ धन कमा रहा है। वह आदमी तो जान लेगा, जो जाकर मरीजों की सेवा कर रहा है। हम कहते हैं, वह आदमी भला न जान पाये, जो आदमी सिर्फ राजनीति की सीढ़ियाँ चढ़ रहा है, लेकिन वह आदमी तो जान लेगा जो दीन दुखियों के पैर दाब रहा है।

कृष्ण कहते हैं, सत्त्व, रज, तम, तीनों ही, वह जो बुरा दिखायी पड़ता है वह तो मोहित है ही, वह जो भला दिखायी पड़ता है, वह भी मेरी ही प्रकृति के सत्त्व गुण से हिप्नोटाइज्ड है, वह भी मोहित है। यह बड़े मजे का है, और कठिन है थोड़ा, और थोड़ा जटिल है, जानना।

समझिये कि आप अपनी दुकान पर बैठे हैं और आज अगर ग्राहक न आये तो आप दुखी होते हैं। लेकिन आपको पता है कि किसी सेवक को अगर कोई सेवा करवाने वाला न मिले, तो आपसे कम दुख नहीं होता। इतना ही दुख हो जाता है। फर्क क्या हुआ? माना कि वह काम अच्छा कर रहा था लेकिन परिणाम तो एक ही है। अगर समाज इतना सुखद हो जाय, इतना मंगल को उपलब्ध हो जाय, कि किसी व्यक्ति को समाज में समाज सुधार के काम करने का मौका न मिले तो आप जानते हैं, समाज सुधारकों की कैसी हालत हो जायेगी? बड़ी मुश्किल में पड़ जायेंगे, बड़ी बेचैनी में। वह बेचैनी ठीक वैसी ही होगी, जैसे अचानक धन्धा डूब जाय, ग्राहक न आये, फैशन बदल जाय, आप की दुकान की चीजें बिकनी बन्द हो जाय। वह पीड़ा उतनी ही होगी।

परमात्मा के अतिरिक्त, सभी सम्मोहन है

सत्त्व भी, अच्छा काम भी, बिना परमात्मा को समर्पित हुए सिर्फ एक मोह है और उससे भी अहंकार ही निर्मित होता है।

इसलिए जिनको हम सात्विक लोग कहते हैं, वे भी अपने ढंग से अपनी अस्मिता को मजबूत करने में लगे रहते हैं। परमात्मा के अतिरिक्त वह जो पार है, वह जो परा है, प्रकृति के ऊपर, उसके अतिरिक्त सभी सम्मोहन है। सभी मोह के आधार बन जाते हैं, सभी मन को पकड़ लेते हैं, और सभी मन को मूर्छित कर देते हैं। कृष्ण को यह कहने की जरूरत क्या है अर्जुन से? अर्जुन सत्त्व से मोहित हो रहा है इसलिए कहने की जरूरत है।

जिसका खुद का दीया बुझा हो वह किसके दीये जला सकेगा

बुद्ध के पास एक आदमी आया है एक सुबह और बुद्ध के चरणों में सिर रखकर उसने कहा, मुझे कुछ बतायें कि मैं दुनिया का कल्याण कर सकूँ। बुद्ध ने उसकी तरफ नीचे देखा और कहा कि तू अपना ही कर ले तो काफी है।

तू दुनिया को क्यों मुसीबत में डालना चाहता है, तू अपना ही कर ले तो काफी, तेरा कल्याण हो चुका ? उसने कहा, मैं कोई स्वार्थी आदमी नहीं हूँ । मुझे मेरी फिक्र ही नहीं है, मुझे तो दुनिया की फिक्र है ।

बुद्ध ने कहा, जिसका खुद का दीया बुझा हो, वह किसके दीये जला सकेगा !

मगर वह आदमी कह रहा है, मैं स्वार्थी नहीं हूँ मुझे दुनिया की फिक्र है । लेकिन यह आदमी अगर कल्याण करने जाय तो किसी के जले दिये को और बुझा देगा । इससे कल्याण हो नहीं सकता । परमात्मा के सिवाय कोई कल्याण कर नहीं सकता । आदमी कैसे कल्याण करेगा ?

आदमी होना ही एक बीमारी है, एक डिज़ीज है । वह कहता है कि नहीं, मुझमें अब उत्सुकता नहीं है । मेरी उत्सुकता तो यह है कि दूसरों का भला कैसे हो ।

बुद्ध ने अपने भिक्षुओं को कहा कि देखो, यह एक पवित्र अहंकारी है। इसको यह भी अहंकार है कि यह स्वार्थी नहीं है । बुद्ध ने कहा, पहले तू अपना स्वार्थ तो सोच ले, तू पहले स्वयं को तो जान ले । उसने कहा कि इन सब बातों में मुझे मत डालें । दुनिया में बड़ी तकलीफ चल रही है और मुझे सब बदलना है, सब ठीक कर देना है । ये ठीक करने वाले हजारों साल से ठीक कर रहे हैं, दुनिया की तकलीफ बढ़ती जाती है, कम नहीं होती । अब तो ऐसा लगने लगा है कि किसी तरह समाज का समाजसुधारकों से छुटकारा हो जाय तो थोड़ी राहत मिले । असल में दूसरे को बदलने और ठीक करने का एक रस है । और सारी दुनिया को ठीक कर देने में भी एक बड़ी मौज है । एक बड़ा रस है और हरेक इस ख्याल से जीता है कि मैं सारी दुनिया को ठीक कर दूँगा ।

खुद से बचने के लिए लोग हजार उपाय खोज लेते हैं

खुद को ठीक करना बहुत मुश्किल पाकर, लोग दुनिया को ठीक करने निकल जाते हैं ।

खुद से बचने के लिए लोग हजार उपाय खोज लेते हैं । खुद की बीमारियाँ दिखाई न पड़े, खुद की परेशानियाँ दिखायी न पड़े, खुद की परेशानियों से

पलायन हो जाय, तो दूसरे की परेशानियों में लग जाते हैं । भुलाने की तरकीबें हैं, लेकिन सात्विक हैं बातें इसलिए मजा भी है । चोर को तो आप कह दें कि तू बुरा काम कर रहा है, नष्ट कर रहा है अपने को, साधु को कैसे कहियेगा । वह तो सेवा कर रहा है, वह तो कोई बुरा काम कर नहीं रहा है । वह तो स्कूल खोल रहा है, धर्मशाला बना रहा है, अस्पताल बना रहा है, कोई बुरा काम नहीं कर रहा है । कोढ़ियों की मालिश कर रहा है, कोई बुरा काम नहीं कर रहा है ।

लेकिन कृष्ण कहते हैं—सत्त्व, रज, तम, तीनों, चाहे कोई ऐसा कृत्य, जो बुरा हो और चाहे कोई ऐसा कृत्य जो भला हो । और भले और बुरे की तरफ दौड़ने की जो प्रवृत्ति है, वह तीनों ही प्रकृति है, और अर्जुन तू ठीक से समझ ले कि जब तक इन तीन से कोई मोहित हुआ जी रहा है, तब तक मुझ पार, वह जो अतीत है, वह जो अतिक्रमण कर जाता है, उसको उपलब्ध नहीं हो सकेगा । इसका अर्थ, इसकी निष्पत्ति ?

इसकी निष्पत्ति यह हुई कि परमात्मा को पाने के लिए बुरे के तो ऊपर उठना ही पड़ता है, भले के भी ऊपर उठ जाना ही पड़ता है । परमात्मा को पाने के लिए असद्वृत्तियों को तो छोड़ ही देना पड़ता है, सद्वृत्तियों को भी छोड़ देना पड़ता है । असल में उस परम स्वतंत्रता के लिए लोहे की जंजीरें तो तोड़नी ही पड़ती हैं, सोने की जंजीरें भी तोड़ देनी पड़ती हैं । और ध्यान रहे, लोहे की जंजीरों से अक्सर ही सोने की जंजीरें ज्यादा जंजीरें सिद्ध होती हैं । क्योंकि लोहे की जंजीर को तोड़ने का मन भी होता है, सोने की जंजीर को बचाने का भी मन होता है । सोने की जंजीर आभूषण मालूम पड़ने लगती है । इसलिए बुराई से तो कोई आदमी उठने की तैयारी दिखलाता है, लेकिन भलाई से तो उठने की तैयारी भी नहीं दिखलाता ।

तो कृष्ण कहते हैं, तू सत्त्व की बातों में मत पड़ अर्जुन, तू यह साधुता की बातें मत कर, क्योंकि मुझे पाये बिना कोई भी साधु नहीं है । उसके पहले सिर्फ धोखा है मन का । कुछ लोग बुरे ढंग से अपने को धोखा देते हैं, कुछ लोग भले ढंग से अपने को धोखा देते हैं । कुछ लोग दूसरों को नुकसान करके अपने को धोखा देते हैं, कुछ लोग दूसरों को लाभ पहुँचाकर अपने को धोखा देते हैं । लेकिन धोखा तब तक जारी रहता है, जब तक कोई प्रकृति के गुणों के ऊपर न उठ जाय ।

दौड़ जारी रहती है

नहीं, चित्त ऐसी अवस्था में चाहिए जहाँ न बुरा खींचता हो, न भला खींचता हो। न आकर्षित करती हो बीमारियाँ—क्रोध, काम, लोभ; न आकर्षित करते हों तथाकथित फूल, सेवा, सद्भाव, मंगल, कल्याण। नहीं, कोई भी आकर्षित न करता हो। और जब दोनों में से कोई भी आकर्षित नहीं करता तो चित्त ठहर जाता है। नहीं तो दौड़ता रहता है। कभी बुरे के लिए, कभी भले के लिए, कभी साधु होने के लिए, कभी असाधु होने के लिए, दौड़ जारी रहती है। चित्त तो रुकता ही तब है, जब दोनों से मुक्त हो जाता है। और जब चित्त दोनों से मुक्त होता है, तब एक नये आयाम में यात्रा शुरू होती है, अन्तर्यात्रा या ऊर्ध्व यात्रा शुरू होती है। तब व्यक्ति प्रकृति के ऊपर उठकर परमात्मा को अनुभव कर पाता है।

इसलिए हमने इस देश में साधु को वह मूल्य नहीं दिया जो संत को दिया। साधु और असाधु ठीक हैं, एक ही दुनिया के रहनेवाले लोग हैं। एक के हाथ में लोहे की जंजीरें हैं, एक के हाथ में सोने की जंजीरें हैं। एक बुरे कर्मों में उलझा है, लेकिन व्यस्त है उसी तरह जैसा दूसरा भले कर्मों में उलझा है और व्यस्त है, ऑक्युपाइड है। लेकिन दोनों की नजरें जमीन पर लगी हैं। दोनों में से कोई आकाश की तरफ नहीं देख रहा है। हमने उसे संत कहा है जो न भले में उलझा है, न बुरे में। जो उलझा ही नहीं है। जिसने जमीन से नजर ऊपर उठा ली, जिसने आकाश को देखा, जिसने परमात्मा को पहचाना। इसका यह मतलब नहीं कि परमात्मा को पहचानने के बाद वह साधु नहीं होगा। वही साधु होगा, लेकिन बुनियादी अन्तर पड़ जायेंगे।

ज्वालामुखी भीतर उबल रहा है

जिसने परमात्मा को नहीं पहचाना उसकी साधुता, असाधुता के खिलाफ एक संघर्ष होती है, एक सतत संघर्ष। असाधु भीतर मौजूद रहता है। वह तमस भीतर मौजूद रहता है। सत्त्व की लड़ाई चलती रहती है। साधु का मतलब है जिसने क्रोध को भीतर दबाया है और अक्रोधी हुआ है। जिसने चोरी को भीतर दबाया, अचोर हुआ। जिसने परिग्रह को दबा कर छोड़ा, अपरिग्रही हुआ। जिसने अहंकार को दबाया और विनम्र हुआ। लेकिन वह सब भीतर

बीमारियाँ कतारबद्ध मौजूद हैं और प्रतीक्षा कर रही हैं कि कब आप विश्राम करियेगा, कब? कब थोड़ा सा अवकाश लेंगे अपने संघर्ष से।

इसलिए साधु रात सोने तक में डरते हैं क्योंकि सोने में विश्राम हो जाता है। और जिस जिस को दिन में दबाया वह सब सपना बनकर छाती पर घूमने लगता है। इसलिए साधु जरा भी विश्राम लेने में डरते हैं कि कहीं भी अगर जरा विश्राम लिया और संघर्ष थोड़ा शिथिल हुआ, तो मालूम है उन्हें भली-भाँति कि दुश्मन मौजूद है। सब साधु अपने भीतर असाधु को दबाये हुए हैं। और जब तक असाधु मौजूद है, साधु सिर्फ सतह पर है, भीतर तो सब उबल रहा है लावे की तरह। ज्वालामुखी की तरह भीतर आग लगी है। अभी धुआँ दिखायी नहीं पड़ रहा, अभी ज्वालामुखी फूटा नहीं, लेकिन इससे ज्वालामुखी नहीं है, ऐसा कहने की कोई जरूरत नहीं। ज्वालामुखी भीतर तैयारी कर रहा है।

संत हम उसे कहते हैं, जो असाधुता से लड़कर साधु नहीं है। संत हम उसे कहते हैं जिसने परमात्मा को देखा और परमात्मा को देखने से साधु हो गया। कोई संघर्ष नहीं है, किसी को दबाया नहीं, किसी से लड़ा नहीं। इसलिए संत विश्राम से नहीं डरेगा, डरने का कोई सवाल नहीं है। उसे विपरीत की संभावना ही नहीं है। उसके भीतर से, परमात्मा को देखने से ही, असाधुता गिर गयी। संत वह है, जिसकी असाधुता गिर गयी और साधुता पनपी, प्रगट हुई। और साधु वह है, जिसने असाधुता को दबाया और साधुता को कल्टीवेट किया, साधुता का अभ्यास किया, साधुता को थोपा, आरोपित किया। साधु की तरह अपने को नियोजित किया, संयमित किया, अपने को बनाया, तैयार किया। साधु की तरह जिसने अपने ऊपर मेहनत की। इसमें आदमी की मेहनत है। आदमी की मेहनत ज्यादा दूरगामी नहीं हो सकती। आदमी हमेशा प्रकृति से हार जायेगा। आदमी प्रकृति से बहुत कम है।

परमात्मा का सहारा लेकर ही प्रकृति को हराया जा सकता है

मैंने आपसे कहा, अब मैं एक और छोटा वर्तुल आपसे बनाने को कहता हूँ। मैंने कहा, एक बड़ा वर्तुल खींचें, वह परमात्मा है। उसमें एक छोटा वर्तुल

खींचें, वह प्रकृति है। उसमें और एक छोटा सा वर्तुल खींचें, वह आदमी है। मैंने आपसे कहा कि प्रकृति परमात्मा में है। लेकिन परमात्मा प्रकृति में नहीं है।

अब मैं आपसे दूसरी बात कहता हूँ। आदमी प्रकृति में है लेकिन प्रकृति आदमी में नहीं है। वह आदमी और छोटा वर्तुल है। तो आदमी प्रकृति के खिलाफ लड़ेगा अगर, तो हारेगा। प्रकृति से लड़ नहीं सकता, वह बड़ी है, उससे विराट है। प्रकृति आदमी में छिपी है, पूरी भीतर, गहरे में। आदमी उसका बहुत छोटा सा हिस्सा है। इसलिए आप रोज प्रकृति से हारते हैं लेकिन आपको ख्याल नहीं आता कि आप अपने से बड़ी शक्ति से लड़ रहे हैं, हारेंगे ही।

जब आप क्रोध से हारते हैं तो आपको पता है, किससे लड़ रहे हैं? आप सोचते हैं कि क्रोध छोटी मोटी चीज है। क्रोध छोटी मोटी चीज नहीं है, प्रकृति का हिस्सा है। उसकी जड़ें गहरी हैं, आपके खून से ज्यादा गहरी, आपकी हड्डियों से ज्यादा गहरी, आपकी बुद्धि से ज्यादा गहरी, इसलिए आप हजार दफा तय कर लेते हैं बुद्धि से कि अब क्रोध नहीं करूँगा। और जब क्रोध आता है तो पता नहीं बुद्धि कहाँ फिक जाती है और क्रोध आ जाता है। क्रोध गहरा है, आप ऊपर ऊपर निर्णय करते रहते हैं, भीतर प्रकृति आपकी फिक्र नहीं करती। अगर प्रकृति से आपने अपने ही भरोसे जीतने की कोशिश की तो आप रोज हारेंगे। कभी कभी साधु मालूम पड़ेंगे, फिर असाधुता प्रगट हो जायेगी। फिर साधु बनेंगे, फिर असाधुता प्रगट हो जायेगी। प्रकृति आपको हराती ही रहेगी।

अगर प्रकृति को हराना है तो आदमी के भरोसे नहीं, बड़े वर्तुल, परमात्मा के भरोसे हराया जा सकता है। आदमी के भरोसे नहीं। तब सहारा उसका लें, उस बड़े वर्तुल का सहारा लें, उसके साथ तत्काल जीत हो जाती है। उसके साथ प्रकृति उसी तरह हार जाती है, जैसे आप प्रकृति से हार जाते हैं। प्रकृति से आप लड़ेंगे तो आप हारेंगे। अगर परमात्मा को लड़ायेंगे तो प्रकृति हारी ही हुई है, कोई सवाल नहीं है। कोई सवाल नहीं है क्योंकि परमात्मा और भी प्रकृति के गहरे में है।

आदमी सागर की लहरों पर तैरता हुआ एक तिनका है

आप, जैसा मैंने कहा सागर, सागर पर उठी लहरें, लहरों पर तैरता हुआ एक तिनका, ऐसा समझ लें। सागर परमात्मा, लहरें प्रकृति और आप छोटे से तिनके हैं लहरों के ऊपर। आप लहरों से भी नहीं लड़ सकते हैं। लहर से भी हार जायेंगे। आप कितना ही निर्णय करें कि हम तो लहर के ऊपर रहेंगे, लहर की मर्जी कि कब नीचे गिरा दे। लेकिन सागर का सहारा ले लें तो फिर लहर कुछ भी नहीं है। क्योंकि सागर के सामने लहर की क्या औकात, क्या वश।

समर्पित होते ही प्रकृति शांत हो जाती है

परमात्मा में निष्ठा का अर्थ, या परमात्मा के प्रति परायण होने का अर्थ या परमात्मा में समर्पित होने का इतना ही अर्थ है कि प्रकृति से मनुष्य की सीधी लड़ाई असंभव है। हम परमात्मा में समर्पित होते हैं, समर्पित होते ही लड़ाई समाप्त हो जाती है। परमात्मा को देखते ही प्रकृति शान्त हो जाती है, देखते ही। यह करीब करीब ऐसा ही घटित होता है, जैसे कि स्कूल के क्लास के बच्चे खेल रहे हैं, शोरगुल कर रहे हैं और शिक्षक भीतर आया और सब शांति हो गयी। बच्चे अपनी जगह बैठ गये, उन्होंने किताबें खोलीं, अपना काम करने लगे। अभी शोरगुल था अब सब शान्त हो गया। ठीक ऐसे ही परमात्मा की तरफ आँख उठते ही प्रकृति एकदम शान्त हो जाती है। मालिक आ गया, प्रकृति को कोई उपाय नहीं रह जाता। लेकिन आप, आप तो प्रकृति के एक छोटे से टुकड़े हैं, तिनके, और प्रकृति से लड़ने की कोशिश कर रहे हैं।

सात्विक होने की चेष्टा, बिना धार्मिक हुए, बिना परमात्मा में समर्पित हुए, प्रकृति से लड़ने की चेष्टा है। इन तीनों के पार है प्रभु। जब आपके चित्त में तीनों चीजें न हों, तब आपका चित्त परमात्मा की तरफ उठेगा, सत्त्व न हो, तम न हो, रस न हो। इनको थोड़ा सा समझ लें कि कैसी स्थिति होगी जब तीनों न होंगे।

बुरा करने की भावना न हो, भला करने की भावना न हो, जब ये दोनों भावनाएँ नहीं होतीं तो वह जो करने वाली ऊर्जा है, वह जो रजस है, वह जो शक्ति है; यह दो काम करने के केन्द्र बिन्दु हैं। वह जो शक्ति है, जो करती है, जब ये दोनों नहीं रहते, बुरा करने का भाव नहीं, भला करने का भाव नहीं, तब वह जो शक्ति है वह कहाँ जाय ? और शक्ति तो कहीं जायेगी ही। अगर आप मार्ग न देंगे तो भी जायेगी। अब न बुरे की तरफ जा सकती है, न भले की तरफ जा सकती है। तब कहाँ जाय ? जब दोनों दिशाएँ बन्द हो जाती हैं तो शक्ति ऊपर की तरफ, तीसरे, थर्ड डायमेंशन में, तीसरी यात्रा पर उठने लगती है। और तीसरी यात्रा पर परमात्मा है। जहाँ न शुभ है, न अशुभ। जहाँ दोनों नहीं, जहाँ द्वन्द्व नहीं, जहाँ अद्वय है, जहाँ अद्वन्द्व है, जहाँ अद्वैत है। उसकी एक झलक, और सारी प्रकृति शान्त हो जाती है।

कृष्ण कहते हैं कि तू उस झलक को पा ले, और फिर तू बात करना साधुता की। करने की जरूरत न रहेगी, तू साधु हो जायेगा। तू साधु हो ही जायेगा, उसकी नजर पड़ी कि तू बदला, तेरी नजर उस पर पड़ी कि तू बदला। एक दफा उसका दर्शन, यह दर्शन शब्द बड़ा अद्भुत है। इसका अर्थ है, एक दफा उसका दीदार, उसका दर्शन, एक दफे वह दीख जाय, बस। और देखने के लिए इन तीन के ऊपर जाना जरूरी है। इसलिए कृष्ण कहते हैं मैं इन तीनों के पार हूँ। इन तीनों तक प्रकृति है, ऐसा तू जानना। और जब तीनों के पार उठेगा, तब तू मुझे देख और जान पायेगा।

दैवी ह्येषा गुणमयी मम माया दुरत्यया।
मामेव ये प्रपद्यन्ते मायामेतां तरन्ति ते ॥१४॥

क्योंकि यह अलौकिक अर्थात् अति अद्भुत त्रिगुणमयी मेरी योगमाया बड़ी दुस्तर है, परन्तु जो पुरुष मेरे को ही निरंतर भजते हैं, वे इस माया का उल्लंघन कर जाते हैं, अर्थात् संसार से तर जाते हैं।

दुस्तर है, कठिन है, आरडुअस है। अलौकिक है, बड़ी शक्ति है प्रकृति की, क्योंकि है तो परमात्मा की ही शक्ति। कठिन है, क्योंकि हम उसी शक्ति से निर्मित हैं। हमारा सब कुछ, सिर्फ हमारे भीतर जो परमात्मा है उसे छोड़कर। हमारा शरीर, हमारा मन, हमारी बुद्धि, हमारा सब कुछ प्रकृति से ही निर्मित है। जब हम मिट्टी से लड़ते हैं, तो हम मिट्टी को ही लड़ा रहे हैं। हम प्रकृति से ही प्रकृति को लड़ा रहे हैं, नहीं हम न जीत पायेंगे। बहुत दुस्तर हो जायेगी बात।

विराट के साथ जीत सुनिश्चित है

कृष्ण कहते हैं, विचित्र है, अद्भुत है, अलौकिक है, असाधारण है यह शक्ति क्योंकि शक्ति तो आखिर परमात्मा की है। माना कि कितनी ही छोटी लहरें हैं, फिर भी हैं तो सागर की ही। यह सोचकर कि लहरें हैं, उनसे जूझ मत जाना। हमें डुबाने को तो वे लहरें भी काफी हैं। क्योंकि हम तो लहरों में भी छोटी और छोटी लहर हैं। कठिन है, अगर आदमी अपने बल बूते पर लड़े। कठिन है, अगर अपने पर ही भरोसा रखकर लड़े। अगर सोचता हो कि मैं ही पार कर लूंगा तो कठिन है।

लेकिन कृष्ण कहते हैं, कठिन नहीं भी है, संभव भी है, अगर कोई मेरा सहारा ले ले। अगर कोई दिन रात मुझे ही भजे, अगर कोई दिन रात मुझको ही समर्पित रहे, अगर कोई मेरे ही हाथ में सारी बात छोड़ दे और कहे कि ठीक, अब तुम्हीं नाव को खेओ। अब मैं छोडता हूँ, अब तुम मुझे ले चलो, जहाँ ले चलना हो। अगर कोई मुझ पर भरोसा कर सके, ट्रस्ट कर सके, तो बड़ी सरल है। विराट शक्ति के साथ भरोसा हो तो लड़ाई बहुत आसान है। खुद आदमी लड़ने की कोशिश करे तो लड़ाई बहुत कठिन है। जीतना करीब करीब असंभव है, हारना ही सुनिश्चित है। विराट के साथ हार असंभव है, विराट के साथ जीत सुनिश्चित है। लेकिन विराट के हाथों में अपने को छोड़ने के लिए कृष्ण कहते हैं, दिन रात मुझे ही भजे।

क्या मतलब होगा दिन रात भजने का? कि क्या कोई आदमी कृष्ण कृष्ण कहता रहे?

प्रतिपल उसका स्मरण ही भजन है

कई लोग कह रहे हैं, कुछ दिखायी नहीं पड़ता कि कुछ हुआ हो। नहीं, भजना इतनी साधारण बात नहीं है। इसका यह भी मतलब नहीं कि कोई कृष्ण कृष्ण न कहे। भजना बहुत भाव की दशा है। भजने का अर्थ है, एक अन्तः स्मरण। जहाँ भी, जो भी दिखायी पड़ जाय, उसमें कृष्ण का ही स्मरण। फूल दिखे तो पहले फूल का ख्याल न आये, पहले ख्याल कृष्ण का आये। फिर कृष्ण, फूल में खिल जाय, फिर फूल कृष्ण रूप हो जाय। भोजन को बैठें, तो पहले ख्याल भोजन का न आये, कृष्ण का आये। पेट में भूख लगे तो पहले ख्याल यह न आये कि मुझे भूख लगी है, पहले ख्याल आ जाय, कृष्ण को भूख लगी है। ऐसा रोयें रोयें में, उठते बैठते, चलते सोते, साँझ जब बिस्तर पर गिरने लगें तो ऐसा ख्याल न आये कि मैं सोने जा रहा हूँ, ऐसा ख्याल आये कि मेरे भीतर वह जो कृष्ण है, अब विश्राम को जाता है।

और यह शब्द से नहीं, यह भाव से हो। मैं तो आपसे कहूँगा तो शब्द से ही कहूँगा, लेकिन यह भाव से ख्याल आये। घर में आपके एक बच्चा पैदा हो, ऐसा न लगे कि बच्चा पैदा हुआ, ऐसा लगे कि कृष्ण आये या परमात्मा आया। कोई भी नाम से, कोई अन्तर नहीं पड़ता क्योंकि सभी नाम उसी के हैं लेकिन भाव यह हो कि परमात्मा है। सभी स्थितियों में, सुख में, दुख में,

विपदा में, संपदा में, सभी स्थितियों में उसका ही स्मरण बना रहे। सभी कुछ उसको ही समर्पित हो जाय। ऐसा जो दिन रात भजे कोई, तो विराट से सम्मिलन शुरू हो जाता है। क्योंकि हमारी चेतना उसी तरफ बहने लगती है, जिस तरफ हमारी स्मृति होती है। स्मृति चेतना के लिए चैनलाइजेशन है, जैसे हम नहर बनाते हैं नदी में। यदि नहर नहीं बनाते तो नदी बहती है, जहाँ उसे बहना होता है। नहर बना लेते हैं तो फिर नदी, नहर से बहती है और जहाँ हमें ले जाना होता है, नदी वहाँ पहुँच जाती है।

स्मरण, या जिसे संतों ने स्मृति कहा है, सुरति कहा है, बुद्ध ने राइट माइण्डफुलनेस कहा है, सम्यक स्मृति या और कोई सुमिरन या और कोई नाम, हजार नाम हैं। भाव में प्रवेश कर जाय यह बात, सुबह जब नींद खुले तो ऐसा न लगे कि मैं जग रहा हूँ, ऐसा लगे कि मेरे भीतर परमात्मा जागा। और यह शब्द से नहीं, ऐसा आप सुबह उठकर कहें कि मेरे भीतर परमात्मा जागा, उससे बहुत अर्थ नहीं है। क्योंकि कहने का मतलब ही यह है कि आपको भाव पैदा नहीं हो रहा है। भाव पैदा हो तो कहने की जरूरत नहीं है।

भजन शब्द शून्य होता है

भाव और शब्द में फर्क है। शब्द धोखा देते हैं। एक आदमी बार बार किसी से कहता है, मैं बहुत प्रेम करता हूँ, मैं बहुत प्रेम करता हूँ, तब वह धोखा देने की कोशिश करता है। क्योंकि जब प्रेम होता है तो प्रेम शब्द शून्य होता है, कहने की भी जरूरत नहीं होती है, पूरे प्राणों से प्रगट होता है, रोयें रोयें से प्रगट होता है। माँ बच्चे से कह भी नहीं सकती कि मैं तुझे प्रेम करती हूँ। कैसे कहे, क्योंकि बच्चा भाषा ही नहीं जानता, फिर भी बच्चा पहचानता है। रोयें रोयें से, माँ के चारों तरफ प्रेम बहने लगता है, कोई भाषा नहीं है।

और बड़े मजे की बात है, मनोवैज्ञानिक कहते हैं, अगर बच्चे को माँ के पास बड़ा न किया जाय तो फिर वह जिन्दगी में किसी को प्रेम न कर पायेगा, किसी को भी। और मजा यह है कि माँ कभी बच्चे से कहती नहीं कि मैं तुझे प्रेम करती हूँ क्योंकि वह तो भाषा भी नहीं जानता, उससे कहने का कोई उपाय नहीं। उसे छाती से लगा लेती है। भाव की कोई धारा दोनों

की छातियों के बीच आदान प्रदान हो जाती है। उसकी आंखों में झाँकती है। भाव की कोई धारा एक दूसरे की आँख में उतर जाती है। माँ उसका हाथ, हाथ में लेती है और भाव की कोई धारा हाथ के पार चली जाती है। शब्द नहीं है।

इसलिए मनोवैज्ञानिक यह भी कहते हैं कि कोई भी व्यक्ति अपनी पत्नी से तृप्त नहीं हो पायेगा। उसका कारण यह है कि प्रत्येक व्यक्ति उस प्रेम को खोज रहा है जो उसने माँ से पाया था। मनोवैज्ञानिक इसको ऐसा कहते हैं कि प्रत्येक व्यक्ति अपनी पत्नी में अपनी माँ को खोज रहा है। बहुत मुश्किल मामला है, मिल नहीं सकता, इसलिए कभी तृप्ति नहीं हो सकती। वह जो अनूठा प्रेम था शब्दहीन, निःशब्द, मौन, जाना था जिसे, किसी ने कहा नहीं था कभी, किसी ने दावा नहीं किया था, लेकिन फिर भी बहा था और पहचाना था, उसी प्रेम की तलाश चल रही है जिन्दगी भर। वह प्रेम फिर दुबारा नहीं मिलेगा, इसलिए बेचैनी है, इसलिए कठिनाई है, इसलिए अड़चन है।

माँ की खोज चल रही है, वह नहीं मिलती, वह नहीं पकड़ में आती फिर कभी। वह कहाँ मिलेगी? वह कैसे मिल सकती है, उसका उपाय भी न के बराबर है। फिलहाल तो नहीं है। पर उसने तो कभी कहा नहीं था। पत्र नहीं मिले थे, कोई प्रेम पत्र नहीं लिखे थे, बड़े दावे नहीं किये थे। लेकिन फिर दावे करनेवाले लोग आते हैं। दावे बहुत होते हैं और भीतर कुछ भी नहीं होता।

सुना है मैंने, एक प्रेमी अपनी प्रेमिका से कह रहा है कि अगर आग भी बरसती हो, तो भी तुझे बिना देखे मैं नहीं रह सकता। अगर प्रलय भी आ जाय तो भी मैं तुझे बिना देखे नहीं रह सकता। अगर एटम बम भी बरसता हो तो भी मैं तुझे देखे बिना नहीं रह सकता। फिर उसकी प्रेयसी ने, जब वह विदा हो रहा था, उससे पूछा कि कल आनेवाले हो या नहीं। उसने कहा, देखो; अगर सांझ वर्षा न हुई तो मैं जरूर आ जाऊँगा। वह जो बेचारा कह रहा था, प्रलय आ जाय, आग बरसती हो, वही कह रहा है। कल अगर बरसा न हुई, तो जरूर आ जाऊँगा। दावे हैं फिर, लेकिन दावों के पीछे कोई भाव नहीं है।

एक अन्तर्धारा सदा भीतर बहती रहे

यह जो स्मरण है, यह जो प्रभु परायण होने की बात है, यह जो कृष्ण कहते हैं, मुझे ही जो भजे चौबीस घण्टे, इसका अर्थ? इसका अर्थ है, जो भाव से मुझमें जिये। उठे बैठे कहीं भी, भाव से मुझमें रहे। चले फिर कहीं भी, भाव से मुझमें रहे। करे कुछ भी, भाव से मुझमें रहे। एक अन्तर्धारा भाव की मेरी तरफ बहती रहे, बहती रहे, बहती रहे। धीरे धीरे वह नहर खुद जाती है, जिससे व्यक्ति और परमात्मा के बीच सेतु बन जाता है।

और एक बार वह सेतु निर्मित हो जाय, फिर इस प्रकृति से ज्यादा निर्बल कोई चीज नहीं है। यह बहुत निर्बल है। बहुत दीन है प्रकृति। लेकिन जब तक वह सेतु न बने, महाशक्तिशाली है प्रकृति। क्योंकि ये सब तुलनात्मक वक्तव्य हैं। हमारी तुलना में प्रकृति बहुत शक्तिशाली है। परमात्मा की तुलना में कोई सवाल ही नहीं उठता। कोई प्रश्न ही नहीं है। इसलिए आदमी अगर अपने पर भरोसा करे तो उलझायेगा अपने को।

और जबसे आदमियत ने, पूरी आदमियत ने अपने पर भरोसा करना शुरू किया है, और जबसे ऐसा लगा है कि ईश्वर को बीच में आने की कोई भी जरूरत नहीं है, हम काफी हैं, मैन इज इनफ, पर्याप्त है आदमी, तबसे हमने आदमी की समस्याएँ करोड़ गुना गहन और गहरी कर दी हैं। और सुलझाव कुछ भी दिखाई नहीं पड़ता। रोज उलझाव बढ़ता चला जाता है। एक समस्या सुलझाते हैं, तो सुलझाने में पच्चीस नई समस्याएँ खड़ी कर लेते हैं। उनको सुलझाने जाते हैं तो हरेक समस्या से और पच्चीस समस्याएँ खड़ी होती हैं। सारा मनुष्य एक समस्या हो गया है। सिर्फ एक समस्या, जिसे कहीं से भी छुओ, और एक समस्या। जैसे सागर को कहीं से भी चखो और नमकीन, नमक। ऐसे आदमी को कहीं से भी छुओ और समस्याएँ निकल आती हैं। कुछ भी करो समस्याएँ, सब तरफ से समस्याएँ फैल गयीं हैं। क्या बात हो गयी है?

असल में प्रकृति से लड़कर हम जो कर रहे हैं, उससे यही होना निश्चत था। प्रकृति दुस्तर है, उससे लड़ा नहीं जा सकता। उससे लड़कर हम सिर्फ अपने ऊपर मुसीबत बुला सकते हैं। हाँ, थोड़ी देर हम अपने को भ्रम में रख सकते हैं। हाँ, थोड़ी देर हम अपने को भ्रम में रख सकते हैं कि हम लड़ रहे हैं

और जीत जायेंगे। हम थोड़ी देर आशाएँ बाँध सकते हैं। लेकिन सब आशाएँ धूलधूसरित हो जाती हैं, सब मिट्टी में मिल जाती हैं। फिर भी आदमी अजीब है, अब तक उसे ख्याल नहीं आया। और हम एक दूसरे की हिम्मत बढ़ाये चले जाते हैं। बाप बेटे को कहता है, कोई फिक्र नहीं, मैं नहीं जीता, तू जीत जायेगा, जरा परिस्थितियाँ ठीक न थीं। शिक्षक विद्यार्थी को कहे जाता है कि कोई फिक्र नहीं, हम नहीं जान पाये कि सत्य क्या है, लेकिन तुम जान लोगे क्योंकि अब ज्ञान और काफी विकसित हो गया है।

सब गधे चल रहे हैं

सुना है मैंने, एक आदमी एक रास्ते से गुजर रहा है, एक गरीब गधे को लिये हुए। उसके ऊपर काफी सामान लादा हुआ है। जितना गरीब गधा हो, उतना ज्यादा सामान लाद देते हैं लोग। लेकिन रास्ते भर के लोग बड़े हैरान हैं क्योंकि वह चिल्ला चिल्ला कर कई नाम ले रहा है और गधा एक है। कभी कहता है शाबाश कल्लू, कभी कहता है शाबाश हीरा, कभी कहता है शाबाश माणिक। गधा एक है और नाम इतने ले रहा है। एक आदमी का आखिर धीरज टूट गया और उसने पास जाकर पूछा कि माफ करना, इस गधे का नाम क्या है? उसने कहा, इसका नाम कल्लू है। तो इतने नाम क्यों ले रहे हो? उसने कहा, ताकि इसको भरोसा बना रहे कि और भी गधे लदे हैं। और सब चल रहे हैं तो मैं भी क्यों परेशान होकर चलता रहूँ। उस कुम्हार ने कहा, जरा मास साइकोलाजी का उपयोग कर रहा हूँ, भीड़ का मनोविज्ञान। अगर गधे को पता चले कि अकेले कल्लू ही चल रहे हैं तो बहुत मुश्किल में पड़ जायेंगे, बैठ जायेंगे कि नहीं चलते। कोई दुनिया में नहीं चल रहा, हमीं क्यों परेशान हों। लेकिन चारों तरफ गधे चल रहे हैं—माणिक भी, हीरा भी, सब चल रहे हैं। तो कल्लू भी चल रहे हैं। वह प्रसन्न हैं, क्योंकि अकेले तो लदे नहीं, सब लदे हैं। और जरूर कहीं पहुँच जायेंगे। कहीं पहुँचना नहीं है, कहीं पहुँचना नहीं है।

अरब में एक छोटी सी कहावत है कि एक बूढ़े ऊँट से किसी ने पूछा कि तुम पहाड़ पर जाते वक्त ज्यादा आनन्द अनुभव करते हो कि पहाड़ से नीचे जाते वक्त। तो उसने कहा, ये दोनों बातें फिजूल हैं। असली सवाल यह है कि मेरे ऊपर बोझ है या नहीं, ऊपर-नीचे का कोई सवाल नहीं है। मेरा दोनों

वक्त एक ही काम रहता है, चाहे पहाड़ के नीचे जाऊँ, चाहे पहाड़ के ऊपर जाऊँ, बोझ तो ले ही जाता हूँ। कोई फर्क नहीं पड़ता, सदा बोझ ही ढोता हूँ।

लेकिन हमें फर्क लगता है। कभी जब हम सफलता की तरफ जा रहे होते हैं तो बोझ हम आसानी से ढोते हैं क्योंकि हमें लगता है, पहाड़ उतार पर है, जल्दी पहुँच जाते हैं। पर हमें पता नहीं, कि नीचे पड़ाव जाकर करना क्या है? फिर नया बोझ लादना है, फिर पहाड़ पर चढ़ना है।

हर सफलता, नयी असफलता का बोध देगी।

हर सफलता नयी सफलता के लिए यात्रा बनेगी। हर सफलता पड़ाव होगी, मंजिल तो नहीं। मगर जब सफल होता है मन, तो हम ज्यादा बोझ ढो लेते हैं और जब असफल होता है तो जरा पीड़ित अनुभव करते हैं। लेकिन हम जिन्दगी भर करते क्या हैं? शाबाश कल्लू, शाबाश हीरा, शाबाश माणिक और चले जा रहे हैं।

यह हमारी आज की, आदमी की आज की दशा है। और हम सब एक दूसरे को कहे चले जाते हैं कि बढ़े जाओ, मंजिल बहुत पास है, बढ़े जाओ, मंजिल बहुत पास है। न हमें कोई मंजिल मिली है, न जिनसे हम कह रहे हैं उन्हें कोई मिलेगी, लेकिन चलाये चले जाते हैं।

प्रकृति का सम्मोहन मेरी ही योग माया है

कृष्ण कह रहे हैं, मुझको परायण, मुझको उपलब्ध हो जा, मेरे प्रति समर्पित हो जा, इस दौड़ से बच। ये तीन प्रकृति के गुण और यह प्रकृति का पूरा का पूरा सम्मोहन का जाल, यह मेरी योग माया है। यह मेरे हिप्नोटिक, यह मेरे सम्मोहन की शक्ति है। और इस सब में सारा जगत् चल रहा है और दौड़ा चला जा रहा है। शाबाश कल्लू और कल्लू दौड़े चले जा रहे हैं। रुक, और तू मेरे स्मरण में लग। अगर तुझे सम्मोहन के बाहर आना है, तो परमात्मा के स्मरण में लग। परमात्मा का सम्मोहन, डीहिप्नोटाइजिंग है, वह सम्मोहन को तोड़ता है, वह एण्टीडोट है। देखें, उदाहरण के लिए मैं आपको कहूँ कि कैसे एण्टीडोट है।

रास्ते पर एक खूबसूरत स्त्री आपको दिखायी पड़ी। आपने अपने मन में कहा, शाबाश कल्लू और चले। चल पड़े आप, उस वक्त थोड़ा स्मरण करें, स्मरण करें कि वह जो स्त्री है सामने, वहाँ भी कृष्ण हैं और स्मरण करें अपने भीतर कि वहाँ जो, जिसको आप कल्लू कह रहे हैं, वहाँ भी कृष्ण हैं। और फिर देखें, बीच में वह जो सम्मोहन पैदा हुआ था वासना का, वह एकदम गिर जाता है या नहीं। फौरन गिर जायेगा, अचानक आप पायेंगे कि कोई अँधेरा बीच से उठ गया, कोई पर्दा बीच से हट गया, कोई चीज बीच से टूट गयी, सरक गयी तत्काल।

एक आदमी ने आपको गाली दी है और आपके भीतर क्रोध का धुआँ उठा। वह सम्मोहन है प्रकृति का। बटन दबा दी उसने आपकी, बस आपका पंखा भीतर चलने लगा। उस वक्त जरा स्मरण करें, उस ओर भी कृष्ण हैं, इस ओर भी कृष्ण हैं और तब आप अचानक पायेंगे कि भीतर क्रोध जो पंख फैलाता था उड़ने के लिए, उसने पंख सिकोड़ लिये।

डी-हिप्नोटाईजिंग है स्मरण।

परमात्मा का स्मरण, सम्मोहन तोड़क है और अगर परमात्मा को भूले और अपना ही स्मरण रखा कि मैं ही सब कुछ हूँ, तो यह मैं जो है, यह बहुत मादक है। और यह सम्मोहन को गहन करता है, और मूर्छित करता है, बेहोश करता है। फिर हम दौड़े चले जाते हैं। यह तीन का खेल चलता रहता है चारों तरफ। यह प्रकृति की, तीन की लीला चलती रहती है, ट्रायंगल; हम दौड़ते रहते हैं उसमें। इससे कब ऊपर उठेंगे? इससे उठने का द्वार कहाँ है? इससे उठने का द्वार है प्रभु स्मरण, कहीं से भी स्मरण मिलता हो। लेकिन हमारी तो बहुत अजीब हालतें हैं।

किसी भी बहाने, भगवान् का स्मरण कर लो

यहाँ कुछ संन्यासी मेरे नाम के सामने भगवान् लगाकर चिल्ला देते हैं। मैं चुप रह जाता हूँ यह सोचकर कि आज नहीं कल वह मेरा नाम भी छोड़ देंगे और सिर्फ भगवान् का नाम ही उच्चारित करेंगे। क्योंकि उसमें भगवान्

शब्द झूठ नहीं है। उसमें मेरा नाम ही झूठ है। लेकिन मेरे पास चिट्ठियाँ आती हैं लोगों की, कि आप लोगों को मना क्यों नहीं करते कि भगवान् लगाना बन्द करें, सिर्फ रजनीश कहें, आचार्य रजनीश कहें, भगवान् लगाना बन्द करें। उनकी चिट्ठियाँ आती हैं, वे समझते हैं, कि वे बहुत होशियार लोग हैं, जो मुझे चिट्ठियाँ भेजते हैं। एक आदमी ने चिट्ठी नहीं भेजी कि वह कहे कि रजनीश कहना बन्द कर दें, क्योंकि दोनों बात एक साथ नहीं हो सकती। जब तक रजनीश हों, तब तक भगवान् होना मुश्किल, जब भगवान् हो जाऊँ, तो रजनीश होना मुश्किल। ये दोनों कण्ट्रेडक्टरी हैं। लेकिन वह चिट्ठियाँ, होशियार लोग जो हैं, होशियार का मतलब कि जिनके पास युनिवर्सिटी के कागज का कोई टुकड़ा वगैरह है, तो फौरन चिट्ठी, मुझे कई चिट्ठियाँ, दस पाँच चिट्ठियाँ आयीं कि फौरन बन्द करवाइए, यह क्या हो रहा है?

अक्ल के तो हम जैसे दुश्मन हैं, लट्ठ लेकर अक्ल के पीछे पड़े हुए हैं। चलो यही बहाना अच्छा, भगवान् का नाम तो ले लेते हैं, खूँटी मेरी ही सही, तो क्या हर्जा। खूँटी तुड़वा लेंगे, खूँटी कोई बड़ी चीज नहीं है, भगवान् जैसा भजन रखोगे, खूँटी कितनी देर तक बचेगी, खूँटी गिर ही जायेगी। लेकिन नहीं, जिनको यह तकलीफ होती है, उनकी तकलीफ का कारण है। स्मरण जैसी चीज का उन्हें कोई पता नहीं है।

भगवान् से ऐसी क्या दुश्मनी है

एक और मजे की बात है कि मैं सदा आपके भीतर बैठे परमात्मा को प्रणाम करता रहा। तब किसी ने मुझे चिट्ठी लिखकर नहीं भेजी कि हमको आप परमात्मा क्यों कहते हैं? किसी आदमी ने लिखकर नहीं भेजी मुझे कि आप हमको परमात्मा क्यों कहते हैं? मैंने बहुत कहकर देख लिया, मैंने सोचा कि वह कुछ सुनायी नहीं पड़ता आपको, तो मैंने बन्द कर दिया। अब यह दूसरे छोर से इन लोगों ने शुरू कर दिया। यह छोर दूसरा है, बात वही है। लेकिन अब उनको बड़ी बेचैनी हो रही है, उन्हीं सज्जनों को जिनको कि मैं निरन्तर कहता रहा कि आपके भीतर बैठे परमात्मा को प्रणाम करता हूँ।

उन्होंने बड़े मजे से स्वीकार किया था। उनको अब बड़ी अड़चन हो रही है कि भगवान् का नाम क्यों ले रहे हैं? स्मरण का हमें कोई पता नहीं है। अच्छा ही है, इस बहाने आपके कान में पड़ गया।

कल तो एक मित्र ने आकर कहा कि अब दोबारा इन्होंने लिया तो मैं सुनने नहीं आऊँगा। बहुत मजेदार हैं। वह मुझे सुनने आते हैं, कहते हैं, आपकी बातें मुझे प्रीतिकर हैं, आपकी बातें ठीक लगती हैं, लेकिन यह भर नहीं होना चाहिए, यह भगवान् का नाम। भगवान् से ऐसी क्या दुश्मनी है? मुझसे तो दुश्मनी नहीं मालूम पड़ती उनकी क्योंकि कहते हैं, आपको सुनने में अच्छा लगता है, हम रोज आना चाहते हैं। भगवान् से दुश्मनी मालूम पड़ती है। मत आयें, बिल्कुल न आयें और पिछली दफे जो आयें हों, उसको बिल्कुल भूल जायँ, क्योंकि वह बेकार है क्योंकि मैं जो बोल रहा हूँ, सिर्फ इसलिए बोल रहा हूँ कि मुझमें ही नहीं, सब जगह, जहाँ भी कभी कुछ दिखायी पड़े, भगवान् ही दिखायी पड़े, उसके लिए बोल रहा हूँ। और मेरे सुनने का कोई प्रयोजन नहीं। बिल्कुल न आयें, क्या जरूरत है? यहाँ कोई शाबाश कल्लू; आपको कोई दौड़ तो लगवानी नहीं है मुझे। आज इतना ही, लेकिन उठना मत, जो उठ जायेगा मैं समझूँगा, शाबाश कल्लू। आप बैठे रहेंगे अपनी जगह, थोड़ा हम भगवान् का स्मरण करते हैं।

मृत्यु-ज्ञान है योग

छठवाँ प्रवचन

गीता-ज्ञान-यज्ञ, बम्बई, रात्रि दिनांक २७ मई, १९७१

न मां दुष्कृतिनो मूढाः प्रपद्यन्ते नराधमाः ।
माययापहृतज्ञाना आसुरं भावमाश्रिताः ।।१५।।

चतुर्विधा भजन्ते मां जनाः सुकृतिनोऽर्जुन ।
आर्तो जिज्ञासुरर्थार्थी ज्ञानी च भरतर्षभ ।।१६।।

ऐसा सुगम उपाय होने पर भी माया द्वारा हरे हुए ज्ञानवाले और आसुरी स्वभाव को धारण किये हुए तथा मनुष्यों में नीच और दूषित कर्म करने वाले मूढ़ लोग तो मेरे को नहीं भजते हैं। और हे भरतवंशियों में श्रेष्ठ अर्जुन, उत्तम कर्मवाले अर्थार्थी, आर्त्त, जिज्ञासु और ज्ञानी अर्थात् निष्कामी ऐसे चार प्रकार के भक्तजन मेरे को भजते हैं।

कौन करता है प्रभु का स्मरण, इस सम्बन्ध में कृष्ण ने कुछ बातें कहीं हैं।

मनुष्य जाति को दो भागों में विभाजित किया जा सकता है। और जब दुनिया से सारे वर्ग मिट जायेंगे, तब भी यही विभाजन अन्तिम सिद्ध होगा। बहुत तरह से आदमी को हम बाँटते हैं। धन से बाँटते हैं, गरीब है, अमीर है; शिक्षा से बाँटते हैं, शिक्षित है, अशिक्षित है। चमड़ी के रंगों से बाँटते हैं, गोरा है, काला है। हजार तरह से आदमी को हम बाँटते हैं। लेकिन जो परम विभाजन है, जो अन्तिम विभाजन है, वह न तो चमड़ी से तय होता, न धन से तय होता, न यश से तय होता, न शिक्षा से तय होता। ये सब बातें बहुत ऊपर और बहुत बाहर हैं, बहुत सतह पर। अंतिम विभाजन तो एक ही है, वे जो प्रभु उन्मुख हैं और वे जो प्रभु उन्मुख नहीं हैं। वे जिनकी आँख परमात्मा की तरफ उठ गयी हैं, और वे जो पीठ किये हुए परमात्मा की तरफ खड़े हुए हैं।

मूढ़जन मुझे नहीं भजते

कृष्ण कहते हैं, मूढ़जन मुझे नहीं भजते हैं, कठिन लगेगा यह शब्द। और कृष्ण किसी को मूढ़ कहें तो लगेगा कि गाली दे रहे हैं। लेकिन जहाँ तक कृष्ण का संबंध है, वे केवल एक तथ्य की सूचना कर रहे हैं, एक फैक्ट। और मूढ़ कहना गाली नहीं है। मूढ़ कहना, केवल एक तथ्य की घोषणा है। सच ही वह आदमी मूढ़ है, जो परमात्मा की तरफ पीठ किये खड़ा है। इसलिए नहीं, कि इससे परमात्मा की कोई हानि है और न इसलिए कि कृष्ण उससे नाराज होकर उसे मूढ़ कह रहे होंगे। बल्कि इसलिए कि वह अपना ही घात कर रहा है, आत्मघात कर रहा है।

मूढ़ किसे कहते हैं ?

मूढ़ विशेष शब्द है। मूढ़ का अर्थ, सिर्फ मूर्ख नहीं होता। इसे थोड़ा समझ लेना पड़ेगा। मूढ़ पारिभाषिक शब्द है। अगर मनसविद् से पूछेंगे, तो मनसविद् जिसे ईडिएट कहता है, उसे संस्कृति में मूढ़ कहा जाता है। उसका मतलब फूलिस नहीं है, उसका मतलब मूर्ख नहीं है। क्योंकि मूर्ख और बुद्धिमान में जो अन्तर होता है, वह गुणात्मक नहीं होता है, डिग्री का होता है। जिसको आप मूर्ख कहते हैं, वह थोड़ा कम बुद्धिमान है बस, और जिसको आप बुद्धिमान कहते हैं वह थोड़ा कम मूर्ख है बस। उन दोनों के बीच जो अन्तर है वह मात्रा का है, गुण का नहीं है। क्वालिटी का नहीं है, क्वांटिटेटिव है।

फिर दो शब्द और हैं, एक जिनको हम कहते हैं मूढ़ और दूसरा, जिनको हम कहते हैं मेधावान। उनके बीच जो अन्तर है वह क्वालिटी का है, गुण का है, क्वांटिटी का नहीं।

जो जिस शाखा पर बैठा हो, उसी को काटता है, वह मूढ़ है

मूढ़ से मतलब है ऐसा आदमी, जो जिस शाखा पर बैठा हो, उसी को काटता हो।

कालिदास की कथा हमने पढ़ी है। वह मूढ़ के प्रतीक हैं, बैठे हैं वृक्ष पर, शाखा को काट रहे हैं। और जिस शाखा को काट रहे हैं, उसी पर बैठे हुए हैं। गिरेंगे ही और कोई जिम्मेवार न होगा। खुद ही शाखा को काट रहे हैं। और जितनी शाखा कटती है, कालिदास उतने प्रसन्न हो रहे होगें क्योंकि सफलता मिल

रही है। हालांकि सफलता कुल इतनी मिल रही है कि वह थोड़ी देर में गिरेंगे और हाथ पैर तोड़ लेंगे।

मूढ़ से मतलब है, ऐसा व्यक्ति जो आत्मघात में लगा हो, स्युसाइडल।

मेहनत भी करता हो, तो अपने को ही नुकसान पहुँचाता है। श्रम भी करता हो, तो अपना ही घात करता है। निश्चित ही परमात्मा के खिलाफ जो पीठ करके खड़े हैं, उनसे बड़ा मूढ़ कोई भी नहीं हो सकता क्योंकि शाखाओं को काट कर कोई गिर भी पड़े, तो कितना नुकसान होनेवाला है। लेकिन परमात्मा की तरफ पीठ करके खड़ा हुआ आदमी, तो सब भाँति के नुकसान में पड़ जायेगा।

इसलिए कृष्ण जब मूढ़ कहते हैं, तो आप मत सोचना कि गाली दे रहे हैं। वह केवल सूचना दे रहें हैं कि ऐसे व्यक्ति को हम मूढ़ कहते हैं। क्योंकि परमात्मा है हमारी परम सम्पदा। उसके बिना हम दरिद्र ही रहेंगे, चाहे हम कितनी ही सम्पति इकट्ठी कर लें। और परमात्मा है परम यश। उसके बिना हम पदहीन ही रहेंगे क्योंकि वह है परम पद। चाहे हम कितने ही बड़े पदों पर पहुँच जाये पर परमात्मा के बिना हम कहीं भी नहीं पहुँच सकते। चाहे हम कितनी ही यात्रा करें, हम आखिर में पायेंगे, हम वहीं खड़े हैं, जहाँ जन्म ने हमें खड़ा किया था। मौत के वक्त हम वहीं खड़े हुए मिलेंगे। हमारी सब दौड़ व्यर्थ जानेवाली है।

अब मैं नहीं बढ़ूँगी

असल में परम शक्ति को इन्कार करना वैसा ही है, जैसा मैंने सुना है, कि एक बेल एक भवन पर चढ़ती थी। लेकिन एक दिन एक नास्तिक से उस बेल का मिलना हो गया और उस नास्तिक ने कहा, कि यह तेरी मजबूरी है कि तुझमें फूल आते हैं। यह कोई तेरा गौरव नहीं है। बेल को तो पता ही न था। जब फूल खिलते थे तो आनन्द से नाचती थी, पक्षियों को निमंत्रण देती थी। सूरज की किरणें आती थीं तो सुगन्ध बिखेरती थी। उस नास्तिक ने कहा, पागल यह तेरी कोई गरिमा है? और यह तेरा गौरव नहीं है, तू तो मजबूर है बढ़ने को। फूल खिलने के लिए मजबूरी है तेरी। यह तेरी गुलामी है। तू चाहे तो भी, फूल खिलना रुक नहीं सकता।

जैसा कि सार्त्र ने कहा है। सार्त्र का प्रसिद्ध वचन है, मैन इज कन्डेम्ड टू बी फ्री। शायद स्वतंत्रता के साथ कन्डेम्ड का प्रयोग, दुनिया में किसी दूसरे आदमी ने इसके पहले नहीं किया था। सार्त्र कह रहा है, मनुष्य स्वतंत्र होने के लिए बाध्य है। या कहना चाहिए मनुष्य स्वतंत्र होने के लिए निन्दित है। उसे स्वतंत्र होना ही पड़ेगा। स्वतंत्रता उसकी गुलामी है। कोई उपाय नहीं है, स्वतंत्र होना ही पड़ेगा, जबरदस्ती स्वतंत्र किया जा रहा है। ऐसा उस नास्तिक ने कहा, यू आर कन्डेम्ड टु ग्रो एण्ड टु फ्लावर। तुम निन्दित हो कि तुममें फूल खिलें और तुम बढ़ो। इसमें तुम्हारा कोई गौरव नहीं है। निश्चित ही बेल को बड़ी तकलीफ हुई। फूल तो उसकी छाती पर अब भी खिले थे, लेकिन बेकार हो गये। पहली बार अहंकार जागा। और उसने आकाश की तरफ सिर उठाकर परमात्मा से कहा, कि बस, अब मैं बढ़ने से इन्कार करती हूँ। अब मैं इन्कार करती हूँ, ठीक से सुन लो कि अब मैं नहीं बढ़ूँगी। और अब मैं इन्कार करती हूँ कि फूल नहीं खिलाऊँगी। और अब मैं इन्कार करती हूँ कि मुझमें फल नहीं लगेंगे।

परमात्मा ने कहा, जैसी तेरी मर्जी। क्योंकि प्रेम का अर्थ ही यह है, कि वह आपको अपनी मर्जी पर पूरी तरह छोड़ दे। प्रेम का अर्थ ही यह है, कि वह अपनी मर्जी आपके ऊपर न थोपे। परमात्मा ने कहा जैसी तेरी मर्जी। लेकिन उसी दिन से बेल बड़ी बेचैन हो गयी। क्योंकि भीतर तो प्राणों की ऊर्जा बढ़ना चाहती थी। भीतर तो रस चल रहा था, जमीन से रस अपशोषित किया जा रहा था, सूरज से किरणें पियी जा रही थीं, हवाओं से आक्सीजन लिया जा रहा था, पानी की धार भीतर बह रही थी। यह सब जारी था। और बेल ने कहा, मैं बढ़ूँगी नहीं। समझ सकते हैं, मुसीबत शुरू हो गयी। भीतर से बढ़ने का धक्का प्राणों में और बेल अपने को बाहर से रोके। भीतर तो सुगन्ध जमीन से इकट्ठी होने लगी, फूल खिलने को मचलने लगे और बेल ने इन्कार किया, फूल मैं खिलने न दूँगी। जिस बेल में बड़ी बढ़ती थी और आकाश की तरफ ऊपर उठती थी वह जमीन की तरफ झुक गयी। उसमें गाँठें पड़ गयीं।

जो शक्ति बीज बन सकती थी, वह गाँठ बन गयी

जो शक्ति बीज बन सकती थी, वह गाँठ बन गयी। और जिससे फूल पैदा होते, उससे बेल सिर्फ बेचैन, परेशान हो गयी, रात की नींद खो गयी,

सुबह का आनन्द खो गया। पक्षी अब भी गीत गाते, तो बेल को बुरे मालूम पड़ते। क्योंकि पक्षियों के गीत वसन्त की याद दिलाते, जब फूल खिलते थे। और जब सूरज निकलता, तो बेल बेचैन होती, उसे याद आती उन दिनों की, जब बेल बढ़ती थी। और जब आकाश में बादल घूमते हैं, तो बेल कष्ट पाती, क्योंकि इन बादलों से उस सबकी याद जुड़ी थी, जब इनसे बरसा होती थी और बेल तृप्त होती थी। अब बेल बिल्कुल पागल हो गयी। एक दिन घबड़ा कर उसने परमात्मा से कहा कि मैं बिल्कुल पागल हुई जा रही हूँ। परमात्मा ने कहा, जैसी तेरी मर्जी। मैंने तुझे कभी पागल होने को नहीं कहा। तू अपने ही हाथ से और अपने ही आंतरिक स्वभाव से लड़ रही है।

क्योंकि परमात्मा से लड़ना, अपने ही स्वभाव से लड़ना है।

जब भी कोई आदमी परमात्मा के खिलाफ खड़ा होता है, तो किसी गहरे अर्थों में अपने खिलाफ खड़ा होता है। वह उन्हीं शाखाओं को काटने लगता है, जो उसके प्राण है। और जब भी कोई व्यक्ति परमात्मा के विपरीत पीठ करता है, तो वह अपने से ही अजनबी हो जाता है। क्योंकि वह अपने ही तरफ पीठ कर रहा है।

परमात्मा से विरोध, अपने से ही विरोध है

परमात्मा ने कहा, तू अपने ही हाथ से मुसीबत में पड़ गयी है। यह जो गाँठें तुझे दर्द दे रही हैं, ये तेरे भीतर बीज बन सकती थीं और ये जो पत्ते कुम्हलाकर जमीन की तरफ झुक गये हैं, ये आकाश में खिले हुए फूल बन सकते थे। और आज पक्षियों के गीत कष्ट देते हैं और सुबह की सूरज की किरणें भी प्राणों में भालों की तरह छिद जाती हैं। और आकाश में बादल उठते हैं, पहले भी उठते थे, तब तू नाचती थी भौरों के साथ, लेकिन अब तू नाचती नहीं, अपने को सँभाल कर खड़ी रहती है। तू अपने ही खिलाफ हो गयी है। यह अपने से विरोध छोड़। क्योंकि परमात्मा से विरोध, अपने से ही विरोध है।

कृष्ण कह रहे हैं, वह आदमी मूढ़ है। इस बेल की तरह है वह आदमी, जो परमात्मा का भजन नहीं कर रहा है। भजन का अर्थ है, जो परमात्मा और अपने बीच कोई सेतु नहीं बना रहा है, जो परत्मामा की शक्ति को अपनी

शक्ति नहीं मान रहा है, जो परमात्मा और अपने बीच किसी तरह का विरोध और रेसिस्टेंस खड़ा कर रहा है, वह आदमी मूढ़ है। क्योंकि वह किसी और से नहीं लड़ रहा है, वह अपने से ही लड़ रहा है। और हारेगा क्योंकि बड़ी विराट ऊर्जा से लड़ रहा है। लहर सागर से लड़ने चल पड़ी।

तो कृष्ण एक तथ्य की बात कहते हैं। कहते हैं, मूढ़ है वह आदमी। मूढ़ मुझे नहीं भजते हैं। इसमें कई दफे पढ़कर ऐसा लगता है कि जो कृष्ण को नहीं भजता है, कृष्ण उसको गाली दे रहे हैं कि तुम मूढ़ हो। नहीं, ऐसा नहीं है। नहीं भजते हो, इसलिए मूढ़ हो। मूढ़ हो, इसलिए नहीं भजते हो। और इस मूढ़ता में आत्मघात छिपा है, अपना ही विनाश छिपा है। सेल्फ-डिस्ट्रक्शन, आत्मविनाश की वृत्ति छिपी है। और हम सबके भीतर आत्म विनाश की वृत्ति है।

आदमी के भीतर मृत्यु की आकांक्षा भी है

फ्रायड ने तो अपने अंतिम दिनों के जीवन में, मनुष्य के भीतर एक डैथ विश, मृत्यु की आकांक्षा भी है, इसकी खोज की है। फ्रायड ने जिन्दगी भर एक ही चीज की बात की थी, वह थी ईरोज, कामवासना, जीवन की इच्छा। लेकिन अन्त में उसे लगा कि यह अधूरी बात है। आदमी के भीतर मरने की इच्छा भी छिपी हुई है। उसे उसने थानाटोज, डैथ विश, मृत्यु की आकांक्षा कहा। उसने कहा, आदमी के भीतर कोई ऐसा तत्त्व भी है, जो स्वयं को भी नष्ट करने के लिए आतुर रहता है।

इस खोज ने सारे पश्चिम में हैरानी पैदा कर दी थी। लेकिन पूरब इसे सदा से जानता है। सदा से जानता है कि आदमी के भीतर जीवन की आकांक्षा भी है और मरने की आकांक्षा भी है। स्वस्थ आदमी वह है, जो जीवन की आकांक्षा पर यात्रा करता है। अस्वस्थ रुग्ण आदमी वह है, जो मृत्यु की आकांक्षा पर यात्रा करने लगता है।

ध्यान रहे, जो आदमी जीवन की आकांक्षा से जीता है वह परमात्मा की तरफ उन्मुख हो जाता है और जो आदमी मृत्यु की आकांक्षा से भर जाता है वह परमात्मा की तरफ विमुख हो जाता है।

यह जो फ्रायड ने बहुत गहरी खोज की और फ्रायड को खुद भी मुसीबत पड़ी क्योंकि जिन्दगी भर से कहता था, आदमी जीने के लिए आतुर है। लेकिन बुढ़ापे में उसे समझ में आया कि सिर्फ जीने के लिए आतुर नहीं है क्योंकि आदमी हजार ऐसे काम कर रहा है, जो गवाही देते हैं कि आदमी मरने को भी आतुर है। आदमी कभी-कभी मरना भी चाहता है। आप अपने ही तरफ सोचेंगे, तो समझ में आयेगा।

मनोवैज्ञानिक कहते हैं, ऐसा आदमी खोजना मुश्किल है, जो जिन्दगी में पाँच दस बार स्वयं की हत्या का विचार न करता हो। यह दूसरी बात है कि आप हत्या न करते हों, क्योंकि हत्या करने के लिए और सब इन्तजाम चाहिए, जो आपके पास न हो। हिम्मत चाहिए जो न हो, लेकिन हत्या का विचार आदमी करता है, और ऐसा नहीं कि बूढ़े ही करते हैं। छोटे से बच्चे को बाप जोर से डाँट दे और बच्चा अपने भीतर सोचता है, इससे तो मर ही जाऊँ। छोटा सा बच्चा, अभी जो जीवन की यात्रा पर निकला भी नहीं। उसके भीतर भी मरने का भाव पकड़ता है। वह सोचता है, खत्म कर दो अपने को, नष्ट कर दो। अगर मनुष्य के भीतर कोई मरने की वृत्ति न हो, तो इतनी जल्दी मरने का ख्याल नहीं आ सकता। और जो गहरे खोजते हैं, वह कहते हैं कि हम दूसरे को भी मारने के लिए इसलिए उत्सुक हो जाते हैं क्योंकि हमें डर है, कि अगर हम दूसरे को न मारें, तो कहीं अपने को मारना शुरू न कर दें। यह बहुत उल्टा लगेगा।

मैं इसलिए हँसता हूँ कि कहीं रोने न लगूँ

नीत्से से किसी ने पूछा कि तुम सदा हँसते रहते हो, बात क्या है? नीत्से ने कहा, सिर्फ इसलिए हँसता रहता हूँ कि कहीं रोने न लगूँ। क्योंकि दो के सिवाय कोई उपाय दिखायी नहीं पड़ता। या तो हँसूँ, या रोऊँ। दो के बीच कोई जगह नहीं है, जहाँ आदमी खड़ा हो जाये। खड़े होने के लिए जगह नहीं है, या तो रोऊँ या हँसूँ। तो मैं हँसता ही रहता हूँ, कि अगर हँसना रोका तो फिर रोना पड़ेगा। रोने पर विकल्प फिर बदल जायेगा। इसलिए हर आदमी दूसरे की हत्या का विचार करता रहता है, कि कहीं अपनी हत्या का विचार न करने लगे। और हर आदमी दूसरे को नुकसान पहुँचाने की धारणा

बनाता रहता है, कि कहीं अपने को नुकसान न पहुँचाने लगे। हर आदमी आक्रमक है, ताकि कहीं आत्महिंसा में न लग जाय।

और यह बड़े मजे की बात है, जो लोग आक्रमण छोड़ देते हैं, या जो लोग चेष्टा करके दूसरे की हिंसा छोड़ देते हैं, वह आत्महिंसा में फौरन लग जाते हैं। इसलिए तथाकथित अहिंसा के साधक हिंसा में लग जाते हैं, वह अपने को सताने लगते हैं। यह बहुत मजे की बात है, जो आदमी दूसरे को सताना छोड़ता है, वह फौरन अपने को सताने के उपाय करने लगता है। दो में से कोई और रास्ता दिखाई नहीं पड़ता।

कृष्ण उसे मूढ़ कहते हैं, जो अपने को सता रहा है। और अपने को सताने के लिए सबसे बड़ी विधि अगर जगत् में कोई है, तो वह है, प्रभु को भूल जाना। आप कहेंगे, यह कैसी विधि? छाती में छूरा भोंक लो, ज्यादा तकलीफ होगी, काटों पर लेट जाओ, जहर पी लो। नहीं, परमात्मा के विस्मरण से बड़ी तकलीफ, इस जगत् में कोई भी नहीं हो सकती। परमात्मा के विस्मरण से बड़ी कोई दूसरी तकलीफ इसलिए नहीं हो सकती है क्योंकि परमात्मा के विस्मरण के साथ ही, जीवन के सब आनन्द की धाराएँ अवरुद्ध हो जाती हैं। आदमी जीता भी है, मरा हुआ। ध्यान रहे, मर जाना उतना बुरा नहीं है, जितना मरे हुए जीना बुरा है।

फांसी से कठिन सजा भी है

सुना है मैंने, ईरान के एक बादशाह का वजीर एक जुर्म में पकड़ा गया। और जुर्म यह था कि उसने कानून के खिलाफ तीन विवाह कर लिये थे और तीनों औरतों को धोखा दिया था। एक ही विवाह कर सकता था, तीन विवाह कर लिये थे और हर स्त्री को धोखा दिया था कि मैं अविवाहित हूँ। यह बात पकड़ गयी और सम्राट ने उस वजीर को कहा कि यह तो बहुत ही खतरनाक जुर्म है। अपने न्यायाधीशों से कहा, कठिन से कठिन सजा खोजो। अगर यह भी सजा हो कि इसको फांसी देना पड़े तो फाँसी दो। लेकिन न्यायाधीशों ने एक सप्ताह विचार किया और कहा कि नहीं, फांसी देने को हम बहुत बड़ी सजा नहीं मानते, हमने और दूसरी सजा खोजी है। बादशाह ने कहा, हैरान करते हो मुझे तुम, फाँसी से और कठिन सजा क्या हो सकती हैं? उन्होंने कहा, कि तीनों औरतों के साथ इस आदमी को इकट्ठा रहने

दो। तीनों औरतों को साथ रहने दो इसके। कहते हैं, इक्कीसवें दिन उस आदमी ने आत्म हत्या कर ली। और वह चिट्ठी लिखकर रख गया कि यह सजा मुझे तो दी, लेकिन कभी अब किसी और को मत देना। इससे तो फांसी बेहतर थी।

मौत इतनी बुरी नहीं है, जीवन जितना बुरा हो सकता है। जीवन के बुरे होने की सम्भावना बहुत ज्यादा है। मौत के बुरे होने की सम्भावना बहुत ज्यादा नहीं है। मौत तो सिर्फ, द्वार का बन्द हो जाना है। प्रभु से हीन जीवन ऐसा जीवन है, जिनमें चारों तरफ हमारे, सब तरह के दुश्मन इकट्ठा हो जाते हैं। उसके पास तो तीन औरतें थीं, हमारे पास तीन हजार औरतें इकट्ठी हो जाती हैं। औरतों का मतलब, क्रोध इकट्ठा हो जाता है, बेईमानी इकट्ठी हो जाती है, चोरी इकट्ठी हो जाती है, हिंसा इकट्ठी हो जाती है। सब उपद्रव इकट्ठे हो जाते हैं और उसके बीच हमें जीना पड़ता है। एक प्रभु का साथ छूटा, कि चारों तरफ जीवन में सिवाय उपद्रव के और कुछ नहीं बचता। क्योंकि जो आदमी प्रभु की तरफ पीठ करेगा, उसने अपने आप अंधेरे की तरफ आँखें कर लीं। अब वह अन्धेरे में, और अन्धेरे में, और अन्धेरे में उतरेगा। जिसने प्रभु का साथ छोड़ा, उसने अपने हाथ से दुर्गुणों को निमंत्रण दिया। जिसने प्रभु का साथ छोड़ा, उसने अपने हाथ से गड्ढों में, पतन में और नर्कों में उतरने का इन्तजाम किया।

प्रार्थना करना बड़ा कठिन है

तो कृष्ण कहते हैं, मूढ़ हैं जगत् में ऐसे, दुष्टजन हैं वे, नासमझ हैं, असात्विक भावनाओं से भरे हुए हैं, वे मेरी प्रार्थना नहीं करते। लेकिन आप से मैं एक बात कह दूँ, इससे आप यह मत समझना कि जो जो प्रार्थना करते हैं, वह इन मूढ़ों में नहीं हैं। क्योंकि जरूरी नहीं है कि आप प्रार्थना करते वक्त, प्रार्थना ही कर रहे हो। प्रार्थना करनी बड़ी कठिन है। इसलिए आप एकदम निश्चिंत होकर मत बैठ जाना कि यह किसी और की बात हो रही है, मैं तो रोज मन्दिर जाता हूँ, मैं तो प्रार्थना करता हूँ। जरूरी नहीं है, आपकी प्रार्थना, प्रार्थना हो।

मैंने सुना है, एक स्त्री के पास एक तोता था, नर तोता, लेकिन वह गाली गलौज सीख गया था। जिससे खरीदा था, उसकी एक होटल थी और वहाँ सब तरह के लोग आते जाते थे, वह गाली गलौज सीख गया था। वह स्त्री

बड़ी परेशान थी, क्योंकि घर में मेहमान आते और वह बेहूदी बातें बोल देता। उसने अपने पड़ोस के पादरी को, चर्च के पादरी को कहा कि कुछ उपाय करो, तुम तो सब कुछ जानते हो। आदमियों तक को बदल देते हो, यह तो तोता है। फिर दोहराऊँ उसने कहा, आदमियों तक को बदल देते हो, यह तो तोता है। इसे थोड़ा उपदेश दो, जिससे यह बदल जाय।

पादरी ने कहा, यह तो मेरी भाषा न समझेगा लेकिन मेरे पास एक मादा तोता है। वह दिन रात प्रार्थना किया करती है, चौबीस घण्टे चर्च में उसकी प्रार्थना गूँजती रहती है, तुम उसे ले जाओ, दोनों को सत्संग में रख दो। सत्संग का असर तो पड़ता ही है। निश्चित पड़ता है, लेकिन किस तरफ से पड़ेगा, कहना मुश्किल है। गुरू शिष्य को ले जायेंगे स्वर्ग की तरफ, कि शिष्य गुरू को ले जायेंगे नर्क की तरफ, कहना मुश्किल है। प्रभाव तो जरूर पड़ता है।

खैर, स्त्री को बात जँच गयी। वह अपने नर तोते को ले आयी। एक ही पिंजरे में दोनों को बन्द कर दिया। दोनों दूर बैठ गये, देखे कि क्या चर्चा चलती है। मादा तोता थोड़ी देर चुपचाप बैठी रही, नर तोता भी थोड़ी देर चुपचाप बैठा रहा। फिर उस नर तोते ने कहा क्या ख्याल है, डीयर बेबी, ह्वाट डू यू थिंक एबाउट लविंग, प्रेम के बाबत क्या ख्याल है। उस मादा तोते ने कहा, इट इज ओके किड, बिल्कुल ठीक है, ह्वाट डू यू थिंक, आई वाज प्रेइंग फार आल दीज इयर्स, क्या सोचते हो तुम, मैं प्रार्थना किसलिए कर रही थी इतने वर्षों से? एक तोता मिल जाय। यह प्रार्थना जो वर्षों से चल रही थी उस चर्च में इस मादा तोते की, वह यह प्रार्थना थी कि कहीं से एक तोता मिल जाय। चर्च का पादरी धोखे में था। अधिक चर्च के पादरी धोखे में हैं कि जो लोग प्रार्थना करने आते हैं, वह किसलिए आते हैं।

माँगना, प्रार्थना नहीं है

असली सवाल यह नहीं है कि आप प्रार्थना करते हो, असली सवाल यह है कि किसलिए करते हो। अगर परमात्मा के अतिरिक्त और कोई भी माँग बीच में है, तो वह प्रार्थना परमात्मा की प्रार्थना नहीं है। अगर बीच में धन है, पद है, स्वास्थ्य है, सुख है, तो आपको परमात्मा से कोई भी प्रयोजन नहीं है। आपको प्रयोजन अपने सुख से है। प्रार्थना करते हैं कि शायद परमात्मा

से मिल जाय, तो परमात्मा को भी एक इंस्ट्रूमेंट, एक साधन बना लेते हैं। सच, परमात्मा से भी थोड़ी सेवा लेने की उत्सुकता है, और कुछ भी नहीं है। प्रार्थना कर लेने से प्रार्थना नहीं हो जाती। इसलिए जरूरी नहीं है कि मूढ़ लोग प्रार्थना नहीं करते हों। मूढ़ लोग प्रार्थना करते हैं, लेकिन प्रार्थना कभी नहीं होती। कुछ माँग ही होगी उनकी, छोटी-मोटी, क्षुद्र और कभी सोचेंगे भी नहीं कि क्या माँगने परमात्मा के सामने खड़े हैं। असल में कुछ भी माँगने अगर कोई परमात्मा के सामने खड़ा है, तो प्रार्थना नहीं होगी, क्योंकि प्रार्थना माँग नहीं है।

प्रार्थना का अर्थ ही है, बिना माँगा धन्यवाद। माँग नहीं है। प्रार्थना बड़ी उल्टी चीज है। वह किसी चीज की माँग नहीं है, बल्कि जो परमात्मा ने दिया है, उसके लिए धन्यवाद है, अनुग्रह का भाव है, ग्रेटीट्यूड है। जितना दिया है, वह इतना ज्यादा है, कि उसे धन्यवाद देने की बात है, वह थैंक्स गिविंग है। लेकिन हम उसको धन्यवाद देने कभी नहीं जाते, कि तूने हमें इतना दिया है। हम जाते हैं कहने, कि क्यों मारे डाल रहा है? कुछ भी नहीं है पास। लड़के की नौकरी नहीं लग रही, लड़की की शादी नहीं हो रही है, परीक्षा में फेल हुए जा रहे हैं, धंधा बिगड़ा जा रहा है। सब इस तरह की बातें लेकर हम परमात्मा के सामने जाते हैं। मूढ़ भी प्रार्थना करता है, लेकिन कृष्ण उसकी प्रार्थना को प्रार्थना नहीं मानते, क्योंकि वह परमात्मा को नहीं भजता, वह परमात्मा के बहाने जगत् की चीजों को ही भजता है, वह जगत् को ही भजता है। कठिनाई है, हमारा चित्त जैसा है, वह केवल सांसारिक वस्तुओं को ही भज पाता है।

कभी देखा, एक आदमी एक नयी कार खरीदने की सोचता है, तो रात भर नींद नहीं आती। करवटें बदलता है, फिर कार दिखायी पड़ने लगती है, फिर करवट बदलता है, फिर कार दिखायी पड़ने लगती है। हजार रंग दिखायी पड़ते हैं, हजार ढंग दिखायी पड़ते हैं, महीनों सो नहीं पाता। यह जो चित्त है, अगर इसको आप मंदिर में ले जायें, तो प्रार्थना तो जरूर करेगा, लेकिन इसे दिखाई कार ही पड़ेगी। इसे कुछ और दिखायी नहीं पड़ सकता। चित्त की भाषाएँ हैं।

हम वही माँगेंगे, जो माँगते रहे हैं

सुना है मैंने, एक आदमी ने एक घोड़ा खरीदा। बेचने वाले ने बहुत दाम बताये। आदमी ने पूछा, इतने दाम की बात क्या है ? उसने कहा, यह घोड़ा बहुत अद्‌भुत है। एक तो, यह तूफान की चाल से चलता है और इससे भी बड़ी बात यह है कि इसकी चाल तो तेज है ही अक्सर सवार गिर जाता है। अगर कभी तुम गिर जाओ, तो यह तुम्हें वहीं, स्थान पर सुलाकर, डाक्टर को भी बुला लाता है। उस आदमी ने कहा, चमत्कार। उसके दिल में भी बहुत दिन से घोड़े लेने का इरादा था, उसने घोड़ा खरीद लिया, दाम भी चुकाये। उसने सोचा कि पहले दिन प्रयोग करके भी देख लें।

घोड़े पर बैठा, घोड़ा सचमुच तूफान की तरह दौड़ा। और दौड़ में उसने एक गड्ढे में उस आदमी को गिराया। जब वह आदमी गिरा तो उसने सोचा, कि आधी बात तो पूरी हो गयी, अब आधी देखें। घोड़ा उसे गिराकर फौरन लौटा। उसने सोचा, हैरानी की बात है और थोड़ी देर में घोड़ा डाक्टर को लेकर आ गया। फिर दो दिन बाद जब उस आदमी को होश आया, तो घोड़े का मालिक उसके पास आया और उसने कहा, कहो भाई, संतुष्ट तो हो ? उसने कहा, संतुष्ट तो बहुत हूँ, हाथ पैर टूट गये। पर उसने कहा, देखा, घोड़ा डाक्टर को बुलाकर लाया और उसने कहा, बिल्कुल लाया लेकिन एक ही गलती हो गयी, वेटरनरी डाक्टर को बुला लाया। उसने कहा, घोड़ा तो घोड़ा ही है, उसको आदमियों के डाक्टर का कोई पता नहीं है, वह घोड़ों के डाक्टर को ही लिवा लायेगा। यह तो तुम्हें पहले ही समझ लेना था, उस बेचने वाले ने कहा, यह तो साफ ही है।

यह जो हम सबकी भाषाएँ हैं। घोड़ा ठीक ही है, कि वेटरनरी डाक्टर को बुला लाया। यह हमारा जो चित्त है, वह जब प्रार्थना करने जायेगा, तो उसकी अपनी भाषा है, वह वेटरनरी डाक्टर को बुला लायेगा, वह परमात्मा तक नहीं पहुँचेगा। वह उन चीजों तक पहुँच पायेगा, जिन चीजों से उसके सम्बन्ध रहे हैं, जिन चीजों से उसका परिचय है, जिन चीजों को उसने चाहा है। अगर परमात्मा भी मिल जाय अचानक हमारे चित्त को, तो हम वही चीजें माँगेंगे जो हम माँगते रहे हैं। उस मौके को भी हम खो देंगे। अगर परमात्मा, सोचें जरा अपने मन में, कि आज रात परमात्मा आपके बिस्तर के

पास आकर खड़ा होकर जगाये कि उठिये, क्या चाहिए ? तो जरा सोचें अपने मन में, आपको फौरन पता चल जायेगा कि आप क्या माँगेंगे। परमात्मा को कोई माँगेगा ? इस पर बहुत संदेह है, क्योंकि जिसने कभी नहीं माँगा, वह आज रात अचानक नहीं माँग पायेगा।

वही है बुद्धिमान, जो इस जीवन में परमात्मा को खोज लेता है

कृष्ण कहते हैं, मूढ़ है वह व्यक्ति। मूढ़ मुझे नहीं भजते हैं। फिर मुझे कौन भजता है ? जिज्ञासु, मुमुक्षु, वे सात्विक लोग, वे सदाचरण वाले लोग, बुद्धिमान मुझे भजते हैं। सच में ही, वही आदमी बुद्धिमान है, जो इस जगत् के अवसर का उपयोग प्रभु की झलक पाने में कर ले। उसके अलावा कोई भी बुद्धिमान नहीं है। वही आदमी बुद्धिमान है, जो इस जीवन के अवसर का उपयोग, जीवन के परम सत्य की खोज में कर ले। बाकी कोई आदमी बुद्धिमान नहीं है। बाकी सभी बुद्धिहीन हैं।

जीवन उन चीजों को इकट्ठा करने में भी गँवाया जा सकता है, जिन चीजों को पाकर कुछ भी नहीं मिलता। और हम सब वैसा ही गँवाते हैं। जीवन उन चीजों की खोज में नष्ट किया जा सकता है, जिन्हें हम न पायेंगे, तो भी दुखी होंगे, और पा लेंगे तो भी दुखी होंगे। सिकन्दर जीत ले सारी दुनिया, तो भी सुखी नहीं हो पायेगा क्योंकि सारी दुनिया को जीतने से सुख का कोई भी सम्बन्ध नहीं है। न जीतें तो दुखी हो, जीतने की कोशिश करें, तो परेशान हो। और फिर जीत लें, तो जीत से कुछ न पायेंगे। सब मिल जाय, हमारा मन चाहता है, सब मिल जाय, तो भी हम अचानक पायेंगे कि भीतर सब कुछ खाली रह गया, कुछ मिला नहीं। जीवन के गहरे मूल्य तृप्त नहीं हुए और जीवन की गहरी प्यास, प्यास ही रह गयी और जीवन की असली भूख, भूख ही रह गयी, और प्राण अब भी पुकार रहे हैं किसी वर्षा के लिए। बादल बरसे, बहुत गर्जन हुआ, बिजलियाँ चमकीं, सागर भर गये नीचे, लेकिन वह अमृत नहीं बरसा, जिसकी तलाश थी। परमात्मा के अतिरिक्त वह अमृत कहीं और नहीं है। परमात्मा से क्या मतलब ?

परमात्मा से मतलब है, जीवन का जो गहनतम सत्य है, वही। जन्म के पहले भी जो मेरे भीतर था और मृत्यु के बाद भी जो मेरे भीतर होगा, वही। जब मैं जागता हूँ, तब भी मेरे भीतर जो है। और जब मैं सो जाता हूँ, तब

भी मेरे भीतर होता है वही। जब मैं बच्चा हूँ तब और जब मैं जवान हूँ तब, और जब बूढ़ा हो जाऊँगा तब। तब भी जो नहीं बदलता मेरे भीतर, वही है। वह जो सारे परिवर्तन के बीच, शाश्वत है, वह जो सारी उथल पुथल के बीच स्थिर है, वह जो सारी गतियों के बीच, सारी आँधियों के बीच अडिग है, वह जो सब जीवन और मृत्यु के बीच सदा एक सा है, उस एक की खोज, परमात्मा की खोज है। निश्चित ही, बुद्धिमान वही है, वाइज वही है, मेधावी वही है, जो इस जीवन में उसे पा ले।

हम कंकड़-पत्थर ही बीनने में जीवन बिता देते हैं

हम करीब करीब ऐसे लोग हैं, कि सागर के तट पर गये हों, अवसर मिला हो और सागर में ही गिर पड़ने को हों, लेकिन हम किनारे पर, रेत में जो सीप और चमकदार पत्थर पड़े रहते हैं, उनको बीनने में बिता रहे हैं। वह हम सब बीन कर इकट्ठा ढेर कर लेंगे। जीवन हाथ से खो जायेगा, ढेर वहीं पड़ा रह जायेगा।

क्या खोज रहे हैं हम?

हमारी खोज वैसी है; रामकृष्ण कहा करते थे कि चील अगर आकाश में भी उड़ रही हो, तब भी तुम यह मत सोचना, कि वह आकाश में उड़ती है, उसकी नजर तो नीचे कचरे घरों में कोई मांस का टुकड़ा पड़ा हो, कोई हड्डी पड़ी हो, उस पर लगी रहती है। आकाश में उड़ती चील के धोखे में मत आ जाना, कि वह आकाश में उड़ रही है इसलिए आकाश में उड़ रही होगी। उसका चित्त तो किसी हड्डी पर लगा रहता है, जो किसी कचरे घर पर पड़ी होगी।

जीवन का विराट आकाश मिलता है हमें, जिसमें हम परमात्मा के आलिंगन को उपलब्ध हो सकते हैं। बड़ी सम्पदा हमारी हो सकती है, जिसका कोई अन्त नहीं। कुबेर के खजाने चुक जायँ और सोलोमन के खजाने छोटे पड़ जायँ। पर हमारे लिए सभी सिद्ध होते हैं नदी के किनारे बीने गये कंकड़ पत्थर, रंगीन, बच्चों के खिलौने। लेकिन एक और सम्पदा है, जिसे पाते ही जीवन उस रौनक को उपलब्ध होता है जिसका कोई अन्त नहीं। जिसे मृत्यु नहीं बुझाती, जिसे अंधेरा नहीं मिटाता, जिसे दुख नहीं मिटाता, जिसे पीड़ा नहीं छूती, जो अस्पर्शित रह जाती है। उस सम्पदा को पाया जा सकता है इसी

जीवन में। निश्चित ही, जो उस दिशा में न चले, उसे कृष्ण कैसे बुद्धिमान कहें? वह कहेंगे, बुद्धिमान हैं वे, वे ही हैं बुद्धिमान जो मुझे भजते हैं। इसीलिए भजने का, प्रभु को स्मरण करने का इतना आग्रह है। क्या चाहते हैं? क्या इशारा है उनका? एक छोटी सी कहानी से समझाने की कोशिश करूँगा।

मैं तो भोग के बीच, भजन करता रहता हूँ

सुना है मैंने, एक संन्यासी को उसके गुरु ने कहा, कि तू अब यहाँ न सीख पायेगा। हम जो सिखा सकते थे, सिखाया, लेकिन तू उसके लिए बहरा है। तू यहाँ से जा और देश की राजधानी में सम्राट के पास पहुँच जा। अगर कुछ सीख सकता है तो अब वहीं। वह संन्यासी यात्रा करके सम्राट के द्वार पर पहुँचा। बड़ी मुश्किल में पड़ा। सम्राट को देखा, रात हो गयी थी, दरबार भरा था, नर्तकियाँ नाचती थीं, अर्धनग्न स्त्रियाँ नाचती थीं, शराब ढोली जा रही थी, सम्राट बीच में बैठा था। उस संन्यासी ने कहा, यहाँ मुझे सीखने भेजा है! अपने मन में सोचा, अच्छा फँसा, अब कहाँ भागकर जाऊँ? अब इस रात कहाँ ठहरूँगा?

सम्राट ने कहा, इतने चिंतित मत होओ, इतने बेचैन मत होओ। ठीक जगह ही भेजे गये हो। आओ, विश्राम करो रात। जल्दी क्या है लौट जाने की। दो दिन बाद लौट जाना। वह बहुत घबड़ाया। उसने कहा, मैंने तो आपसे कुछ कहा भी नहीं। सम्राट ने कहा, कहने से ही सुनायी पड़ता हो ऐसा कहाँ, तेरे गुरु ने कितना तुझसे कहा, तूने कुछ न सुना। जब कहने से सुनायी न पड़े, तो न कहने से भी सुनायी पड़ सकता है। तू बैठ, तू जल्दी मत कर। रात भोजन करवाया, भोजन के बाद फिर उस संन्यासी ने कहा, एक बात तो कम से कम बता दें? सम्राट ने कहा, जल्दी क्या है? सुबह पूछ लेना। उसने कहा; नहीं रात भर नींद न आयेगी। यह क्या मजा है, मेरे गुरु ने आपके पास भेज दिया; शराबी के पास, नाचगान चल रहा है, यह सब क्या उपद्रव है, मैं संन्यासी, मैं ब्रह्मचारी। मुझे यहाँ कहाँ भेज दिया, आपके पास किसलिए भेजा है, और आप मुझे क्या खाक सिखायेंगे, अभी खुद ही तो सीखे नहीं?

उस सम्राट ने कहा, मैं तो भजन करता रहता हूँ। उसने कहा, क्या खाक भजन होता होगा? यह भजन हो रहा है, शराब ढल रही है, प्याले सरक रहे हैं, स्त्रियाँ नाच रही हैं, यह भजन हो रहा है? तुम मुझे अभी चले जाने दो। ऐसा भजन मुझे नहीं सीखना। सम्राट ने कहा, यह तो भजन नहीं है। लेकिन भजन जारी है। खैर, कल सुबह हम बात कर लेंगे।

बहुत सुन्दर बिस्तर पर उसे सुलाया, वैसे बिस्तर पर वह कभी न सोया हो। बहुत सुखद इन्तजाम किया, सब सुविधा की, जो सम्राट के पास श्रेष्ठतम थी। सुबह जब उठा संन्यासी, सम्राट ने पूछा प्रसन्न तो हैं। कोई अड़चन, कोई तकलीफ तो न थी। उस संन्यासी ने कहा, तकलीफ तो कोई न थी, आराम तो पूरा था लेकिन नींद नहीं लगी। नींद क्यों नहीं लगी? कहा, कि आप भी अजीब आदमी हैं, अच्छा बिस्तर दिया, सब दिया, यह ऊपर एक नंगी तलवार एक धागे से काहे के लिए लटका कर बाँध दी? तो रात भर प्राण संकट में रहे। आँख बन्द करूँ तो तलवार दिखायी पड़े, पता नहीं धागा कब टूट जाय, और पतला धागा? करवट लूँ, तो प्राण संकट में कि पता नहीं, वह तलवार कब टूट जाय। रात भर एक पल सो नहीं सका।

मृत्यु का प्रतिपल स्मरण ही, प्रभु स्मरण बन जाता है

सम्राट ने कहा, मैं तुझे कहता हूँ कि इसे ऐसा कह, कि रात भर तलवार का भजन किया। बिस्तर लुभा न सके, चारों तरफ इत्र की खुशबुएँ थीं, वे सुला न सकीं। कुछ सुला न सका, तलवार का भजन जारी रहा। तुझसे मैं कहता हूँ, स्त्रियाँ नाचती थीं, माना कि वे अर्धनग्न थीं। शराब ढलकायी जाती थी, माना कि लोग शराब पी रहे थे, लेकिन तुझे मैं कहता हूँ, कि ठीक तलवार की तरह मौत मेरे ऊपर लटकी है। तेरे ऊपर ही कल रात लटकी थी ऐसा नहीं, सबके ऊपर लटकी है, कच्चे धागे में ही लटकी है। तुझे दिखायी पड़ रही थी, क्योंकि मैंने प्रत्यक्ष लटका दी थी। मौत की तलवार दिखाई नहीं पड़ती, सबके ऊपर लटकी है। पर उसने कहा, इससे भगवान् के भजन का क्या मतलब? क्या जिस तरह मैं तलवार का भजन करता रहा रात भर, अगर आपको मौत इस तरह लटकी दिखायी पड़ती है, तो आप मौत का भजन कर रहे होंगे?

उस सम्राट ने कहा, नहीं, जिस दिन मौत प्रतिपल दिखायी पड़ने लगे, जिस दिन मौत चारों तरफ दिखायी पड़ने लगे, उस दिन शरीर का सब कुछ मरेगा, यह दिखायी पड़ने लगेगा। उस दिन पदार्थ के जगत् में सब विनष्ट होगा, यह दिखायी पड़ने लगेगा। उस दिन उसका स्मरण शुरू हो जाता है जो विनष्ट नहीं होता, जो अमृत है। मौत तो तलवार की तरह लटकी है, लेकिन मेरे हृदय में अब मौत का स्मरण नहीं है, क्योंकि मौत तो है। अब मेरे मन में उसका स्मरण है, जो मौत के भी पार है और जो मौत से भी नष्ट नहीं होता। जो मौत के बीच से भी गुजर जाता है अस्पर्शित।

प्रभु स्मरण का अर्थ है, अमृत्व का स्मरण, चैतन्य का स्मरण, परम सत्ता का स्मरण।

और वह स्मरण ऐसा नहीं है कि आप पाँच क्षण को अपने घर में बैठकर दोहरा लें और हो गया। वह स्मरण ऐसा है, कि आपके रोयें रोयें में, श्वाँस श्वाँस में, हृदय की धड़कन धड़कन में, प्रवेश कर जाय। उठें तो उस भजन में, सोयें तो उस भजन में, चलें तो उस भजन में, तो बुद्धिमत्ता है।

जिन्होंने मुझे पा लिया, उन्होंने सब पा लिया

कृष्ण कहते हैं दो तरह के लोग हैं इस जगत् में। मूढ़ जन हैं, जो मेरी तरफ आँख नहीं उठाते, जब कि मैं उन्हें निहाल कर दूँ, और बुद्धिमान हैं, जो मेरे अतिरिक्त और कहीं नजर नहीं ले जाते। क्योंकि मेरी तरफ नजर उठी, कि फिर और कोई जगह देखने योग्य नहीं रह जाती। मेरी तरफ नजर उठी, कि फिर और कुछ पाने योग्य नहीं रह जाता। मुझे जिन्होंने पा लिया, उन्होंने सब पा लिया है। यह कृष्ण कह रहे हैं अर्जुन से, कि अर्जुन समझे, कि मूढ़ के जगत् से यात्रा करे बुद्धिमान के जगत् की तरफ।

कोई मूढ़ ऐसा नहीं है, कि बुद्धिमान न हो सके, और कोई बुद्धिमान ऐसा नहीं है, कि कभी न कभी मूढ़ न रहा हो।

सब संतों का अतीत है और सब पापियों का भविष्य है।

और पाप से गुजरे बिना, कोई संतत्व तक नहीं पहुँचा है।

और संतत्व तक जो भी पहुँचा है, पाप की अग्नि से निकला है। इसलिए कभी ऐसा मन में सोचकर मत बैठ जाना कि मैं तो मूढ़ हूँ। दुनिया में कोई मेधा नहीं है, जो मूढ़ता से न गुजरी हो। वह अनिवार्य शिक्षा है। और दुनिया में कोई ऐसा मूढ़ नहीं है जिसके भीतर वह बीज न छिपा हो, जो मेधा बन जाय, प्रतिभा बन जाय, खिल जाय और बुद्धिमान हो जाय। फर्क सिर्फ रूपांतरण का है, एक छलांग का। एक एबाउट टर्न, एक बार पूरा घूम जाना। जिस तरफ मुँह है उस तरफ पीठ और जिस तरफ पीठ है उस तरफ मुँह हो जाना। बस, इतने में ही मूढ़ बुद्धिमान हो जाता है। इतनी सी घटना से मूढ़ बुद्धिमान हो जाता है, जड़ता गिर जाती है और चैतन्य का जन्म हो जाता है। पर्दे हट जाते हैं और रहस्य के द्वार खुल जाते हैं।

लेकिन हम हिप्नोटाइज्ड हैं, हम बिल्कुल सम्मोहित हैं चीजों से। हम इस बुरी तरह से सम्मोहित हैं जिसका कोई हिसाब नहीं। हाथ कुछ नहीं लगता, अनुभव तक नहीं लगता हाथ। जिन्दगी भर इस उपद्रव के बाद, अनुभव भी हाथ नहीं लगता।

अनुभव हमारे जीवन में पैदा ही नहीं हो पाता

सुना है मैंने, कि एक आदमी ने नई नई किसी के साथ साझेदारी की। कोई पूछता था, कि फिर कोई साझेदार मिल गया तुम्हें, क्योंकि वह आदमी कई साझेदारों को धोखा दे चुका था। फिर कोई साझेदार मिल गया तुम्हें? उसने कहा, फिर कोई साझेदार मिल गया, जमीन पर नासमझों की कोई कमी नहीं है। लेकिन कोई साझेदार मेरे साथ रहकर नुकसान में कभी नहीं पड़ता। उस आदमी ने कहा, यह तुम क्या कह रहे हो, हमने तो अब तक यही सुना कि जो भी तुम्हारे साथ में रहता है, नुकसान में पड़ता है। उसने कहा, तुम समझो, फिर तुम कभी ऐसा न कहोगे। अब यह जो नया साझीदार है, पूरी पूंजी लगा रहा है। पूरी पूंजी वह लगा रहा है, पूरा अनुभव मैं लगा रहा हूँ। फिफ्टी फिफ्टी समझो। आधा मेरा है, आधा उसका। अनुभव मेरा, धन उसका। और तुमसे मैं कहता हूँ, पाँच साल में अनुभव उसके पास होगा और धन मेरे पास। लेकिन तुम समझते हो, मैं ही फायदे में रहूँगा, वह फायदे में नहीं रहेगा।

अनुभव, हम जिन्दगी में कई बार जीवन का धन गँवा चुके हैं और अब तक उस अनुभव को उपलब्ध नहीं हुए, जो वह साझीदार कह रहा था, कि पाँच साल में मेरे मित्र को हो जायेगा। हमने न मालूम जीवन के धन को कितनी बार गँवाया है। हम किसी अनुभव को उपलब्ध नहीं हुए, हम फिर वही करते हैं। हम फिर वही करते हैं, हम फिर वही करते चले जाते हैं। जैसे अनुभव जैसी चीज कोई हमारे जीवन में पैदा ही नहीं होती। कल भी वही किया, परसों भी वही किया, पिछले वर्ष भी वही किया, आने वाले वर्षों में भी आप वही करेंगे। क्या मतलब है इसका? कहीं कोई चीज है जैसे, बिल्कुल हम विक्षिप्त की तरह सम्मोहित हैं संसार के साथ, बिल्कुल अन्धे हैं पागल की तरह, आब्सेस्ड हैं, नजर नहीं हटती, जैसे किसी ने नजर बाँध दी हो, वशीकरण हो गया हो।

इसलिए कृष्ण कहते हैं, कि मेरी माया में डूबे हुए, मेरे सम्मोहन में डूबे हुए। प्रकृति की दुस्तर माया में डूबे हुए मूढ़ जन, मेरा भजन नहीं कर पाते, हिप्नोटाइज्ड बाई नेचर, बिल्कुल हिप्नोटाइज्ड हैं, प्रकृति के गुणों से सम्मोहित हो गये हैं। और मेरा स्मरण नहीं कर पाते। बस प्रकृति का ही स्मरण करते हैं। उन्हें कुछ मिलने वाला नहीं है। लेकिन अगर अनुभव भी मिल जाय तो बहुत।

जिसे अनुभव मिल जाता है, वह तत्काल रूपांतरित हो जाता है

और जिसे अनुभव मिल जाता है, वह तत्काल रूपांतरित हो जाता है।

एक मित्र मेरे पास आये थे, वह कह रहे थे कि दूसरी शादी करने का विचार कर रहा हूँ। मैंने उनसे कहा, कि जहाँ तक मुझे याद आती है, तुम छः महीने पहले भी जब आये थे, तुम्हारी पत्नी जिन्दा थी, तब तुम तलाक देने का सोचते थे। उन्होंने कहा, हाँ, उस स्त्री को तो तलाक देने का सोचता था, ऊब गया था। और मैंने कहा, जहाँ तक मुझे याद है, तुमने कहा था, अगर मेरा किसी तरह इस स्त्री से तलाक हो जाय, तो मैं संन्यास ही ले लूँ। लेकिन अब यह स्त्री अपने आप विदा हो गयी। अब तुम दूसरी शादी की क्यों सोच

रहे हो ? मैंने उन्हें कहा, कि किसी मनोवैज्ञानिक से भी कोई यही पूछ रहा था, तो उस मनोवैज्ञानिक ने कहा, कि इससे मालूम पड़ता है, कि यह अनुभव के ऊपर आशा की विजय है।

अनुभव के ऊपर आशा की विजय।

अनुभव तो यही है, वह आदमी कह रहा है, कि अब मैं बचना चाहता हूँ किसी तरह उस कलह से, जिसका नाम शादी था, उस उपद्रव से। लेकिन फिर करने का मन कह रहा है, अनुभव के ऊपर आशा जीत रही है फिर। इस आशा से, कि शायद दुबारा वैसा न हो।

इसी आशा में हम हजारों जन्म गँवा देते हैं।

फिर खोजेंगे धन, शायद इस बार धन मिल जाय, फिर खोजेंगे पद, शायद इस बार पद मिल जाय, फिर खोजेंगे मकान, शायद इस बार मकान मिल जाय। लेकिन कभी मकान नहीं मिलता है, मौत मिलती है, कब्र मिलती है। और कभी धन नहीं मिलता, ढेर जरूर लग जाता है धन का, भीतर आदमी निर्धन का निर्धन रह जाता है। कभी पद नहीं मिलता, सब पद मिल जाते हैं, भीतर की हीनता उतनी की उतनी रह जाती है, उसमें कहीं कोई अन्तर नहीं पड़ता।

मनोवैज्ञानिक कहते हैं, कि राजनीतिक जितने ज्यादा इनफीरियारिटी काम्प्लेकस से, हीनता की ग्रंथि से, पीड़ित होते हैं, इतना कोई भी पीड़ित नहीं होता है। सच तो यह है कि हीनता की ग्रंथि से पीड़ित होते हैं, इसीलिए पदों की तलाश पर निकलते हैं।

लेनिन के पैर, जब कुर्सी पर बैठता था, साधारण कुर्सी पर, तो जमीन तक नहीं पहुँचते थे। ऊपर का हिस्सा बड़ा था, नीचे का हिस्सा छोटा था। मनोवैज्ञानिक कहते हैं, विशेषकर एडलर, कि लेनिन यह दिखाने के लिए 'मैं' कुछ हूँ भारी क्रांति की। वह जो छोटे पैर थे, उनकी हीनता मन में ही उसके, भारी थी। हिटलर ना कुछ था। फौज में एक साधारण से सिपाही की तरह उसे निकाला गया। वह दिखाने को उत्सुक हो गया कि 'मैं' भी कुछ हूँ।

जिन लोगों के भीतर बहुत हीनता की ग्रंथि है, वह किसी बड़े पद पर खड़े होकर, दुनिया को दिखाना चाहते हैं, कि हम कुछ हैं, समबडी।

लेकिन उससे कोई अन्तर नहीं पड़ता। हीनता की ग्रंथि भीतर रहती है, सोना ऊपर सज जाता है, पद ऊपर हो जाते हैं। रेशम लग जाता है, मखमल लग जाती है, गोटा-सितारा लग जाता है। वह भीतर जो हीन आदमी था, हीन का हीन बना रह जाता है। लेकिन कितने ही अनुभव के बाद भी हमारे हाथ, अनुभव की सम्पदा नहीं लगती। क्योंकि अनुभव की सम्पदा लग जाय, तो वह जो सम्मोहन है प्रकृति का, वह तत्काल टूट जाता है। और प्रकृति का सम्मोहन टूटा, कि आपकी आँखें उस तरफ उठती हैं, जिस तरफ प्रभु है।

सम्मोहन से बँधे रहना मूढ़ता है।

प्रभु की ओर आँखें उठ जाय, उसका भजन शुरू हो जाय, उसका नर्तन शुरू हो जाय, उसका कीर्तन भीतर जग उठे, जीवन एक नृत्य बन जाय, प्रभु को समर्पित हो जाय, उसके चरणों में झुका हुआ, तो परम आनन्द की उपलब्धि होती है। लेकिन वह सम्मोहन टूटे, तभी संभव है।

तेषां ज्ञानी नित्ययुक्त एकभक्तिर्विशिष्यते ।
प्रियो हि ज्ञानिनोऽत्यर्थमहं स च मम प्रियः ॥१७॥

उनमें भी नित्य मेरे में एकीभाव से स्थित हुआ अनन्य प्रेम भक्ति वाला ज्ञानी भक्त अति उत्तम है क्योंकि मेरे को तत्त्व से जानने वाले ज्ञानी को मैं अत्यन्त प्रिय हूँ और वह ज्ञानी मेरे को अत्यन्त प्रिय है ।

एकी रूप से, अनन्य भाव से, तत्त्व को समझकर, मुझे जो प्रेम करता है, वह ज्ञानी उत्तम है । दो बातें हैं, एकी भाव से, जरा भी फासला नहीं रखता जो, मेरे और अपने बीच । किंचित मात्र भेद नहीं मानता जो, अपने और मेरे बीच । यह बड़ी कठिन बात है । इसे थोड़ा समझना होगा ।

प्रेम में हम कुछ भी नहीं छिपाते

क्या कभी आपने ख्याल किया कि प्रेम जिससे भी हमारा होता है, हम उससे कुछ भी नहीं छिपाते । अगर कुछ भी छिपाते हैं, तो मतलब यही हुआ कि प्रेम नहीं है, पूरा नहीं है । और पूरा ही प्रेम होता है, अधूरा तो कोई प्रेम होता नहीं । प्रेम का अर्थ है, जिस व्यक्ति से मेरा प्रेम है, उसके साथ मैं ऐसे ही रहूँगा, जैसे मैं अपने ही साथ हूँ । उससे मैं कुछ भी छिपाऊँगा नहीं । न मेरा कोई पाप, न मेरा कोई झूठ, न मेरी कोई वृत्ति । उससे मैं कुछ भी नहीं छिपाऊँगा । उसके सामने उघड़कर बिल्कुल नग्न हो जाऊँगा, मैं जैसा हूँ । क्या परमात्मा के सामने कभी आप उघड़कर पूरे नग्न हुए हैं ?

ईसाइयत ने, क्रिश्चियनिटी ने कन्फेशन ईजाद किया इसी सिद्धान्त के आधार पर । आधार यही है कि तब तक प्रार्थना पूरी नहीं हो सकती, जब तक कि किसी ने अपने पापों को स्वीकार न कर लिया हो, अन्यथा पाप का छिपाना ही फासला रहेगा, डिस्टेंस रहेगा ।

एक आदमी खड़ा है भगवान् के मन्दिर में जाकर और वह जान रहा है कि मैंने चोरी की है । पुलिस से तो छिपा रहा है, घर के लोगों से छिपा रहा है, गाँव के लोगों से भी छिपा रहा है, भगवान् से भी छिपा रहा है । खड़ा है चन्दन तिलक वगैरह लगाकर । उस चन्दन तिलक के पीछे चोर खड़ा है । और भगवान् की प्रार्थना कर रहा है बड़े जोर शोर से । तो फासला भारी है । इसलिए ईसाइयत ने कीमती तत्त्व विश्व के धर्म में जोड़ा और वह तत्त्व था कन्फेशन, स्वीकारोक्ति ।

पहले अपने पाप को स्वीकार, फिर पीछे प्रार्थना कर ।

ताकि कोई फासला न रह जाय, तुम नग्न और उघड़कर एक हो जाओ । कम से कम परमात्मा से तो पूरी बात कह दो, कम से कम उसके सामने तो वही हो जाओ, जो तुम हो ।

सारी दुनिया में तो धोखा हम चलाते हैं । जो हम नहीं होते वैसा दिखाते हैं । कमजोर आदमी सड़क पर अकड़ कर चलता है, हालांकि सब अकड़ कमजोर आदमी की गवाही देती है । ताकतवर आदमी क्यों अकड़ कर चलेगा, किससे अकड़कर चलेगा ? कमजोर आदमी अकड़कर चलता है । निर्बल आदमी साहस की बातें करता है । कुरूप आदमी सौंदर्य के प्रसाधनों का उपयोग करता है, इसलिए दुनिया जितनी कुरूप होती जाती है, उतने सौंदर्य के साधन की ज्यादा जरूरत पड़ती है । क्योंकि वह कुरूपता को छिपाना है सब तरफ से ।

स्त्रियों को कुरूपता का बोध ज्यादा भारी है । क्योंकि शरीर का बोध थोड़ा पुरुष से ज्यादा है । बाडी कांसेसनेस थोड़ी ज्यादा है । तो अपने बैग में ही सब सामान लिये हुए हैं । उनका सारा सौंदर्य उनके बैग में बन्द है । जरा मौका मिला उनको, कि फिर अपने को तैयार कर लेना है । अपने

पर जरा भरोसा नहीं है। वह जो बैग में थोड़ा सामान पड़ा है, उस पर सारा भरोसा है। एक पतली पर्त है सौंदर्य की जिसके पीछे कुरूपता अपने को ओट में लेती है।

हम दुनिया को तो धोखा दे रहे हैं। पर यह धोखा क्या परमात्मा के पास भी ले जाइयेगा ? क्या वहाँ भी इसी धोखे की शकल को, इसी मास्क को, इस मुखौटे को लेकर खड़े होंगे ? क्या वहाँ भी परमात्मा को दिखलाने की कोशिश करेंगे वह, जो कि आप नहीं हैं। तो फिर एकीभाव न रहा। फिर प्रेम नहीं है, प्रार्थना नहीं है।

कृष्ण कहते हैं, एकीभाव को उपलब्ध हुआ, जो छिपाता ही नहीं कुछ। जैसे छोटा बच्चा बगल के मकान से फल चुराकर खा आया है और दौड़ता चला आ रहा है अपनी माँ को कहने, कि देखा, आज पड़ोसी के घर में घूस गया और फल खाकर चला आ रहा हूँ। ऐसा सरल, इतना इनोसेन्ट, जो परमात्मा के सामने बिल्कुल अपने को प्रगट कर देता है, तो एकीभाव निर्मित होता है, नहीं तो एकीभाव निर्मित नहीं होता।

प्रत्येक आदमी एक बड़ी दुनिया से लड़ रहा है

एक आदमी अपने विवाह का पच्चीसवाँ वर्ष दिन मना रहा था, पच्चीस वर्ष पूरे हो गये थे। एक मित्र ने उससे पूछा, कि पच्चीस वर्ष तुम पति और पत्नी दोनों इतनी शान्ति से रहे हो, तुम दोनों के बीच भी कुछ ऐसी बातें हैं क्या, जो तुम्हारी पत्नी तुम्हारे बाबत न जानती हो और तुम तुम्हारी पत्नी के बाबत न जानते हो। उस आदमी ने कहा, कि ऐसी बहुत सी बातें हैं जो पत्नी सोचती है उसके बाबत मुझे पता नहीं है, हालाँकि मुझे पता है और इसीलिए मैं सोचता हूँ ऐसी भी बहुत सी बातें जरूर होंगी, जो मैं सोचता हूँ, मेरी पत्नी को पता नहीं है, लेकिन उसे पता है। अगर तुम सच ही पूछ रहे हो, तो यह पच्चीस साल हम साथ रहे, यह कहना कठिन है। हम इन पच्चीस सालों में अपने अपने मुखौटों को सँभालने में लगे रहे। हम एक दूसरे को दिखाने की कोशिश करते रहे हैं, जो हम नहीं हैं। और यही हमारा दुख है और यही हमारी पीड़ा है। यही हमारी परेशानी है।

हालाँकि पच्चीस साल जिसके साथ रहो, वह सब जान लेता है, मुखौटे के पीछे जो छिपा है, उसको भी जान लेता है क्योंकि कभी नींद में मुखौटा उखड़ जाता है, कभी क्रोध में उतर जाता है। कभी बाथरूम से एकदम जल्दी से बाहर निकल आये, ख्याल न रहा, मुखौटा नहीं होता चेहरे पर। कभी मौके-बेमौके जिसके हम साथ रहते हैं, वह झाँक ही लेता है कि पीछे कौन आदमी है। लेकिन फिर भी कोशिश चलती है। बाप बेटे के सामने नहीं खुलता, पत्नी पति के सामने नहीं खुलती, मित्र मित्र के सामने नहीं खुलता। सारी पृथ्वी एक बड़ा डिसेप्शन, एक बड़ा जाल है। और इसीलिए हम इतने परेशान, इतने चिन्तित और इतने बोझिल हैं, क्योंकि सारी दुनिया हमारे खिलाफ है और हम अकेले लड़ रहे हैं। एक एक आदमी इतनी बड़ी दुनिया के खिलाफ लड़ रहा है। इतनी बड़ी दुनिया को धोखा देने में लगा हुआ है, तो लड़ाई भारी है।

परमात्मा के पास तो वही पहुँच सकेगा, जो अपने सब धोखे, अपने मुखौटे, शकलें मंदिर के बाहर छोड़ जाय, भीतर जाकर नग्न खड़ा हो जाय और कह दे कि मैं ऐसा हूँ। एकीभाव बहुत वैज्ञानिक बात है। जब किसी से मैं कुछ भी नहीं छिपाता, तो एकीभाव उत्पन्न होता है। जब तक छिपाता हूं, तब तक दूजापन, दुई, द्वैत, दूसरापन मौजूद रहता है यह एक बात हुई।

तत्त्व को समझकर, जो मेरे पास आता है, उसे मैं प्रेम करता हूँ

दूसरी बात, कृष्ण कहते हैं कि ऐसा एकीभाव, अनन्य भाव और तत्त्व को समझकर, जो ज्ञानी मेरे पास आता है और मुझे प्रेम करता है, उसे मैं भी प्रेम करता हूँ। तत्त्व को समझकर, क्योंकि बहुत बार ऐसा हो जाता है कि कुछ लोग बिना तत्त्व को समझे, प्रेम करते हैं।

तत्त्व का अर्थ है, बिना जीवन के रहस्य को समझे, बिना किसी गहरी अण्डरस्टेंडिंग, बिना किसी समझ के, धर्म की यात्रा पर निकल जाते हैं, तब बड़ी कठिनाई होती है। ऐसे अप्रौढ़ चित्त, ऐसे जुवेनाइल बचकाने चित्त, जिनमें अभी कोई प्रौढ़ता न हो और जो धर्म की यात्रा पर निकल जाते हैं, वे धर्म को तो उपलब्ध होते नहीं, सिर्फ धर्म को ही अप्रौढ़ बनाने में सफल हो पाते हैं।

ऐसा हुआ है चारों तरफ। सारी दुनिया में ऐसा हुआ है। कई बार तो आप जीवन के सत्य को समझकर, धर्म की तरफ नहीं जाते, बल्कि धार्मिक

बातें आपको प्रलोभनपूर्ण लगती हैं इसलिए चले जाते हैं। इसका फर्क आप समझ लें। तत्व को समझ कर जानेवाले का और प्रलोभन से जानेवाले का, क्या फर्क है ?

मैंने आपसे बात कही कि परमात्मा को पाना परम आनन्द है। आपके मन में ग्रीड पकड़ी, लोभ पकड़ा, आपको लगा कि अरे, परमात्मा को पाना परम आनन्द है, तो हम भी पा लें। आपने सोचा कि ठीक है, बुद्ध भी कहते हैं, कृष्ण भी, क्राइस्ट भी, मुहम्मद भी। सब कहते हैं कि उसे पा लेना परम आनन्द है। आपके मन में लोभ जगा, लेकिन आपको पता नहीं, कि वे सब कहते हैं कि लोभ जिसके मन में है वह, उसे न पा सकेगा। अब बड़ी कठिनाई हो गयी। और आप चले मंदिर की तरफ, मस्जिद की तरफ। आपने सोचा कि चलो आनन्द मिलता है, तो हम इसको भी पा लें।

ध्यान को खरीदा नहीं जा सकता

महावीर एक गाँव में ठहरे हैं। उस गाँव का सम्राट श्रेणिक महावीर से मिलने आया है। और उसने महावीर के चरणों पर सिर रखा और उसने कहा कि आपकी कृपा से, झूठ बोल रहा था वह, महावीर के पास ऐसा झूठ नहीं बोलना चाहिए, क्योंकि वही मैं कह रहा हूँ, एकीभाव। नहीं, वह बोला आप की कृपा से, हालाँकि उसकी आँखें, उसका सिर कह रहा था कि मेरे सामर्थ्य से। लेकिन कह रहा था आपकी कृपा से, फार्मल। महावीर के पास फार्मलिटी लेकर नहीं जाना चाहिए, औपचारिकता।

महावीर ने कहा, क्षमा करो, तुम क्या कहने जा रहे हो, मैंने तो तुम पर कभी कोई कृपा नहीं की। उसने कहा, नहीं नहीं, आपकी बिना कृपा के क्या हो सकता है, यह सब राज्य वैभव आपकी कृपा से मिला है। महावीर ने कहा, मुझे मत घसीटो, क्योंकि तुमने न मालूम कितने लोगों की हत्याएँ की हैं। मेरा कोई इससे लेना देना नहीं है। तुम न मालूम कितने लोगों का लहू पी गये हो। इससे मेरा क्या सम्बन्ध है।

नहीं, बोला, बिना आपकी कृपा के क्या हो सकता था। सब आपकी कृपा से हुआ है, लेकिन अभी अभी मुझे पता चला है कि यह सब बेकार है, जब तक ध्यान का आनन्द न मिल जाय। तो मैं आपसे पूछने आया हूँ, कि कितना

खर्च पड़ेगा, मैं खरीद लूँ। ध्यान का आनन्द खरीद लेंगे। ऐसी क्या चीज है, जो मैं नहीं खरीद सकता हूँ। महावीर को कैसी मुसीबत हुई होगी, हम समझ सकते हैं। ऐसी मुसीबत महावीर जैसे लोगों को रोज होती है। वह बेचारा कुछ गलत नहीं कह रहा, वही वेटनरी डाक्टर की भाषा है, वह सब चीजें खरीदता रहा है। जो भी चीज चाहिए खरीद लेता है। सोचा कि ध्यान, सामायिक, महावीर का ध्यान के लिए शब्द है सामायिक, सामायिक कैसे मिल जाय ? मैंने बड़ी तारीफ सुनी है, कि बड़ा आनन्द है। इसको भी खरीद लेंगे।

महावीर ने कहा, ऐसा करो, बड़ा कठिन मामला है, सौदा बहुत मुश्किल है। लेकिन फिर भी तुम कहते हो, खरीद लोगे, तो तुम ऐसा करो, कि तुम्हारे गाँव में मेरा एक भक्त रहता है। एक बहुत गरीब आदमी का नाम महावीर ने लिया, कि वह तुम्हारे गाँव में रहता है, बहुत गरीब आदमी है। वह ध्यान को उपलब्ध हो गया है, वह थोड़ा सा ध्यान तुम्हें बेच देगा। तुम चले जाओ, कीमत पूछ लो।

वह गया, कि कोई हर्जा नहीं, ध्यान क्या, मैं उस पूरे आदमी को ही महल लिये जाता हूँ। उसकी क्या बात है, उठवा लेंगे घर पूरे आदमी को। उसने उस पूरे आदमी को घर उठवा लिया। आदमी तो आ गया, उसने कहा कि बोल भाई, क्या लेगा तू तेरे ध्यान का ? जो तुझे लेना हो, ले जा। उस आदमी ने कहा, आप बिल्कुल नासमझ हैं, आप समझे नहीं। ध्यान कहीं खरीदा जा सकता है ? और मैं बेचना भी चाहूँ, तो कैसे बेचूँ, यह तो मेरी भीतरी दशा है। उसने कहा, यह बातचीत छोड़ो। ऐसी कौन सी चीज है जो मैं नहीं खरीद सकता ? मैं तुझे ही उठवा लिया, तो तेरे ध्यान का क्या वश है जो नहीं आयेगा। तेरा ध्यान क्या घर पड़ा रह गया ? तू जाकर वापस उठाकर ला। तू जो कहे, मैं देने को तैयार हूँ। तू फिक्र मत कर, लाख, दो लाख, दस लाख, करोड़, कितना तुझे चाहिए ? तू बोल, और ले ले, और ध्यान दे जा।

उस आदमी ने कहा, तुम मेरी जान ले लो, ध्यान बेचना मुश्किल है, क्योंकि तुम समझ ही नहीं पा रहे, कि ध्यान क्या है। उसने कहा, कुछ भी

इससे मुझे मतलब नहीं। लोग कहते हैं कि ध्यान मिलने से बड़ा आनन्द मिलता है, हमें आनन्द से मतलब है। जाने दे ध्यान, ध्यान से जो तुझे आनन्द मिला है, वह कोई और तरकीब से मिल सकता हो, तो मुझे बता दे।

हम लोभ के कारण, धर्म में उत्सुक होते हैं

हम में से अधिक लोग धर्म की तरफ, लोभ के कारण उत्सुक होते हैं।

सुनते हैं खबर समाधि की, कि खिलते हैं फूल परम, सुनते हैं खबर ध्यान की, कि भीतर हो जाता है मौन आत्यंतिक, सुनते हैं, कि मृत्यु भी थक जाती है, उसके सामने जो स्वयं को जान लेता है, हार जाती है। मन में लोभ पकड़ता है, कि हम भी क्यों न पा लें ?

पर ध्यान रखना, लोभी नहीं पा सकेगा। इसलिए कृष्ण कहते हैं, तत्त्व को समझ कर। परमात्मा में आनन्द मिलता है, ऐसा जानकर जो चलेगा, वह लोभ से जा रहा है। संसार में दुख है, ऐसा समझ कर जो रहा है, वह तत्त्व को जानकर जा रहा है। इस फर्क को आप समझ लेना। संसार व्यर्थ है, ऐसा जानकर जो रहा है, वह तत्त्व को जानकर जा रहा है। और जो मान रहा है कि संसार तो बिल्कुल ठीक है, परमात्मा को और जोड़ लें इसी में थोड़ा सा, उसका सुख भी ले लें। यह तो मिल ही रहा है, उसे भी ले लें। वह आदमी सिर्फ प्रलोभन से जा रहा है, तत्त्व को जानकर नहीं जा रहा है।

दुनिया में अधिक लोग, प्रभु के मंदिर की तरफ प्रलोभन से जाते हैं या भय के कारण जाते हैं, जो कि प्रलोभन के सिक्के का दूसरा पहलू है। भय के कारण या लोभ के कारण। मौत पास आती है, तो बूढ़ा आदमी घबड़ाने लगता है। वह सोचता है अब मरे, अब क्या होगा ? अब होगा क्या, अब तो यह मौत चली आ रही है। अब कोई बचा नहीं सकेगा। अब कितने ही लोग मुझे वोट दे दें, तो भी मामला हल होगा नहीं। मौत खड़ी रह जायेगी, मैं मर जाऊँगा। अब कितनी ही तिजोड़ी मेरी बड़ी हो, वह किसी काम की नहीं है, अब मेरी मुट्ठी उसको बाँध नहीं पायेगी। अब मैं मरा, अब कोई बचा नहीं सकेगा। अब बेटे, जिनके लिए मैंने जिन्दगी गँवायी, अब मुझे बचा नहीं सकेंगे।

मित्र, जिनके लिए मैंने सब लगाया, अब मुझे बचा न सकेंगे। समाज, जिससे मैं डरता था, अब मुझे बचा न सकेगा। अब इस भय की, थर्राहट की हालत में आदमी सोचता है, चलो भगवान् का सहारा ले लें, अब वही बचा सकेगा।

भयभीत आदमी भगवान् की तरफ चला जाता है।

इसलिए मंदिरों, मस्जिदों, गिरिजों में बूढ़े, वृद्ध इकट्ठे हो जाते हैं, भय के कारण। भय के कारण, ये वही लोग हैं जो जवान थे, तब नहीं आये। और वे ही लोग हैं, जो अपने घर के जवानों को भी अभी कह रहे होंगे कि अभी क्या जरूरत है जाने की, अभी तो जवानी है।

आखिरी वक्त, राम राम कह देने से काम न चलेगा

आज एक वृद्ध महिला मेरे पास आयी थी। उसकी लड़की ने संन्यास ले लिया, तो वृद्ध महिला बहुत परेशान थी। वह कह रही, अभी तो इसकी उम्र है, अभी तो यह जवान है। मैंने उससे कहा, यह तो जवान है, लेकिन तू तो बूढ़ी हो गयी, तेरा इरादा कब संन्यास का है ? इसका संन्यास रुकवाने आयी थी वह, कि इसका संन्यास रोको, इसको संन्यास नहीं लेना है अभी, यह तो अभी जवान है। मैंने कहा, तेरा क्या इरादा है ? तुझे तो संन्यास ले लेना चाहिये, तू तो बूढ़ी हो गयी। उसने कहा, वह तो मैं सोचूँगी, इसका तो छोड़वा दो।

तो बूढ़े लोग जवानों को कहते हैं, कि तुम अभी जवान हो, तुम्हें धर्म से क्या लेना देना। क्योंकि धर्म को उन्होंने भय की भाषा में समझा है। सिर्फ भय। जब भय पकड़ ले और पैर कँप जाय और हाथ पैर हिलने लगें और मौत धक्के देने लगे, तब आखिरी वक्त राम राम कह लेना। इसलिए तो हम, जब आदमी मर जाता है, तो राम राम कहकर उसको मरघट तक ले जाते हैं। बेचारा खुद नहीं कह पाया, हम कह रहे हैं। उनको तो मौका नहीं मिला। अब हम तो कम से कम इतना तो उनको साथ दें, कि उनको मरघट तक पहुँचा आयें, राम राम कह कर। जिन्दगी उनकी चूक गयी, उन्होंने कभी राम राम न कहा। अब मर गये हैं, तो हम उनको राम राम कहने जा रहे हैं। मगर एक लिहाज अच्छा है, क्योंकि आप भी जब मरेंगे तो दूसरे आपको

भी कहेंगे। एक म्युचुअल कांस्पिरेसी चल रही है, पारस्परिक षडयंत्र, कि हम तुम्हें भेज जायेंगे, तुम हमें भेज जाना। राम राम कह देना आखिरी वक्त, अगर कहीं कोई परमात्मा होगा तो सुन लेगा, कि तुम्हारा भक्त मर गया। देखो, राम राम की आवाज आ रही है। जिन्दगी भर जिनके हृदय से राम नहीं निकला, मरी मरायी लाश के चारों तरफ राम राम कर रहे हैं।

मरते दम तक धर्म का ख्याल आना शुरू होता है भय के कारण, तत्त्व की समझ से नहीं। क्योंकि तत्त्व की समझ का फिर जवानी, बुढ़ापे ओर बचपन से कोई सम्बन्ध नहीं है। तत्त्व की समझ बड़ी और बात है, उसका उम्र से कोई लेना देना नहीं है। इसलिए कृष्ण कहते हैं, वे हैं मेरे प्यारे, जो तत्त्व को समझकर मेरी ओर आते हैं। उन्हें मैं ज्ञानी कहता हूँ। भय, लोभ इत्यादि से जो आ जाते हैं, उनका कुछ मतलब नहीं है।

हम तो उल्टे घड़े हैं

और वे मुझे प्रेम करते हैं, मैं भी उन्हें बहुत प्रेम करता हूँ। इसका क्या मतलब होगा? क्या कृष्ण का प्रेम सशर्त है, कंडीशनल है कि जब आप उनको प्रेम करेंगे, तभी वे आपको प्रेम करेंगे? क्या परमात्मा भी कोई शर्तबन्दी करता है, कि तुम मेरा नाम भजोगे, तो मैं तुम्हें प्रेम करूँगा? तुम तत्त्व को समझकर आओगे, तो मैं तुम्हें प्रेम करूँगा? क्या परमात्मा भी इस तरह की शर्त रखता है? तब तो प्रेम बड़ा छोटा हो जायेगा।

नहीं, कृष्ण का यह मतलब नहीं है, कि जो मुझे प्रेम करते हैं, मैं उन्हें प्रेम करता हूँ। मतलब यह है, कि परमात्मा का प्रेम तो सबके ऊपर बरसता है। लेकिन जो परमात्मा को प्रेम नहीं करते, उनका प्रेम से कभी सम्बन्ध नहीं हो पाता, मिलन नहीं हो पाता। जैसे एक उल्टा घड़ा रखा है और बरस रही वर्षा आकाश से। बादल घनघोर बरस रहे हैं, उल्टा घड़ा रखा है। रखा रहे, कोई ऐसा नहीं है कि उल्टे घड़े पर बादल नहीं बरस रहे हैं, उस पर भी बरस रहे हैं, लेकिन भरेगा नहीं। सीधे घड़े रखे होंगे, वह भर जायेंगे। फिर मेघ कह सकते हैं, कि जो सीधे खड़े हैं, उन्हें मैं भर देता हूँ। लेकिन इसका मतलब

यह नहीं, कि उल्टे घड़ों पर बरसता नहीं पानी। उल्टे घड़े खुद ही उल्टे बैठे हैं; उसमें कोई क्या कर सकता है। और पक्की जिद्द करके बैठे हैं, कि हम तो उल्टे ही बैठे रहेंगे, हम कभी सीधे न होंगे।

प्रभु की कृपा तो, सदा से बरस रही है

प्रभु को जो प्रेम करता है, उसे प्रेम मिलता है। उसका कुल मतलब इतना ही है कि उसे ही पता चलता है कि मिल रहा है, जो प्रेम करता है। जो प्रेम ही नहीं करता, उसे कभी पता नहीं चलता कि मिल रहा है। इसलिए जब हम कहते हैं कि प्रभु की कृपा, तो ऐसा मत सोचना, कि किसी पर होती है और किसी पर नहीं होती है। प्रभु की कृपा तो ऐसे ही बरस रही है जैसे सूरज निकला हो, सभी घरों पर किरणें बरस रही हैं। लेकिन कुछ लोग अपने दरवाजे बन्द किये बैठे हैं। किन्हीं के दरवाजे भी खुले हैं, तो वे इतने होशियार हैं, कि आँख बन्द किये बैठे हैं। क्या करियेगा? सूरज क्या करे, इनकी आँखों की पलकें खोले? खोले तो ये नाराज होंगे, पुलिस में रिपोर्ट लिखवायेंगे कि हम सो रहे थे, नाहक सूरज ने हमारी आँखें खोल दी। क्या करे सूरज, इनके दरवाजे तोड़े? पुलिस में रिपोर्ट लिखवा देंगे कि सूरज चोर हो गया, हमारे दरवाजे खोलकर भीतर घुसने लगा। सूरज बाहर खड़ा रहेगा, जब आप दरवाजे खोलेंगे आ जायेगा। जब आप आँख खोलेंगे, तो किरण भीतर पहुँच जायेगी।

परमात्मा का प्रेम तो सब पर बरस रहा है समान। लेकिन इसका यह मतलब नहीं कि आपको समान मिलता है। समान आपको मिलता नहीं, क्योंकि आप लेते ही नहीं। बरसता समान है, मिलता अलग अलग है। मिलता अपनी अपनी पात्रता से है। मिलता अपनी अपनी उन्मुखता से है।

अब जो आदमी लोभ के कारण परमात्मा की तरफ गया, उसका घड़ा उल्टा रहेगा। वह कितनी ही प्रार्थना करे, कितनी ही प्रार्थना करे, उसे प्रेम परमात्मा का मिलेगा नहीं। जो भय के कारण परमात्मा की तरफ गया, उसका घड़ा उल्टा रहेगा। वह कितना ही चीखे चिल्लाये, उसकी चीख

चिल्लाहट, परमात्मा के लिए नहीं है, भय की वजह से है। लेकिन जो जीवन के तत्त्व को समझकर गया। ठीक है यह जीवन, यह सारा खेल। यह सारा नाटक दो कौड़ी का है, इसका कोई मूल्य नहीं। अब मैं उसकी तलाश में चलूं, जो इस जीवन के पार है। इस जीवन के किसी प्रलोभन से नहीं, यह जीवन, टोटल, पूरा का पूरा बेकार हुआ इसलिए, नाटक हुआ, व्यर्थ हुआ, इसलिए। यह सारा अनुभव सारहीन हुआ, इसलिए अब मैं हटूं, अब उस तरफ खोजूं। क्या है वहाँ? कौन है वहाँ? कौन सी सम्पदा है वहाँ जो खोजूं। इस जिज्ञासा से जो गया ज्ञानी, तत्त्व को जानकर, एकीभाव को उपलब्ध हुआ, अनन्य होकर मुझे प्रेम करता है, मैं भी उसे प्रेम करता हूँ।

एकीभाव है योग

सातवां प्रवचन

गीता-ज्ञान-यज्ञ, बम्बई, रात्रि, दिनांक २८ मई, १९७१

उदारा : सर्व एवैते ज्ञानीत्वात्मैव मे मतम् ।
आस्थितः स हि युक्तात्मा मामेवानुत्तमां गतिम् ॥ १८ ॥

बहूनां जन्मनामन्ते ज्ञानवान्मां प्रपद्यते ।
वासुदेवः सर्वमिति स महात्मा सुदुर्लभः ॥ १९ ॥

यद्यपि यह सब ही उदार हैं अर्थात् श्रद्धासहित मेरे भजन के लिए समय लगाने वाले होने से उत्तम हैं, परन्तु ज्ञानी तो साक्षात मेरा स्वरूप ही है, ऐसा मेरा मत है क्योंकि वह स्थिर बुद्धि ज्ञानी भक्त अति उत्तम गतिस्वरूप मेरे में ही अच्छी प्रकार स्थित है। और जो बहुत जन्मों के अन्त के जन्म में तत्वज्ञान को प्राप्त हुआ ज्ञानी, सब कुछ वासुदेव ही है, इस प्रकार मेरे को भजता है वह महात्मा अति दुर्लभ है।

प्रभु को जानता है वह, उस जानने में ही उसके साथ एक हो जाता है। सब दूरी अज्ञान की दूरी है। सब फासले अज्ञान के फासले हैं। परमात्मा को दूर से जानने का कोई भी उपाय नहीं है। परमात्मा होकर ही जाना जा सकता है। इसलिए कृष्ण कहते हैं, जो मुझे जान लेता है वह ज्ञानी, वासुदेव ही हो गया, भगवान ही हो गया, वह कृष्ण ही हो गया, वह मैं ही हो गया। लेकिन कैसा ज्ञानी कृष्ण को जानता है ? दो बातें कही हैं।

हम व्यक्ति नहीं, एक भीड़ हैं

कहा है, युक्त आत्मा, जिसकी आत्मा युक्त हो गयी, इन्टीग्रेटेड हो गयी है। हम सबकी आत्मा खण्ड खण्ड है, अयुक्त है, टुकड़े टुकड़े है। हम एक आदमी नहीं हैं। बहुत आदमी हैं एक साथ। नाम हमारा एक है, इससे भ्रम पैदा होता

है। एक नाम के लेबल के पीछे बहुत निवासी हैं। क्षण क्षण में हमारे भीतर बदलते रहते हैं लोग। एक भीड़ है, एक समूह, प्रत्येक आदमी क्योंकि बहुत खण्ड हैं हमारे। खण्ड ही, ऐसा नहीं, विपरीत खण्ड भी हमारे भीतर हैं। जो हम एक हाथ से करते हैं, उसे ही दूसरे हाथ से मिटा देते हैं। एक क्षण हम प्रेम से भर जाते हैं, दूसरे क्षण घृणा से भर जाते हैं। वह जो प्रेम में मन्दिर बनाया था, घृणा में मिट्टी में मिल जाता है। एक क्षण क्रोध में जलते हैं और दूसरे क्षण क्षमा से भर जाते हैं। वह जो आग जलायी थी अपने ही प्राणों की, उसे अपने ही प्राणों के पानी से बुझाते हैं। क्षण क्षण हमारे भीतर बदलता रहता है सब कुछ।

हम एक प्रवाह हैं।

युक्त पुरुष इससे विपरीत होता है। युक्त पुरुष का अर्थ है, वह जो भीतर एक ही है। कहीं से चखो उसको, स्वाद उसका एक है। कहीं से बताओ उसको, आवाज उसकी एक, कहीं से खोजो उसको, वहीं मिलेगा। किसी द्वार से, किसी दरवाजे से, किसी स्थिति में, वहीं मिलेगा। यहां जरा सी धूप बदल जाती है और छाया हो जाती है, तो हम बदल जाते हैं। यहाँ जरा सा अन्तर पड़ता है परिस्थिति में, तो हमारे भीतर का आदमी दूसरा हो जाता है। खीसे में पैसे हो थोड़े, तो हृदय की धड़कन कुछ और होती है। खीसे में पैसे थोड़े कम हो जायं, तो हृदय की धड़कन कुछ और हो जाती है। हम हैं, ऐसा कहना ही शायद ठीक नहीं है।

सिर्फ नासमझी सबकी समझ में आती है

गुरजिएफ के पास कोई जाता था और कहता था, मुझे आत्मा को खोजना है, तो गुरजिएफ पूछता था, क्या आत्मा तुम्हारे पास है? बड़ा अजीब सवाल पूछता था। पूछता था, डू यू एक्जिस्ट, तुम हो भी? कोई भी कहेगा मैं हूँ, नहीं तो आता कौन। गुरुजिएफ कहता, जो घर से निकला था, वहीं पहुँचा है मेरे पास, कि रास्ते में बदल गया है? अनेकों को उसकी बात समझ में न आती थी।

जो भी बात समझने योग्य है, वह बहुत कम लोगों की समझ में आती है। जो नहीं समझने योग्य है, वह सबकी समझ में आ जाती है, सिर्फ नासमझी ही सबकी समझ में आती है।

और गुरजिएफ कहता था, पहले तुम सोच कर खोज कर आओ कि तुम हो भी, अन्यथा मैं मेहनत करूं और तुम बदल जाओ। ऐसे कैनवस पर तो चित्र बनाने का कोई मतलब नहीं है, कि हम चित्र बना न पायें और कैनवस बदल जाय। ऐसे पत्थर में तो मूर्ति तोड़ने का कोई प्रयोजन नहीं है, कि हम पत्थर में मूर्ति तोड़ भी न पायें, कि पत्थर बदल जाय।

आदमी के साथ मेहनत करीब करीब ऐसी ही खराब होती है। जो आदमी के साथ मेहनत करते हैं, वह जानते हैं, कि किस बुरी तरह मेहनत खराब होती है। सुबह जिसके साथ मेहनत की थी, वह सांझ मिलता नहीं खोजे से, कि कहां गया। चेहरे हैं, लेकिन एक मजे की बात है, कि हमारे पास एक चेहरा हो, तो भी ठीक, झूठा ही सही, एक हो, तो भी ठीक। झूठे चेहरे हैं, वह भी बहुत हैं। और कितनी कुशलता से हम उन्हें बदलते हैं, कि हमें कभी पता नहीं चलता कि हमने चेहरा बदल लिया, क्षण भर में बदल जाता है।

तुम जरा अपनी नकाब उतार लो

सुना है मैंने, कि फकीर नसरुद्दीन के गांव में उस देश का सम्राट आने वाला था। तो गाँव में कोई इतना बुद्धिमान आदमी नहीं था जितना कि नसरुद्दीन। तो लोगों के कहा, तुम्हीं गाँव की तरफ से उनसे मिल लेना, क्योंकि दरबारी शिष्टता, सदाचार का हमें कुछ पता नहीं। नसरुद्दीन ने कहा, मुझे ही कहाँ पता है। अधिकारियों ने कहा, घबड़ाओ मत, हम राजा को प्रश्न भी समझा देंगे कि वह तुमसे क्या पूछे और तुम्हें जवाब भी समझा देते हैं कि तुम क्या जवाब दो, फिर कोई दिक्कत नहीं रहेगी। नसरुद्दीन ने कहा कि बिल्कुल ठीक है। सब बना हुआ खेल था, राजा को समझा दिया गया कि गरीब गाँव है, बेपढ़े-लिखे लोग हैं। एक नसरुद्दीन भर है, जो थोड़ा-सा लिख पढ़ लेता है। तो यही सवाल पूछना, क्योंकि इसी के जवाब उसने तैयार कर रखे हैं। और कोई सवाल मत पूछना। लेकिन बड़ी गड़बड़ हो गयी।

सम्राट को पहले पूछना था, कि तू कितने दिन से धर्म के अध्ययन और साधना में लगा है। तो पंद्रह वर्ष उसने याद कर रखा था। फिर सम्राट को पूछना था कि तेरी उम्र कितनी है? नसरुद्दीन की जितनी उम्र थी, साठ वर्ष, उसने तय कर रखा था। ऐसा नसरुद्दीन को सिखाया था, लेकिन सब गड़बड़ हो गया। सम्राट ने पहले पूछ लिया तेरी उम्र कितनी है? नसरुद्दीन ने कहा,

पन्द्रह वर्ष। सम्राट थोड़ा हैरान हुआ। साठ साल का बूढ़ा था, लेकिन पन्द्रह वर्ष कह रहा था। फिर उसने पूछा, और तुम धर्म की साधना में कितने दिन से लगे हो? नसरुद्दीन ने कहा, साठ वर्ष। सम्राट ने कहा, तुम पागल तो नहीं हो? नसरुद्दीन ने कहा, वही मैं सोच रहा हूँ कि आप पागल तो नहीं हैं? क्योंकि मुझे जिस क्रम में समझाया गया था, मालूम होता है तुम्हें किसी और क्रम में समझाया गया है। तुम भी रटे रटाये सवाल पूछ रहे हो, मैं भी रटे रटाये जबाब दे रहा हूँ। बीच का आदमी गड़बड़ कर गया। बड़ी मुश्किल हो गयी, पूरा गाँव इकट्ठा था, दरबारी इकट्ठे थे, अब क्या हो?

नसरुद्दीन ने कहा, ऐसा करें, तुम यह राजा होने का जरा नकाब उतार लो, और मैं बुद्धिमान होने का नकाब उतार लूँ। फिर हम दोनों बैठकर दिल खोलकर बात करें, तो मजा आये। यह चेहरा जरा तुम अलग कर दो सम्राट होने का और मैं भी चेहरा अलग कर दूँ बुद्धिमान होने का। इसी में सब गड़बड़ हो गयी। ये चेहरे दिक्कत दे रहे हैं।

पता नहीं वह सम्राट समझा या नहीं, नसरुद्दीन मजाक कर रहा था। वह सच में ही बुद्धिमान लोगों में से एक था। नसरुद्दीन ने कहा, अच्छा हो कि हम आदमी आदमी की तरह बैठकर बात कर लें, यह चेहरे अलग कर दें। सम्राट को बड़ा कठिन पड़ा होगा। सम्राट जैसा चेहरा उतारना बड़ा मुश्किल होता है। सम्राट का चेहरा उतारना तो दूर है, भिखारी को भी अपना चेहरा उतारना मुश्किल होता है, फिक्स्ड हो जाता है, बँध जाता है।

भिखारियों का भी अपना अहंकार होता है

अमरीका में एक बहुत बड़ा अरबपति था रथचाइल्ड। एक दिन एक भिखारी उसके मकान के भीतर घुस गया। और जोर शोर से शोरगुल करने लगा कि मुझे कुछ मिलना ही चाहिए, बिना लिये हुए जाऊँगा नहीं। जितना दरबानों ने अलग करने की कोशिश की, उतनी अधिक उछलकूद उसने मचा दी। आवाज उसकी इतनी थी, कि वह रथचाइल्ड के कमरे तक पहुँच गई। वह निकल कर बाहर आया। उसने उसे पाँच डालर भेंट किये और कहा कि सुन, अगर तूने शोरगुल न मचाया होता, तो मैं तुझे बीस डालर देनेवाला था। मालूम है आपको, उस भिखमंगे ने क्या कहा? उसने कहा, महानुभाव, अपनी सलाह अपने पास रखिये। आप बैंकर हैं, मैं आपको बैंकिंग की सलाह

नहीं देता। मैं जन्मजात भिखारी हूँ, कृपा करके भिक्षा के सम्बन्ध में मुझे कोई सलाह मत दीजिए।

रथचाइल्ड ने अपनी आत्मकथा में लिखवाया है, कि उस दिन मैंने पहली दफा देखा, कि भिखारी का भी अपना चेहरा है। वह कहता है, जन्मजात भिखारी हूँ, मैं कोई साधारण भिखारी नहीं हूँ, ऐसा ऐरा गैरा। अभी अभी सीख कर नहीं आया हूँ, जन्म जात हूँ। और तुम बड़े बैंकर हो, मैं तुम्हें सलाह नहीं देता बैंकिंग के बाबत। कृपा करके तुम भी मुझे भीख माँगने के बाबत सलाह मत दो। मैं अपनी कला अच्छी तरह जानता हूँ। रथचाइल्ड ने लिखवाया है अपनी आत्मकथा में, कि उस दिन मैंने उस भिखारी को गौर से देखा और मैंने पाया, सम्राटों के ही चेहरे नहीं होते हैं, भिखारियों के भी अपने चेहरे हैं।

लेकिन भिखारी भी एक ही चेहरा लेकर नहीं चलता। जब वह अपनी पत्नी के पास पहुँचता है, तो चेहरा बदल लेता है। जब अपने बेटे के पास जाता है, तो चेहरा बदल लेता है। जब पैसेवाले के पास से निकलता है, तो चेहरा और होता है। जब गरीब के पास से निकलता है, तो चेहरा और होता है। जिससे मिल सकता है, उसके पास चेहरा और होता है। उसके पास भी एक फ्लेक्सिबल, एक लोचपूर्ण व्यक्तित्व है, जिसमें वह अपने चेहरे बदलता रहता है। ये चेहरे हमें बदलने इसलिए पड़ते हैं, क्योंकि हमारे भीतर अपना कोई चेहरा नहीं है, कोई ओरिजनल फेस नहीं है।

कृष्ण कहते हैं, युक्त आत्मा, थिर हुई बुद्धि जिसकी, ऐसा व्यक्ति ही मुझे जान पाता है।

परमात्मा के पास झूठे चेहरे लेकर नहीं जा सकते

परमात्मा के पास झूठे चेहरे लेकर नहीं जाया जा सकता। हाँ, कोई चाहे तो बिना चेहरे के भला पहुँच जाय, लेकिन झूठे चेहरों के साथ नहीं जा सकता। और बिना चेहरे के वहाँ जा सकता है, जिसके पास एक युक्त आत्मा हो। तब शरीर के चेहरों की जरूरत नहीं रह जाती। लेकिन बड़े मजे की बात है कि हम सब झूठे चेहरे लगाकर जीते हैं। फिर भी हमें अच्छी तरह पता नहीं है, कि हम झूठे चेहरे लगाकर जिन्दगी में जीते हैं। हमारे पास कई चेहरे हैं, हमारे पास एक व्यक्तित्व नहीं, एक आत्मा नहीं।

महावीर ने कहा है, मल्टी साइकिक, बहुचित्तवान है आदमी। बहुत चित्त हैं उसके भीतर। यह मल्टी साइकिक शब्द तो अभी जुंग ने विकसित किया, लेकिन महावीर ने पच्चीस सौ साल पहले जो शब्द उपयोग किया है, वह ठीक यही है। वह शब्द है बहुचित्तवान, बहुत चित्तवाला है आदमी। कृष्ण भी वही कह रहे हैं कि जब वह एक चित्तवाला हो जाय, तभी मुझ तक आ सकता है, उसके पहले मुझे न जान पायेगा। हम दूसरे को तो धोखा देते हैं, लेकिन बड़ा मजा तो यह है कि हमें कभी यह ख्याल नहीं आता है कि दूसरे भी ऐसे ही चेहरे लगाकर हमें धोखे दे रहे हैं।

और हम चेहरों के एक बाजार में हैं, जहाँ आदमी को खोजना मुश्किल है। जब हम हाथ बढ़ाते हैं, तो हमारा एक चेहरा हाथ बढ़ाता है, दूसरी तरफ से जो हाथ आता है, वह भी एक चेहरे का हाथ है। सिर्फ इमेजेज़, प्रतिमाएँ मिलती हैं, आदमी नहीं मिलते। मुलाकात अभिनय में होती है, मुलाकात प्राणों की नहीं होती। बातचीत दो यंत्रों में होती है, सधे सधाये, रटे रटाये, जवाब सवालों में। भीतर की आत्मा का सहज आविर्भाव नहीं होता। लेकिन हम खुद अपने को धोखा देते देते इतने धोखे में डूब गये होते हैं कि हमें ख्याल ही नहीं होता है कि दूसरे लोग भी ऐसा ही धोखा दे रहे हैं।

सब झूठे चेहरे लगाकर घूम रहे हैं

सुना है मैंने, कि एक गाँव में बड़ी बेकारी के दिन थे। अकाल पड़ा था और लोग बहुत मुश्किल में थे। एक सर्कस गुजर रहा था गाँव से। स्कूल का एक मास्टर नौकरी से अलग कर दिया गया था। उसने सर्कसवालों से प्रार्थना की, कि कोई काम मुझे दे दो। सर्कस के लोगों ने कहा, सर्कस का तुम्हें कोई अनुभव नहीं। उसने कहा बहुत अनुभव है, स्कूल सिवाय सर्कस के और कुछ भी नहीं है, मुझे जगह दे दो। कोई और जगह तो न थी, लेकिन एक जगह सर्कसवालों ने खोज ली, उसे जगह दे दी गयी। और काम यह था कि उसके शरीर पर शेर की खाल चढ़ा दी, पूरे शरीर पर, और उसे एक शेर का काम करना था। एक रस्सी पर उसे चलना था शेर की तरह।

चल जाता, कोई कठिनाई न आती। लेकिन जब पहले ही दिन वह बीच रस्सी पर था, तभी उसे दिखायी पड़ा कि उसके स्कूल के दस पंद्रह लड़के सर्कस देखने आये हैं और उसे गौर से देख रहे हैं, वह नर्वस हो गया। मास्टर लड़कों

को देखकर एकदम नर्वस हो जाते हैं। घबड़ा गया और गिर पड़ा। गिर पड़ा नीचे, जहाँ कि चार आठ दूसरे शेर गुर्रा रहे थे, और चिल्ला रहे थे, और गरज रहे थे, और घूम रहे थे नीचे के कठघरे में। जब शेरों के बीच में घुसा, गिरा, तब घबड़ा गया, भूल गया कि मैं शेर हूँ, याद आया कि मास्टर हूँ। दोनों हाथ उठाकर चिल्लाया कि मरा, अब बचना मुश्किल है। जनता उसके उस चमत्कार से उतनी चमत्कृत नहीं हुई थी, रस्सी पर चलने से, जितनी इससे चमत्कृत हुई कि शेर आदमी की तरह बोल रहा है दोनों हाथ उठाकर। एक शेर, जो पास ही गुर्रा रहा था, उसने धीरे से कहा कि मास्टर घबड़ा मत, तू क्या सोचता है, तू ही अकेला बेकार है गाँव में? घबड़ा मत, तू अकेला ही थोड़े बेकार है गाँव में, और लोग भी बेकार हैं। वह जो चार शेर नीचे घूम रहे थे, वह भी आदमी ही थे।

हम सबकी हालत वैसी ही है। आप ही झूठा चेहरा लगाकर घूम रहे हैं ऐसा नहीं, आप जिससे बात कर रहे हैं, वह भी घूम रहा है। आप जिससे मिल रहे हैं, वह भी घूम रहा है। आप जिससे डर रहे हैं, वह भी घूम रहा है। आप जिसको डरा रहे हैं, वह भी घूम रहा है। आप ही अकेले नहीं हैं, यह पूरा का पूरा समाज, चेहरों का समाज है। इतने चेहरों की जरूरत इसलिए पड़ती है कि हमें अपने पर कोई भरोसा ही नहीं, हम भीतर हैं ही नहीं। अगर हम इन चेहरों को छोड़ दें, तो हम पैर भी न उठा सकेंगे, एक शब्द न निकाल सकेंगे। क्योंकि भीतर कोई है तो नहीं, मजबूती से खड़ा हुआ, कोई क्रिस्टलाइज्ड बीइंग। कोई युक्त आत्मा तो भीतर नहीं है। तो हमें सब पहले से तैयारी करनी पड़ती है।

हमारी पूरी जिन्दगी एक रिहर्सल है

हमें सब पहले से तैयारी करनी पड़ती है। नाटक में ही रिहर्सल नहीं होता, हमारी पूरी जिन्दगी रिहर्सल है। पति घर लौटता है, तो तैयार करके लौटता है कि पत्नी क्या पूछेगी और वह क्या जवाब देगा। पत्नी भी तैयार रहती है कि पति क्या जवाब देगा और किस तरह उसके जवाबों को गड़बड़ करेगी। सब तैयार है। रोज यह हो रहा है और रोज यह होगा। जिन्दगी में भी रिहर्सल है। पहले से तैयार करना पड़ता है कि मैं क्या जवाब दूँगा। क्या पूछा जायेगा, फिर क्या कहूँगा, फिर क्या बचाव निकालूंगा, देर

तो हो गयी है रात घर लौटने में। अब क्या क्या मुसीबत आनेवाली है, वह सब जाहिर है, वह सब तैयार है। भीतर हमारे पास, कोई ऐसी चेतना नहीं है जो स्पान्टेनियस, सहज हो सके। जब सवाल उठे, तब जवाब दे सके। और जब मुसीबत आये, तब हमारे भीतर से उत्तर आ सके। और जब घटना घटे, तब हमारे भीतर से कर्म पैदा हो सके। और जब जैसी जरूरत हो, तब हमारे प्राण वैसा कर सके। लेकिन हमें भरोसा नहीं, कि भीतर कोई है। हमें तैयारी करनी पड़ती है, चित्त में ही तैयारी करनी पड़ती है।

कृष्ण कहते हैं, युक्त आत्मा, थिर हो गयी जिसकी चेतना, जिसकी लौ चेतना की, ठहर गयी, वही केवल मुझे उपलब्ध हो पाता है। जो एक हो गया भीतर, जो यूनिसाइकिक हो गया, मल्टीसाइकिक नहीं रहा, बहुचित्त न रहा, एक चित्त का जन्म हो गया, एक विराट चेतना ने उसे सब ओर से घेर लिया, वैसा व्यक्ति मेरे पास आता है। वैसे व्यक्ति को कृष्ण ने कहा है ज्ञानी। और वैसे व्यक्ति को कहा है, ऐसा व्यक्तित्व पाने में अनेक अनेक जन्म लग जाते हैं अर्जुन।

न मालूम कितने जन्मों की यात्रा के बाद आदमी को यह अनुभव उपलब्ध हो पाता है, कि मैं कब तक धोखा देता रहूँगा? मैं ऑथेंटिक, प्रामाणिक कब बनूँगा? मैं वही कब घोषणा कर दूँगा जगत् के सामने, जो मैं हूँ। कब तक मैं छिपाऊँगा, कब तक मैं प्रवंचना दूँगा? और मैं किसको धोखा दे रहा हूँ।

सब धोखा, अपने को ही धोखा देना है; सब वंचनाएँ, आत्मवंचनाएँ हैं।

लेकिन अनन्त जन्मों के बाद भी याद आ जाय, तो जल्दी याद आ गयी। अनन्त जन्मों के बाद भी आ जाय, तो जल्दी आ गयी याद, क्योंकि अनन्त जन्म हम सबके हो चुके हैं। वह याद अब तक आयी नहीं है। कहीं से कोई पीका नहीं फूटता भीतर से, कि वह हमें कहे कि उतार फेंको इस सब धोखेधड़ी को, जिसे तुमने जिन्दगी बना रखा है। उतार दो इन नकली चेहरों को, अलग कर दो इनको, जो तुमने पहन रखे हैं। हटा दो यह सब जाल अपने आसपास से, जो बेईमानी का है। बेईमानी का, जिसमें हम दूसरों को धोखा दिये जा रहे हैं, वह होने का, जो हम नहीं हैं। दूसरे भी हमें दिये चले जा रहे हैं।

वह धार्मिक है, जो छलांग लगा ले

धार्मिक आदमी वह है, जो एक छलांग लगाकर इन सब उपद्रव के बाहर हो जाता है, और जिन्दगी जैसी है, उसकी स्वीकृति की घोषणा कर देता है।

उस स्वीकृति के साथ ही भीतर आत्मा युक्त हो जाती है। जिस व्यक्ति ने भी अपने होने को अंगीकार कर लिया, जैसा है स्वीकार कर लिया, जैसा है, बुरा भला, स्वीकार कर लिया। इसका मतलब यह नहीं है, कि बुरा आदमी अपने को स्वीकार कर लेगा, तो बुरा ही रह जायेगा। बड़ी अद्भुत घटना घटती है, जैसे ही कोई व्यक्ति, जैसा है, अपने को स्वीकार कर लेता है। तत्क्षण उसके जीवन में वह क्रांति घटित हो जाती है, जिसमें सब बुराइयाँ जल जाती हैं।

बुराइयाँ बसती हैं, चेहरों की आड़ में, नग्नता में कोई बुराई नहीं बच सकती। जब कोई आदमी प्रगट अपने को, सहज जैसा है, जाहिर कर देता है, सब भय छोड़कर। क्योंकि सब भय ही तो है, कि हम चेहरे लगाये फिरते हैं। डर ही है कि कोई क्या कहेगा, तो हम लगाये फिरते हैं।

संन्यासी मैं उसी को कहता हूँ, जो इस बात की घोषणा कर दे जीवन के प्रति, कि अब मैं धोखा नहीं दूँगा अपने चेहरे से; मास्क, कोई मुखौटा नहीं लगाऊँगा। जैसा हूँ, हूँ, उसकी खबर कर दूँगा। मैं जैसा हूँ, वैसा करने की तैयारी करता हूँ। ऐसा व्यक्ति एक दिन युक्त आत्मा को उपलब्ध हो जाता है।

युक्त आत्मा, परमात्मा के साथ एक हो जाती है।

यह दूसरी बात इसमें समझने जैसी है, जो अपने साथ एक हुआ, वह सर्व के साथ एक हो जाता है। जिसने इस भीतर के एक के साथ एकता बाँधी, उसकी, बाहर की, विराट यह जो ऊर्जा का विस्तार है, उससे भी एकता सध जाती है।

जो अपने भीतर टूटा है, वही परमात्मा से टूटा रहता है।

भक्त, भगवान् हो जाता है

इसलिए भक्त भगवान् को जब जानता है, तो भक्त नहीं रहता, भगवान् ही हो जाता है। कोई संधि नहीं बचती बीच में जरा सी, कोई सेतु नहीं

बचता, सब टूट आता है, कोई फासला नहीं रह जाता। फासला है भी नहीं। हमने फासला बनाया है, इसलिए दिखायी पड़ता है। झूठा फासला, है, हमारा बनाया हुआ फासला है।

कृष्ण कहते हैं, वह वासुदेव ही हो जाता है।

बड़े हिम्मत के लोग थे। आदमी को भगवान् बनाने की इतनी सहज बात, आदमी प्रभु को भजे और प्रभु ही हो जाये। जो जानते थे, वही कह सकते हैं ऐसा। हमारा मन मानने को राजी नहीं होता। नहीं होता इसीलिए, कि हमने सिवाय अपनी क्षुद्रता के और कुछ भी नहीं देखा है। हमारे भीतर वह जो विराट का बीज छिपा है, वह छिपा ही पड़ा रहता है। तो जब भी हम सोचते हैं कि आदमी, भगवान् हो जायेगा, तो हमें भरोसा नहीं आता। क्योंकि हम अपने भीतर जिस आदमी को जानते हैं, वह शैतान तो हो सकता है, भगवान् नहीं हो सकता।

हम अपने को अच्छी तरह जानते हैं। हमें पक्की तरह पता है कि कोई कहे, कि आदमी शैतान है, तो हमारी समझ में आता है। लेकिन कोई कहे, आदमी भगवान् है, तो समझ में बिल्कुल नहीं आता। क्योंकि हमारे पास जो नापने का आयोजन है, वह अपने ही से तो नापने का आयोजन है। तो हम अपने ही से तो नाप सकते हैं। और हम जब अपनी तरफ देखते हैं, तो सिवाय शैतान के कुछ भी नहीं पाते।

लेकिन मैं आपसे कहता हूँ, और सारे धर्मों का यही कहना है, कि वह जो आपको अपने भीतर शैतानियत दिखायी पड़ती है, वह आप नहीं हैं। वह शैतानियत केवल इसीलिए है कि जो आप हैं, उसका आपको पता नहीं है। जिस क्षण आपको अपने असली होने का पता चलेगा, उसी दिन आप पायेंगे कि शैतानियत कहीं खो गयी। कभी थी भी या नहीं, या कहीं मैंने कोई सपना देखा था।

बुद्ध को जब ज्ञान हुआ है, और कोई उनसे पूछता है कि अब आप क्या कहते हैं, इतने दिनों आप अज्ञान में कैसे भटके? तो बुद्ध कहते हैं, आज तय करना मुझे मुश्किल है, कि वह जो अनन्त जन्मों का भटकाव था, वह असल में घटा या मैंने कोई सपना देखा। कोई लम्बा सपना, क्योंकि आज मैं तय ही नहीं कर पाता, कि वह घट सकता है। वह असलियत में घट कैसे सकता है?

क्योंकि आज मैंने, जिसे अपने भीतर जाना है, उसे देखकर अब मैं मान नहीं सकता कि वह कभी घट सकता है।

विराट के साथ संबंध, भगवान् बना देता है

जैसे ही हम उस भीतर के विराट को जानते हैं, वैसे ही सब क्षुद्रताएँ उसमें खोकर, ऐसे ही शुद्ध हो जाती हैं, जैसे कितनी ही गन्दी नदी सागर में आकर गिर जाय और शुद्ध हो जाय। सागर चीख पुकार नहीं करता, कि गंदी नदी मुझमें मत डालो, गन्दा हो जाऊँगा। और सागर में गिरते ही गन्दगी कहाँ खो जाती है, नदी कहाँ खो जाती, कुछ पता नहीं चलता। विराट ऊर्जा में जब भी हमारे क्षुद्र मन की बीमारियाँ गिरती हैं, तो ऐसे ही खो जाती हैं, जैसे सागर में नदियाँ खो जाती हैं।

बड़ी शक्ति छोटी शक्ति को पवित्र करने की सामर्थ्य रखती है।

लेकिन हमें बड़े का कोई पता ही नहीं है। हम तो छोटे में ही जीते हैं। हम बड़ी छोटी पूँजी से काम चलाते हैं। सच बात यह है, कि जितनी जीवन ऊर्जा से शरीर चलता है, हम उतने को ही अपनी आत्मा समझते हैं। और शरीर को चलाने के लिए तो, जीवन ऊर्जा का अत्यल्प, छोटा अंश काफी है। शरीर को चलाने के लिए तो सुई काफी है, तलवार की कोई जरूरत नहीं पड़ती। और शरीर जितनी जीवन ऊर्जा से चलता है, उसके साथ ही हम तादात्म्य कर लेते हैं कि यह मेरी आत्मा है। फिर शैतान पैदा हो जाता है।

क्षुद्र के साथ सम्बन्ध, शैतान को पैदा कर देता है; विराट के साथ संबंध, भगवान् को पैदा कर देता है।

सम्बन्ध पर निर्भर करता है, कि आप कौन हैं। आपने क्षुद्र से सम्बन्ध बाँधा तो शैतान, अगर विराट से सम्बन्ध बाँधा, तो भगवान्।

आप वही हो जाते हैं, जिससे आप सम्बन्ध बाँधते हैं; वही हो जाते हैं, जिसके साथ जुड़ जाते हैं।

कृष्ण कहते हैं, जो मुझे जान लेता है, वह वासुदेव ही हो जाता है। वह 'मैं' ही बन जाता है। जो ब्रह्म को जान लेता है, वह ब्रह्म ही हो जाता है।

यह जानना भी बहुत अद्‌भुत है, जिसके जानने से आदमी एक हो जाता है उससे, जो ज्ञेय है।

हमारा सब जानना, मात्र परिचय है

आपने बहुत चीजें जानी हैं। आपने गणित जाना है, लेकिन आप गणित नहीं हो गये। आपने भूगोल पढ़ी है, लेकिन आप भूगोल नहीं हो गये। आप हिमालय को देखकर जान आयेंगे, लेकिन हिमालय नहीं हो जायेंगे। अगर कोई आकर कहे, कि मैंने हिमालय को देखा और मैं हिमालय हो गया, तो आप उसे पागलखाने में बन्द कर देंगे। हम जिन्दगी में जो भी जानते हैं, उसमें जानना दूर रहता है। हम कभी जानने वाली चीज के साथ एक नहीं हो पाते। इसलिए हमें कृष्ण के इस वचन को समझने में बड़ी कठिनाई पड़ेगी। क्योंकि हमारे अनुभव में यह कहीं भी नहीं आता, कि जो भी हम जानें, उसके साथ एक हो जायें। हमारा सब जानना, द्वैत का जानना है। हम दूर ही खड़े रहते हैं। इसलिए अगर कृष्ण से पूछें, तो कृष्ण कहेंगे, जिसे तुम जानना कह रहे हो, वह जानना नहीं है, केवल परिचय है। वह नोइंग नहीं है, सिर्फ एक्वेन्टेंस है। हमारा जानना, मात्र परिचय है, ऊपरी, बाहरी।

जैसे किसी के घर के बाहर से, हम उसका घर घूम कर देख आयें और सोचें कि हमने उसके घर को जान लिया, और उसके भीतर हमारा कोई प्रवेश नहीं हुआ। जैसे हम सागर के किनारे खड़े होकर सोचें कि हमने सागर को जान लिया, और सागर के भीतर हमारा कोई प्रवेश नहीं हुआ। यह जानना जानना नहीं है, यह एक्वेन्टेंस है, सिर्फ परिचय मात्र है, थोथा, ऊपरी, बाह्य। ज्ञान हमारी जिन्दगी में कोई है ही नहीं। और अगर आपकी जिन्दगी में कोई ज्ञान है, तो आप कृष्ण की बात समझ पायेंगे। मैं दो तीन बात आपसे कहूँ, शायद किसी की जिन्दगी में वैसा ज्ञान हो तो उसको झलक मिल सकती है।

मैं सूर्य हूँ

वानगाग एक बहुत बड़ा चित्रकार, आरलीज में, एक खेत में, खड़े होकर चित्र बना रहा है। कैनवस पर अपना ब्रुश लेकर काम में लगा है। दोपहर है, सूरज ऊपर सिर पर जल रहा है, वह भरी दोपहर का चित्र बना रहा है। उसकी जिन्दगी में एक लालसा थी, कि मैं सूर्य के जितने चित्र बना सकूँ, बनाऊँ। उसने जितने सूर्य के चित्र बनाये, किसी और आदमी ने नहीं बनाये।

कोई किसान गुजरता है और वानगाग से पूछता है, तुम कौन हो? वानगाग कहता है, मैं ? मैं सूर्य हूँ। वह सूर्य बना रहा है। किसान अपना सिर पीटकर चला जाता है। कहता है कि दिमाग खराब होगा। और किसान ही सोचता है, ऐसा नहीं, साल भर तक वानगाग सूर्य के चित्र बनाता रहा। और लोगों ने उसे पागलखाने में रख दिया। क्योंकि वह सूर्य के साथ आत्मसात् हो गया। लोग उसकी चिकित्सा में लग गये, मित्र चिन्तित हो गये। एक साल उसे पागलखाने में रखा कि उसका इलाज करें।

काश, उसके मित्रों को कृष्ण की इस बात का पता होता या वानगाग को पता होता, तो यह दुर्घटना बच सकती थी। निश्चित ही पागल हो गया, कहता है, मैं सूर्य हूँ। लेकिन अगर साल भर वानगाग की तरह किसी ने सूर्य को देखा हो, जाना हो, पहचाना हो, सूर्य की किरणों में उतरा हो, सूर्य की किरणों में नाचा हो, सूर्य की किरणों को पिया हो, तो कोई आश्चर्य नहीं है कि इतना तादात्म्य बन जाय, कि वानगाग को लगे कि मैं सूर्य हूँ।

अगर आपने कभी किसी को प्रेम किया है, तो किन्हीं किन्हीं क्षणों में आपको लगता है कि आप वही हो गये, जिसे आपने प्रेम किया है। अगर आपको ऐसा नहीं लगा, तो आपने कभी प्रेम नहीं किया है। किन्हीं क्षणों में आपको लगता है कि आप वही हो गये, जिसे आपने प्रेम किया है। और अगर ऐसा न लगा हो, तो आप प्रेम के नाम पर परिचय को ही जान रहे हैं। अभी प्रेम की नोइंग, प्रेम का ज्ञान, अभी घटित नहीं हो पाया।

अब तो मैं बाँस ही हो गया

यह जो हमारी जानने की दुनिया है, वहाँ परिचय ही जानना समझा जाता है। कृष्ण तो उस बात को उठा रहे हैं, जहाँ होना ही ज्ञान है, टु बी इज टु नो। उसके अतिरिक्त कोई ज्ञान नहीं है। मैं एक कहानी निरन्तर कहता रहा हूँ।

मैं कहता रहा हूँ कि जापान का एक चित्रकार बाँसों का एक झुरमुट बना रहा है, वंशी वट बना रहा है, एक झेन फकीर। लेकिन उसका गुरु कभी कभी पास से निकलता है और कहता है, कि क्या बेकार बनाया है। और वह बेचारा अपने बनाये हुए चित्रों को फेंक देता है। फिर एक दिन वह गुरु के

पास जाता है और कहता है कि मैं कितना ही सुन्दर चित्र बनाता हूँ; लेकिन तुम हो कि कह ही देते हो कि बेकार है और मुझे फाड़ना पड़ता है। मैं क्या करूँ ?

उसके गुरु ने कहा, पहले तू बाँस हो जा, तब तू बाँस का चित्र बना पायेगा। उसने कहा, यह कैसे हो सकता है कि मैं बाँस हो जाऊँ ? गुरु ने कहा, तू जा, आदमी की दुनिया छोड़ दे, बाँसों की दुनिया में चला जा। उन्हीं के पास बैठना, उन्हीं के पास सोना, उनसे बातचीत करना, उन्हें प्रेम करना, उनको आत्मसात् करना, इनवाइट करना, उनको पी जाना, उनको खून और हृदय में घुल जाने देना। उसने कहा, मैं तो बातचीत करूँगा, लेकिन बाँस ? उसने कहा, तू फिक्र मत कर, आदमी भर बोले, वृक्ष तो सदा बोलने को तैयार हैं। लेकिन इतने सज्जन हैं कि अपनी तरफ से मौन नहीं तोड़ते, तू जा।

गया, एक वर्ष बीता, दो वर्ष बीते, तीन वर्ष बीते। गुरु ने खबर भेजी कि जाकर देखो, उसका क्या हुआ ? ऐसा लगता है कि वह बाँस हो गया होगा। आश्रम के अन्तःवासी खोज करने गये। बाँसों की एक झुरमुट में वह खड़ा था। हवाएँ बहती थीं, बाँस डोलते थे, वह भी डोलता था। इतना सरल उसका चेहरा हो गया था, जैसे बाँस ही हो। उसके डोलने में वही लोच थी, जो बाँसों में है। जैसे हवा का तेज झोंका आता और बाँस झुक जाते, ऐसे ही वह भी झुक जाता। कोई रेसिस्टेंस, कोई विरोध, कोई अकड़, जो आदमी की जिन्दगी का हिस्सा है, नहीं रह गयी थी। बाँस जमीन पर गिर जाते, जोर की आँधी आती, तो वह भी जमीन पर गिर जाता। आकाश से बादल बरसते और बाँस आनन्दित होकर पानी को लेते, तो वह भी आनन्दित होकर पानी को लेता। लोगों ने उसे पकड़ा और कहा, वापस चलो, गुरु ने स्मरण किया है। अब तुम वह बाँस के चित्र कब बनाओगे ?

उसने कहा, लेकिन अब चित्र बनाने की जरूरत भी न रही। अब तो मैं खुद ही बाँस हो गया। फिर उसे लाये और गुरु ने उससे कहा, कि अब तू आँख बन्द करके भी लकीर खींचे, बाँस बन जायेंगे। उसने आँख बन्द करके लकीरें खींची और बाँस बनते चले गये। और गुरु ने कहा, अब आँख खोल और देख। तूने पहले जो बनाये थे, बड़ी मेहनत थी उसमें, लेकिन झूठे थे वह, क्योंकि तेरा कोई जानना नहीं था। अब तुझसे बाँस ऐसे बन गये हैं, जैसे बाँस

की जड़ से बाँस निकलते हैं, ऐसे अब तुझसे बाँस निकल रहे हैं।

एक क्षण के स्मरण से, जिन्दगी स्वप्नवत् रह जायेगी

एक ज्ञान है, जहाँ हम एक होकर ही जान पाते हैं।

यह मैंने आपको उदाहरण के लिए कहा। यह उदाहरण भी बिल्कुल सही नहीं है, क्योंकि जिसकी बात कृष्ण कर रहे हैं, उसके लिए कोई उदाहरण काम नहीं देगा। वह अपना उदाहरण खुद ही है। और कोई चीज का उदाहरण काम नहीं करेगा। लेकिन, यह ख्याल अगर आपको आ जाय, कि एक ऐसा जानना भी है, जहाँ होना और जानना, एक हो जाते हैं, तो ही आप ब्रह्म तत्त्व को समझने में समर्थ हो पायेंगे।

कृष्ण कहते हैं, फिर वह ज्ञानी, वह मुझे भजनेवाला, वह युक्त चित्त हुआ, वह स्थिर बुद्धि हुआ भक्त, वासुदेव हो जाता है। वह भक्त नहीं रहता, भगवान् हो जाता है।

और एक क्षण को भी आपको अपने भगवान् होने का स्मरण आ जाय, तो आपकी सारी जिन्दगी, अनन्त जिन्दगियाँ स्वप्नवत् हो जायेंगी।

इसे आप व्यवस्था भी दे सकते हैं। अभी आप जिस जिन्दगी में जीते हैं, अगर उसे आप स्वप्नवत् मानकर जीने लगें, तो दूसरे छोर से यात्रा हो सकती है। या तो परमात्मा के साथ एक होने के अनुभव की यात्रा पर निकलें, तो यह जिन्दगी स्वप्नवत् हो जायेगी। या इस जिन्दगी को स्वप्नवत् मानकर जीना शुरू कर दें, तो आप अचानक पायेंगे कि आप परमात्मा के साथ एक हो गये हैं। लेकिन इसे आप सिर्फ बुद्धि से समझने चलेंगे, तो समझ जायेंगे, लेकिन वह समझ नासमझी से ज्यादा न होगी। समझ तो जायेंगे, लेकिन एक न हो पायेंगे। और जब तक एक न हो जायँ, तब तक मत मानना कि वह समझ है।

उसे जान, जिसे जान लेने से, सब जान लिया जाता है

मैंने पहले दिन आपको श्वेतकेतु की कथा कही, कि पिता ने कहा, कि तू उसको जानकर लौट, जिसे जानने से सब जान लिया जाता है। श्वेतकेतु वापस चला गया। वर्षों के बाद वह जानकर लौटा, अब वह बिल्कुल दूसरा आदमी होकर आ रहा था। पिता ने अपने झोंपड़े की खिड़की से झाँककर देखा,

श्वेतकेतु चला आ रहा है। पिता ने अपनी पत्नी को कहा, उस बेटे की माँ को कहा, श्वेतकेतु की, कि अब मैं भाग जाता हूँ पीछे के दरवाजे से, क्योंकि श्वेतकेतु ब्रह्म को जानकर लौट रहा है। उसकी पत्नी ने कहा, तुम क्यों भागते हो ? तुम्हीं ने तो उसे भेजा था जानने को, कि तू उसे जानकर आ, जिसे जान लेने से सब जान लिया जाता है। अब वह आ रहा है।

पहली बार जब वह आया था, तो अकड़ से भरा था। शास्त्रों का दम्भ था, अस्मिता थी, अहंकार था, अकड़ रही होगी। नशा है शास्त्रों का। जानकारी का भी नशा है। और जब नशा पकड़ जाता है, तो बड़ी दिक्कतें देता है। देख लिया था दूर से कि अकड़ के आ रहा था।

उसने जान लिया, वह भगवान् हो गया

अब तो वह ऐसे आ रहा था, जैसे हवा का एक झोंका हो। चुपचाप आ जाय घर के भीतर और किसी को पता न चले। पैरों के पदचाप भी न हो, ऐसा चला आता था। जैसे एक छोटा सा सफेद बादल का टुकड़ा हो, तैर जाय चुपचाप, किसी को पता न चले। या जैसे कि आकाश में कोई चील, पर तौल कर पड़ी रह जाती है, हिलती भी नहीं, उड़ती भी नहीं, पंख भी नहीं हिलाती, तिर जाती है। ऐसा चला आता था, शान्त। उसके पैरों में चाप नहीं रह गयी, क्योंकि जब अहंकार नहीं रह जाता, तो पैर चाप खो देते हैं। पिता ने कहा कि मैं भाग जाता हूँ पीछे के दरवाजे से, तू अपने बेटे को सँभाल। तो उसने कहा, आप क्यों भाग जाते हैं ? आपने ही तो भेजा था। उसके पिता ने कहा, अद्भुत लोग थे इसलिए कहता हूँ, उसके पिता ने कहा, कि अब मुझे पीछे से चला जाना चाहिए। क्योंकि मैंने अभी ब्रह्म को नहीं जाना, और श्वेतकेतु आकर मेरे पैर पड़ने लगे, तो यह उचित न होगा। मैं भाग जाऊँ पीछे के दरवाजे से, तू सँभाल। अब तो मैं जब्र तक न जान लूँ, तब तक श्वेतकेतु के सामने आना उचित नहीं है, क्योंकि वह बेटा होने की वजह से पैर में झुकेगा। अब तो वह ब्रह्म हो गया, क्योंकि ब्रह्म को जानकर लौट रहा है। पिता भाग गया, जब तक मैं न जान लूँ, तब तक अब बेटे के सामने खड़े होने का कोई मुँह भी तो न रहा।

ऐसे पिता थे, तो दूसरे ही ढंग के बेटे भी दुनिया में पैदा होते थे। आज सभी पिता शिकायत कर रहे हैं बेटों की, बिना इस बात की फिक्र किये, कि

पिता कैसे हैं। यह ख्याल पिता का, कि उसे पैर में झुकना पड़ेगा, अब तो वह ब्रह्म होकर लौट रहा है, अनुचित हो जायेगा। या तो मैं उसके पैर पड़ूँ, तो वह पड़ने न देगा और या वह मेरे पैर पड़े, जो कि उचित नहीं है। अब मैं भाग जाऊँ। अब तो मैं तभी उसके सामने आऊँ, जब मैं भी जान लूँ।

वह जो ज्ञान की किरण है, जब उतरती है तो भीतर ज्ञानी नहीं बचता, ज्ञान ही बचता है। वह जब परमात्मा का साक्षात्कार होता है, तो साक्षात्कार करनेवाला नहीं बचता, परमात्मा ही बचता है। मिट जाता है वह, जो खोजने निकला था। वही बचता है, जिसे खोजा है। लेकिन शास्त्र, जानकारी, परिचय इनसे कुछ भी नहीं मिटता, बल्कि आप और घने हो जाते हैं, और मजबूत हो जाते हैं।

अहंकार अगर है, तो परमात्मा से मिलन न होगा

सुना है मैंने, कि एक रात एक घर में बैठकर कुछ मित्र शराब पीते रहे। कुछ शराब पड़ी छूट गयी थी। रात एक चूहा बाहर आया और शराब की सुगन्ध उसको पकड़ी। थोड़ा उसने शराब को चखकर देखा, फिर रस आया, फिर और चखा। थोड़ी देर में नशे से भर गया। दोनों पिछले पैरों पर खड़ा हो गया और उसने चिल्लाकर कहा, कि लाओ उस बिल्ली की बच्ची को, कहाँ है ? कई दिन से चूहे के दिल में रहा होगा कि एक दफा बिल्ली की बच्ची को मजा दिखाया जाय, आज मौका आ गया। आज चूहे ने अपने को समझा होगा कि न मालूम वह क्या है ? वह नशा है।

मैंने सुना है, क्रूश्चेव को किसी ने कुछ कोई कीमती कपड़ा भेंट किया था, जब प्रधान मंत्री था क्रुश्चेव। उसने मास्को में बड़े बड़े दर्जियों को बुला भेजा, उन्होंने कहा, नहीं पूरा सूट न बन सकेगा। या तो पैंट बनवा लो, या कोट बनवा लो, लेकिन पूरा सूट नहीं बनता। पर जिसने भेजा था, सोच समझ कर भेजा था। क्रुश्चेव ने उसे सम्हाल कर रख लिया। कीमती कपड़ा था, सूट बने तो ही मतलब का था, नहीं तो बेजोड़ हो जाय।

फिर क्रुश्चेव इंगलैंड घूमने आया था, तो कपड़ा साथ ले आया। और लन्दन के एक दर्जी को बुलाकर उसने कहा, कि तुम कपड़ा बनवा दो। उसने कहा कि तैयार हो जायेगा आठ दिन बाद पूरा सूट। क्रुश्चेव ने कहा, लेकिन

आश्चर्य, मास्को में कोई भी दर्जी पूरा सूट बनाने को तैयार न हुआ। वे कहते थे, या तो पैंट बनेगा या कोट। तुम कैसे बना सकोगे? उस दर्जी ने कहा, मास्को में आप जितने बड़े आदमी हैं, उतने बड़े आदमी आप लन्दन में नहीं हैं। मास्को में आपकी साइज बहुत ज्यादा है। उधर पैंट बन जाना बहुत मुश्किल है। यहाँ तो बन जायेगा। आप चाहो तो एकाध दो जन और आपके मित्रों को भी बनवा दूँ।

वह जो भीतर हमारे नशा है, वह बहुत तरह का है। पद का भी होता है, ज्ञान का भी होता है, त्याग का भी होता है। सब शराब बन जाती है। और भीतर आदमी अकड़ कर खड़ा हो जाता है। वह अकड़ अगर है, तो परमात्मा से मिलन न होगा। और परमात्मा से मिलन हुआ, तो वह अकड़ बह जाती है। उस अकड़ की जगह, परमात्मा ही शेष रह जाता है। लहरें खो जाती हैं और सागर ही बचता है।

भगवान् श्री, पिछले श्लोक में कृष्ण चार प्रकार के भक्तों की बात कहते हैं—अर्थार्थी अर्थात् सांसारिक पदार्थों के लिए भजने वाला। आर्त, अर्थात् संकट निवारण के लिए भजने वाला, जिज्ञासु अर्थात् मेरे को यथार्थ रूप से जानने की इच्छा से भजने वाला और ज्ञानी अर्थात् निष्कामी। कृपया स्पष्ट करें और यह भी बतायें प्रथम दो प्रकार के लोगों को भक्त क्यों कहा गया है?

कृष्ण चार विभाजन करते हैं भक्तों के।

अर्थार्थी जो अर्थ के लिए, सांसारिक वस्तुओं के लिए प्रार्थना में रत होते हैं। अधिक लोग, अधिक लोग लोभ से, कुछ पाने के लिए प्रार्थना में रत होते हैं।

फिर आर्त, दुख से, पीड़ा से, भय से, कठिनाइयों से परेशान होकर, अधिक लोग परमात्मा की प्रार्थना में रत होते हैं।

तीसरे जिज्ञासु, जो जानना चाहते हैं, कुतूहल है जिन्हें, उत्सुकता है, क्यूरासिटी है। जैसे कि दार्शनिक, सारी दुनिया के दार्शनिक पता लगाना चाहते हैं कि क्या है? अल्टीमेट काज क्या है दुनिया का, यह दुनिया कहाँ से आयी, कहाँ जा रही है, क्यों चल रही है, क्यों नहीं चल रही है? प्रश्न जिनके

मन में भारी हैं, लेकिन जिज्ञासा मात्र है। स्वयं को बदलने का सवाल नहीं है, जानने भर का सवाल है।

और चौथे, ज्ञानी, जो सिर्फ जानने के लिए नहीं, बल्कि होने के लिए आतुर हैं। परमात्मा को जानने की जिनकी उत्सुकता सिर्फ कुतूहल नहीं है, ऐसा कुतूहल नहीं, जैसा बच्चों में होता है, कि दरवाजा लगा है तो उसे खोल कर देखें, कि उस तरफ क्या है? कोई और प्रयोजन नहीं है, बस दरवाजा लगा है, तो मन होता है कि खोल कर देख लें कि उस तरफ क्या है? कीड़ा चल रहा है, तो टाँग तोड़कर भीतर देख लें कि कौन सी चीज चला रही है? बच्चों जैसा कुतूहल, तो जिज्ञासु हैं।

ज्ञानी, जीवन को रूपांतरित करने की प्रेरणा से भरा होता है

लेकिन ज्ञानी का अर्थ है, जो सिर्फ मात्र कुतूहल से नहीं, बल्कि जीवन को आमूल रूपांतरित करने की प्रेरणा से भरा है। जिसके लिए जानना कुतूहल नहीं है, जीवन मरण का सवाल है। न तो धन के लिए, न किसी दुख के कारण, न किसी कुतूहल से, बल्कि जीवन के सत्य को जानने की जिसके प्राणों में आन्तरिक पुकार है, प्यास है। जिसके बिना नहीं जी सकेगा। जान लेगा, तो ही जी सकेगा। ऐसे चार भक्त कृष्ण ने कहे हैं।

मन में सवाल उठ सकता है कि पहले दो तरह के या पहले तीन तरह के लोगों को क्यों भक्त कहा। भक्त तो आखिरी ही होना चाहिये, चौथा ही। नहीं, तीनों को भक्त सिर्फ शब्द के कारण कहा। वे भी भक्ति करते हैं। भक्त नहीं हैं, यह तो कृष्ण जाहिर करते हैं, लेकिन वे भी भक्ति करते हैं।

महावीर ने भी इसी तरह ध्यान करने वालों के चार वर्ग किये। उनमें जो आदमी आर्त ध्यान कर रहा है, जब आप क्रोध में होते हैं, तब आपका ध्यान एकाग्र हो जाता है। उसको भी कहा, वह भी ध्यानी है, आर्त-ध्यानी। क्योंकि क्रोध में मन एकाग्र हो जाता है। लोभ में मन एकाग्र हो जाता है। कामवासना में मन एकाग्र हो जाता है। तो उसको कहा, वह भी ध्यानी है, कामवासना का ध्यान कर रहा है। लेकिन अन्तिम ध्यान, शुक्ल ध्यान ही असली ध्यान है। जब कि बिना प्रयोजन के, बिना कारण के, बिना कुछ पाने की आकांक्षा के, कोई ध्यान करता है। इसलिए कृष्ण ने चार भक्तों की बात कही।

कोई भी परमात्मा के पास प्रार्थना के लिए नहीं आता

याद मुझे आता है, एक गाँव में बड़ी तकलीफ है। भूख है, बीमारी है, परेशानी है, लोगों के पास दवा नहीं, खाना नहीं, कपड़े नहीं। गाँव के चर्च का जो पादरी है, उसने कभी परमात्मा से कोई ऐसी प्रार्थना नहीं की, जिसमें कुछ माँगा हो। वह सत्तर साल का बूढ़ा है। गाँव भर की तकलीफ और चर्च में बड़ी भीड़ होती है। फटे चीथड़े पहनकर, भूखे बच्चे और भूखे बूढ़े इकट्ठे होते हैं। और वह रोता है उनके आँसू देखकर। एक रात, वह रात भर नहीं सोया। और उसने परमात्मा से प्रार्थना की, कि मैंने कभी तुझसे कुछ माँगा नहीं, एक बात माँगता हूँ, वह भी अपने लिए नहीं, मेरे गाँव के लोगों की हालत सुधार दें। स्वभावतः, चूँकि उसने कभी कुछ नहीं माँगा था, इसलिए उसकी प्रार्थना में बड़ा बल था। और स्वभावतः क्योंकि उसने अपने लिए प्रार्थना नहीं की थी, इसलिए भी बड़ा बल था।

कहानी कहती है कि परमात्मा ने उसकी प्रार्थना सुन ली। और सुबह जब नगर के लोग उठे, तो चमत्कृत रह गये। जहाँ झोंपड़े थे, वहाँ महल हो गये। जहाँ बीमारियाँ थीं, वहाँ स्वास्थ्य आ गया। वृक्ष फलों से लद गये, फसलें खड़ी हो गयीं, सारा गाँव धनधान्य से परिपूर्ण हो गया। यह तो चमत्कार हुआ, पूरे गाँव ने देखा। इससे भी बड़ा चमत्कार पादरी ने देखा, कि चर्च में सदा जो भीड़ होती थी, वह बिल्कुल बन्द हो गयी, कोई चर्च में नहीं आता। पादरी दिन भर बैठा रहता है बाहर, कोई चर्च में नहीं आता। कभी कोई नमस्कार नहीं करता, कभी कोई निमंत्रण नहीं भेजता, प्रार्थना के लिये कोई आता नहीं। चर्च गिरने लगा, ईंटें खिसकने लगीं, प्लास्टर टूटने लगा। एक साल, दो साल, गाँव के लोग भूल गये कि चर्च भी है।

दो साल बाद, उस बूढ़े फकीर ने, एक रात फिर परमात्मा से प्रार्थना की, कि हे प्रभु, एक प्रार्थना और पूरी कर दे। परमात्मा ने कहा, अब तुझे क्या कमी रह गयी और तूने जो चाहा था, सब कर दिया। उसने कहा, अब एक ही प्रार्थना और है, कि मेरे गाँव के लोगों को वैसा ही बना दे, जैसा वे पहले

थे। उन्होंने कहा, तू यह क्या कह रहा है? उसने कहा, कि मैं तो सोचता था, कि वे चर्च में परमात्मा की प्रार्थना के लिए आते हैं, वह मेरा गलत ख्याल सिद्ध हुआ। कोई अर्थ के कारण आता था, कोई दुख के कारण आता था, कोई लोभ के कारण। कोई भय के कारण। अब उनका लोभ भी पूरा हो गया, उनके भय भी दूर हो गये, उनके दुख भी दूर हो गये। तब मैंने यह नहीं सोचा था, कि परमात्मा को वे इतनी सरलता से भूल जायेंगे।

तो तीन तरह के लोग हैं। अर्थार्थी को अर्थ मिल जाय, धन मिल जाय, भूल जायेगा। दुखी का, कातर का, आर्त का, दुख दूर हो जाय, भूल जायगा। जिज्ञासु को उसके प्रश्न के उत्तर मिल जाय, समाप्त हो जायेगा। असली भक्त तो चौथा ही है। कुछ भी मिल जाय, वह तृप्त नहीं होगा, जब तक कि वह स्वयं परमात्मा न हो जाय। इसके पहले कोई तृप्ति नहीं है। लेकिन उन तीन को भक्त केवल शब्द की वजह से कहा, और उनकी गिनती करा देनी उचित है, क्योंकि वही तीन तरह के भक्त हैं जमीन पर, चौथी तरह का तो कभी, शायद ही कभी, चौथी तरह का आदमी पैदा होता है। अगर चौथी की ही बात करनी हो, तो बिल्कुल बेकार हो जाय, क्योंकि असली भीड़ तो इन तीन की है। यह नियम है, वह चौथा तो अपवाद है। इसलिए गिनती कर लेनी उचित समझी, कि इनकी गिनती कर ली जाय। यद्यपि पीछे कह दिया जायगा, कि ये तीनों सिर्फ धोखे के भक्त हैं, दिखायी ही पड़ते हैं, हैं नहीं। और कई बार बिल्कुल उल्टी ही घटना घटती है, वह चौथा जो है, शायद दिखाई न पड़े और हो। और यह तीन दिखाई पड़ें और हों न। क्योंकि वह चौथा क्यों दिखाई पड़ेगा। वह कोई सड़क पर खड़े होकर चिल्ला नहीं देगा। वह किसी मंदिर में हाथ जोड़कर खड़ा होगा ही, जरूरी नहीं है। हो सकता है, न भी खड़ा हो। क्योंकि उसके तो प्राणों में रम जायेगी बात, श्वांस श्वांस में समा जायेगी बात।

अब नमाज करना आ गया, इसलिए मस्जिद नहीं जाता

एक मुसलमान फकीर हुआ है, पचास साल तक मस्जिद जाता रहा है। एक दिन न चूका। बीमार हो, परेशान हो, बरसा होती हो, धूप जलती हो, पाँच

नमाज पूरी मस्जिद में करता रहा। एक दिन अचानक सुबह की नमाज में नहीं आया, मस्जिद के लोगों ने समझा, कि शायद मर गया। इसके सिवाय कोई सोचने का कारण ही न था, क्योंकि किसी भी हालत में वह आता था। इन पचास वर्षों में जितने लोग उसे जानते थे, वह नियमित आया था। गाँव में कुछ भी हुआ हो, वह पांच बार मस्जिद में आया था, आज नहीं आया। नमाज के बाद मस्जिद के सब लोग भागे हुए फकीर के घर पहुँचे, वह अपने दरवाजे पर बैठकर खँजड़ी बजा रहा था। उन्होंने कहा, कि क्या दिमाग खराब हो गया है या मरते वक्त नास्तिक हो गये। क्या कर रहे हो यह? नमाज चूक गये, पचास साल का बंधा हुआ क्रम तोड़ दिया। आज मस्जिद क्यों नहीं आये?

उस फकीर ने कहा, जब तक नमाज करनी न आती थी, तब तक मस्जिद में आता था। अब नमाज करनी आ गयी, अब यहीं बैठे हो गयी, अब कहीं जाने की जरूरत नहीं। सच तो यह है कि फकीर ने कहा, अब करने की भी कोई जरूरत नहीं है, क्योंकि अब करने वाला भी कहां बचा, नमाज ही बची। भीतर प्रार्थना ही रह गयी, अब प्रार्थना करने वाला भी नहीं है।

तो बहुत सम्भावना तो यह है, कि वह तीन ही तरह के भक्त आपको दिखायी पड़ेंगे, चौथा तो शायद दिखायी नहीं पड़ेगा। लेकिन वह चौथा ही है। वह तीन तो नाम मात्र को, फाँर नेम सेक, भक्त हैं। कृष्ण ने उनको गिना दिया कि कहीं नाराज न हो जायँ। बड़ी भीड़ उन्हीं की है। वह एक तो अपवाद है, उसे पीछे से गिना दिया हैं।

कामैस्तैस्तैर्हृतज्ञानाः प्रपद्यन्तेऽन्यदेवताः।
तं तं नियममास्थाय प्रकृत्या नियताः स्वया॥२०॥

और हे अर्जुन, जो विषयासक्त पुरुष हैं, वे तो अपने स्वभाव से प्रेरे हुए तथा उन उन भोगों की कामना द्वारा ज्ञान से भ्रष्ट हुए, उस उस नियम को धारण करके अन्य देवताओं को भजते हैं, अर्थात पूजते हैं।

यह भी कहा कृष्ण ने, कि वे जो कामासक्त हैं, विषयासक्त हैं, भोगों की आकांक्षाओं से भरे हैं, भोग से सम्मोहित हैं, वे ज्ञान से च्युत होकर मेरा स्मरण नहीं करते, अन्य अन्य देवताओं का स्मरण करते हैं। इसमें दो बातें हैं।

एक तो यह, कि जो व्यक्ति भी कामासक्त हुआ, विषयासक्त हुआ, वह ज्ञान से च्युत होता है। वह जो भीतर ज्ञान की धारा है, जैसे ही जरा सा भी विषय की तरफ मन दौड़ा, कि वह धारा पतित होती है, स्खलित होती है। एक क्षण को मन किसी विषय के प्रति प्रेरित हुआ, कि इसे पा लूँ, यह मेरा हो जाय, इसे भोग लूँ। जैसे ही भोग का कोई ख्याल आ गया, कि वह भीतर की जो चेतन धारा है, वह जो करंट है चेतना की, वह तत्काल डांवाडोल होकर अधोगति को यात्रा करने लगती है।

हर विषयासक्ति चेतना को पतित करती है

हर विषयासक्ति, चेतना की धारा को पतित करती है।

एक बात तो यह इसमें ख्याल ले लेने जैसी है, कि जरा सा, जरा सा भी ख्याल, रास्ते पर गुजरते हैं, और दुकान पर दिख गयी कोई चीज, और ख्याल आया मिल जाय, मेरी हो जाय, मैं मालिक हो जाऊँ, जरा सी झलक, एक जरा

सी किरण वासना की और आप जरा रुक कर खड़े होकर वहीं देखना, कि आप के भीतर अज्ञान घना हो गया और ज्ञान फीका हो गया। इसे आप अनुभव करेंगे तो ख्याल में आयेगा। जरा सी वासना, और आप अचानक पायेंगे मूर्छा घिर गयी, बेहोशी आ गयी, अज्ञान भर गया और ज्ञान क्षण भर को जैसे बिल्कुल खो गया।

लेकिन हम तो चौबीस घण्टे विषय की कामना से भरे हुए हैं। शायद इसलिए हमें पता भी नहीं चलता, कि हमारी ज्ञानधारा पतित होती है। क्योंकि पतित होने का पता तो, उन्हें चले जो ज्ञानधारा में कभी भी, थोड़े बहुत होते हों, तो पतित होने का पता चलता है। जिनके पास धन है, उन्हें दिवालिया होने का पता चलता है। भिखारियों को दिवालिया होने का पता नहीं चलता। जो कभी थोड़ा ऊपर जीते हैं, उन्हें नीचे आने का पता चलता है। लेकिन जो नीचे ही जीते हैं, घाटियों को जिन्होंने अपनी जिन्दगी बना लिया, शिखरों की तरफ जो कभी उठकर भी नहीं देखते, उनको तो फिर पतन का भी पता नहीं चलता। अन्धेरा ही जिनका घर है, उन्हें कैसे पता चलेगा, कि उजेला थोड़ा फीका हो गया, कि दिये की लौ थोड़ी कम हो गयी। लेकिन अगर फिर भी थोड़ा स्मरणपूर्वक खोज करें, तो जब भी मन को कोई वासना तीव्रता से पकड़े, तब आप जरा अपने भीतर देखना, कि आप की ज्ञान की जो क्वालिटी है, आप के ज्ञान का जो गुण है, क्या वह बदला, क्या वह निम्न हुआ, क्या वह नीचे गिरा ?

तृप्त वासना भी पीछे विषाद छोड़ जाती है

इसलिए हर वासना, चाहे तृप्त ही क्यों न हो जाय, एक सूक्ष्म विषाद में छोड़ जाती है।

क्योंकि वह आप को पतित कर जाती है। हर वासना, चाहे मिल ही क्यों न जाय, मिल जाते ही आपके मुंह में एक कडुआ स्वाद छूट जाता है। वह कडुआ स्वाद इस बात का होता है, कि भीतर आपकी चेतना धारा पतित हुई। आपने जो पाया, वह तो ना कुछ, लेकिन जो गँवाया, वह बहुत कुछ, एट ए वेरी ग्रेट कास्ट। वह जो कृष्ण कह रहे हैं, वह यह कह रहे हैं, कि तुम पाओगे क्या ?

एक आदमी सड़क पर चला आ रहा है, और देखता है, कि एक अच्छा कपड़ा पहने हुए कोई गुजरा, वह कपड़े मुझे चाहिए। कपड़ की माँग, बड़ी छोटी सी माँग है। लेकिन उसे पता नहीं, कि इस माँग ने उसकी चेतना को कितना नीचे गिरा दिया तत्काल, जैसे टेम्परेचर नीचे गिर गया हो थर्मामीटर में, उसके भीतर ज्ञान की धारा नीचे गिर गयी। इसलिए वासना से भरे व्यक्ति, अक्सर छोटे बच्चों, नासमझों जैसा व्यवहार करने लगते हैं। कभी आपने ख्याल किया, जब आप वासना में होते हैं, तो आप जो व्यवहार करते हैं, वह करीब करीब स्टुपिडिटी का होता है, करीब करीब मूढ़ता का होता है।

अगर हम दो प्रेमियों को आपस में बातचीत करते देखें, जो वासनातुर हैं, तो उनकी बातचीत हमें कैसी मालूम पड़ेगी, उनका एक दूसरे से व्यवहार देखें, तो वह कैसा मालूम पड़ेगा ? स्टूपिड, एकदम मूर्खतापूर्ण। लेकिन उन्हें नहीं मालूम पड़ रहा, वह तो बड़े स्वर्ग में जी रहे हैं। वह भी अगर लौट कर देखें, तो उन्हें भी मूढ़ता दिखायी पड़ेगी। असल में जैसे ही हम कामातुर और वासना से भरते हैं, किसी भी विषय की आसक्ति से, वैसे ही हमारे भीतर की चेतना धारा नीचे गिर जाती है।

भीतर क्या चल रहा है

सुना है मैंने, एक फकीर, नाम था उसका फरीद, शेख फरीद। कई लोग उसके पास आते। कोई आदमी उससे मिलने आया, वह आकर बैठा नहीं, कि फरीद जायेगा उसके पास, उसका सिर हिला देगा जोर से। कई दफा तो लोग घबड़ा जाते हैं। वह आदमी कहता है, कि आप यह क्या कर रहे हैं ? तो फरीद हंसने लगता। कभी बैठा रहता पास में, डण्डा उठाकर उसके पेट में इशारा कर देता। वह आदमी चौंक जाता। वह कहता, आप यह क्या कर रहे हैं, वह हँसने लगता। बहुत बार लोगों ने पूछा, आप यह करते क्या हो ?

तो फरीद बोला, एक दफा मैं यात्रा पर गया था। बहुत से खच्चर साथ थे। बड़ा सामान था, बहुत बड़ा कारवाँ था। वह जो खच्चरों का मालिक था, बड़ा होशियार था। जब कभी कोई खच्चर अड़ जाता और बढ़ने से इन्कार कर देता, खच्चर अड़ जाय तो बढ़ाना बहुत मुश्किल है, बढ़ता रहे, उसकी कृपा। अड़ जाय, तो फिर बढ़ाना बहुत मुश्किल क्योंकि न उन्हें बेइज्जती का

कोई डर, क्योंकि वह खच्चर हैं। उन्हें कोई अड़चन नहीं। उन्हें आप गालियाँ दो, उन्हें कोई मतलब नहीं।

फरीद ने कहा, लेकिन वह बड़ा कुशल मालिक था, कभी कोई खच्चर अड़ जाय, तो एक सेकण्ड न लगता था चलाने में। मैंने उससे पूछा, कि तेरी तरकीब क्या है? तो उसने मुझे बताया, कि वह थोड़ी सी मिट्टी उठाकर खच्चर के मुँह में डाल देता। खच्चर उस मिट्टी को थूक देता और चल पड़ता। तो फरीद ने पूछा, मैं समझा नहीं, कि मिट्टी उसके मुँह में डालने और खच्चर के चलने में सम्बन्ध क्या है?

तो उस आदमी ने कहा, मैं ज्यादा तो नहीं जानता, मैं इतना ही समझता हूँ, कि मुँह में मिट्टी डालने से, उसके भीतर जो विचारों की धारा है, वह टूट जाती है, वह जो अण्डर करंट है। खच्चर सोच रहा है खड़े रहेंगे, अब मुंह में मिट्टी डाल दी, इतनी बुद्धि तो नहीं है, कि इन दोनों को फिर से जोड़ सके। मुँह में मिट्टी डाल दी, तो वह भूल गये, जाने आने की बात। मुँह की मिट्टी साफ करने में लग गये, तब तक उसने हाँक दिया, वह चल पड़ा। उसने कहा, जहाँ तक मैं समझता हूँ, ज्यादा नहीं जानता क्योंकि खच्चर के भीतर क्या होता है, पता नहीं। अनुमान मेरा यह है, कि उसकी विचार धारा खण्डित हो जाती है, गड़बड़ हो जाती है। खण्डित हो जाती है, बस उसी में वह, चक्कर में आ जाता है, चल पड़ता है। बाकी यह दवा मेरी कारगर है।

लोग कहते हैं, आपने हमें खच्चर समझा है क्या? फरीद कहता कि बिल्कुल खच्चर समझा है। अभी तुझे मैंने देखा, तू भीतर आया, तब मैंने देखा, कि तेरे भीतर क्या चल रहा था।

कठिन नहीं है देखना, कि दूसरे के भीतर क्या चल रहा है।

शिष्टतावश अनेक लोग जो जानते भी हैं, कि दूसरे के भीतर क्या चल रहा है, कहते नहीं हैं। लेकिन दूसरे के भीतर क्या चल रहा है, यह जानना बड़ी ही सरल बात है। जब आप भीतर आते हैं, तो आपके भीतर क्या चल रहा है, और उसके साथ आपके चारों तरफ रंग, और आपके चारों तरफ गंध, और आपके चारों तरफ विचार का एक वातावरण भीतर प्रवेश करता है।

तो फरीद कहता है, जैसे ही मैं देखता हूँ कि भीतर कोई वासना चल रही है, तो उचक कर मैं उसकी गर्दन को जोर से हिला देता हूँ। वही खच्चर

वाला काम कि शायद करंट, और अक्सर मेरा अनुभव है कि करेंट टूट जाती है। तब वह आदमी चौंक कर पूछता है, क्या कर रहे हैं? कम से कम वहाँ तो चौंक जाता है, और तब उसे दूसरी यात्रा पर ले जाया जा सकता है।

बहुत से धर्मों की जो विधियाँ हैं, वह सारी विधियाँ ऐसी हैं कि किसी तरह, आपकी जो वासना की तरफ दौड़ती हुई, स्थायी हो गयी धारा है, वह तोड़ी जा सके।

हम अन्तर्धारा तोड़ने, मंदिरों में घंटे बजाते हैं

आप मंदिर जाते हैं, आपने घण्टा लटका हुआ देखा होगा मंदिर के सामने, कभी ख्याल नहीं किया होगा, कि घण्टा किसके लिए बजाया जाता है। आप सोचते हों कि भगवान् के लिए, तो आप गलती में हैं। वह आप खच्चर के लिए है। वह जो घण्टनाद है, भगवान् से उसका कोई लेना देना नहीं है। वह आपकी खोपड़ी में जो चल रहा है, जब जोर से घण्टा बजेगा, टूट जायेगा, मिट्टी थूंक कर आप मंदिर के भीतर चले जायेंगे। वह अन्तर्धारा जो चल रही है, वह एक झटके में टूट जाय। टूटती है, अगर समझ हो, तो बराबर टूट जाती है।

कहते हैं मंदिर स्नान करके चले जाओ, ऐसे ही मत चले जाना। वह अन्तर्धारा तोड़ने के लिए जो भी हो सकता है, कोशिश की जाती है। बाहर ही जूते निकाल दो, वह अन्तर्धारा तोड़ने के लिए। आपके जितने एसोसिएशन हैं, वह तोड़ने की कोशिश की जाती है।

जाकर मंदिर में लेट जाओ चरणों में परमात्मा के, साष्टांग, सब अंग जमीन को छूने लगें, सिर जमीन पर पटक दो। वह जो अकड़ा हुआ सिर है, चौबीस घण्टे अकड़ा रहता है। शायद, वही खच्चर वाला काम किये जा रहा है। आपके भीतर वह जो अण्डर करंट है, टूट जाये शायद। लेकिन कई बड़े कुशल खच्चर हैं, उन खच्चरों का तो मुझे पता नहीं। कितने ही घंटा बजाओ, उनके भीतर कुछ भी नहीं बजता। कुछ बजता ही नहीं। लेकिन मनुष्य को सहायता पहुँचाने के लिए जिनकी आतुरता रही है, उन्होंने बहुत सी व्यवस्थाएँ की हैं। कृष्ण कह रहे हैं, एक बात तो यह है कि चित्त हो जाता है, वासना की धारा में दौड़ता हुआ, अयुक्त ज्ञान से।

ज्ञान स्वभाव है।

इसे ऐसा समझें, तो ठीक होगा। हम आमतौर से कहते हैं कि वासना को छोड़ दो, तो ज्ञान मिल जायेगा। कहना चाहिए, वासना को पकड़ा है इसलिए ज्ञान खो गया है। ज्यादा एक्जेक्ट और सही जो कहना होगा, वह यह होगा। यह कहना उतना ठीक नहीं है कि वासना को छोड़ दो, तो ज्ञान मिल जायेगा। इसमें ऐसा लगता है कि वासना हमारा स्वभाव है, छोड़ेंगे तो ज्ञान की उपलब्धि हो जायेगी। असलियत उल्टी है। ज्ञान हमारा स्वभाव है, वासना को पकड़ कर हमने उसे खोया है। वासना हट जाय, वह हमें फिर मिल जायेगा।

और इसीलिए वासना कभी तृप्त नहीं होगी, क्यों कि वासना हमारा स्वभाव नहीं है, हमारा पतन है। हम कितने ही दौड़ते रहें, पतन से हम कभी राजी न हो पायेंगे, तृप्त न हो पायेंगे। पतन विषाद ही बनेगा। पतन हमें पीड़ा ही देगा, संताप ही देगा, नर्क ही देगा। और एक न एक दिन, नर्क की पीड़ा से हमें लौट आना पड़ेगा।

कैलाश, जहाँ से भगवान् कभी च्युत नहीं होता

और उस शिखर की तरफ देखना पड़ेगा, जो हमारे प्राणों का आंतरिक शिखर है, कैलाश। कैलाश हिमालय में नहीं है। जाते हैं लोग, सोचते हैं वहाँ होगा।

कैलाश, हृदय के उस शिखर का नाम है, ज्ञान के उस शिखर का नाम है, जहाँ से भगवान् कभी च्युत नहीं होता।

आपके भीतर का भगवान् कभी च्युत नहीं होता जहाँ। जिस दिन उस शिखर पर हम पहुँच जाते हैं, भीतर के, सब घाटियों को छोड़कर, घाटियों की वासनाओं को छोड़कर, उस दिन ऐसा नहीं होता कि हमें कुछ नया मिल जाता है। ऐसा ही होता है कि जो हमारा सदा से था, उसका आविष्कार, उसका उद्घाटन हो जाता है। हम जान लेते हैं, कि हम कौन थे। और हम जान लेते हैं कि हम किस तरह च्युत होते रहे, किस तरह भटकते रहे। किस कीमत पर हमने अपने को गँवाया और क्षुद्र चीजों को इकट्ठा किया। कंकड़ पत्थर बीने और आत्मा बेची। तो एक बात तो कृष्ण यह कहते हैं।

दूसरी बात, कि वह जो और अर्थार्थी, और आर्त, और जिज्ञासु, उस तरह के जो लोग हैं, वह मेरी नहीं, और देवताओं की पूजा में संलग्न होते हैं। क्यों? ठीक परमात्मा की प्रार्थना में वे लोग संलग्न नहीं होते, क्योंकि परमात्मा की प्रार्थना की शर्त ही, वे लोग पूरी नहीं करते। शर्त ही यह है कि सब वासनाएँ छोड़कर आओ। ब्रह्म को पाने की शर्त तो यही है, कि सब वासनाएँ छोड़कर आओ, तब प्रार्थनाएँ पूरी होंगी। वे वहाँ कैसे जायेंगे?

तो वे छोटे मोटे अपने देवी देवता निर्मित कर लेते हैं। जो उनसे शर्त नहीं बाँधते। बल्कि शर्त ऐसी बाँधते हैं, जो सस्ती होती है, पूरा कर देते हैं। कोई देवता माँगता है, कि नारियल चढ़ा दो। कोई देवता माँगता है, कि फूल पत्ती रख दो। कोई देवता माँगता है कि ऐसा कर दो, बलि चढ़ा दो, यज्ञ कर दो या हवन कर दो। सस्ती माँग वाले भी देवता हैं। सस्ती दुकानें भी हैं।

तो कृष्ण कहते हैं, फिर उस तरह के लोग मेरी तरफ नहीं आते, क्योंकि मेरी शर्त उनसे पूरी नहीं होती। वे खुद ही अपने देवता गढ़ लेते हैं, यह बहुत मजे की बात है।

आवश्यकता देवताओं की भी जननी है

बहुत देवता हमारे गड़े हुए हैं, अपनी जरूरतों के अनुसार हमने उन्हें गढ़ा है।

जिस चीज की जरूरत होती है, हम गढ़ लेते हैं। सारा आविष्कार जरूरत से होता है न! देवताओं का आविष्कार भी जरूरत से होता है। आवश्यकता कोई वैज्ञानिक खोजों की ही जननी नहीं है, देवताओं की भी जननी है। इसलिए तो इतने देवता, हिन्दुस्तान में तैंतीस करोड़ आदमी थे, तो तैंतीस करोड़ देवता थे। अब आदमी थोड़े ज्यादा बढ़ गये हैं, तो देवता भी हमें बढ़ाने चाहिये। नहीं तो बहुत मुश्किल पड़ जायेगी, कुछ लोग बिना देवताओं के पड़ जायेंगे। हरेक अपना देवता खड़ा कर लेता है, जो उसकी जरूरत है, उसके मुताबिक। और फिर उस देवता से प्रार्थना करने लगता है। कृष्ण कहते हैं, वह दूसरे देवताओं के पास चले जाते हैं।

परमात्मा तो एक है और हम उसे जान नहीं पाते।

मुहम्मद ने अगर कावा की तीन सौ पैंसठ मूर्तियाँ हटवायीं, तो सिर्फ इसलिए, कि वह देवताओ की मूर्तियां थीं। मुहम्मद कोई परमात्मा की प्रतिमा को मनुष्य के हृदय से नहीं हटाना चाहते थे, लेकिन बड़ी गलतसमझी पैदा हो गयी। मुहम्मद कोई परमात्मा की प्रतिमा को नहीं हटना चाहते थे। परमात्मा की प्रतिमा मनुष्य के हृदय में स्थापित हो, इसलिए देवताओं की जो तथाकथित प्रतिमा थीं काबा के मंदिर में, हर दिन के लिए अलग देवता थे। तीन सौ पैंसठ देवता थे, एक एक दिन के लिए। हर दिन अलग देवता पर पूजा होती थी। मुहम्मद ने हटवा दिया, फिंकवा दिया, कि हटा दो इन्हें। क्योंकि इन देवताओं की वजह से जो लोग आते हैं, वह कृष्ण के पहले तीन वर्ग के लोग हैं। वही लोग होंगे, आर्त, अर्थार्थी, जिज्ञासु, वही आयेंगे।

वह जो चौथा है, वह तो उस परम एक ही तरफ ही जाता है। लेकिन उस एक तरफ जाने की शर्त पूरी करनी पड़ती है। वह शर्त महँगी है, कठिन है, दुर्धर्ष है, दुस्तर है। क्योंकि स्वयं को ही दाँव पर लगाना पड़ता है, नारियल को नहीं।

आदमी बड़ा कुशल है

हालांकि आपने कभी ख्याल किया हो या न किया हो, आदमी बड़ा होशियार है। नारियल आपने कभी ख्याल किया, आदमी की खोपड़ी की शकल की चीज है। आँख भी होती है, नाक भी होती है, खोपड़ी भी होती है। जोर से पटको, तो खोपड़ी की तरह फूटता भी है। आपने कभी ख्याल किया, कि नारियल किन लोगों ने खोजा? आदमी की खोपड़ी की शकल में खोजा गया है। अपने को चढ़ाना पड़ता है परमात्मा के दरवाजे पर अपनी गर्दन काटनी पड़ती है, प्रतीकात्मक अर्थों में, सिम्बालिकली। अपनी ही गर्दन काट कर चढ़ानी पड़ती है। अपने को यदि नहीं काटेगा वह तो, क्या चढ़ायेगा, क्या वह परमात्मा को पायेगा? पर होशियार है आदमी, उसने सोचा कि गर्दन वगैरह तो बहुत महँगी पड़ती है। पांच आने में नारियल मिलता है, बिल्कुल आदमी की खोपड़ी जैसा लगता है। आँख भी है, सब हिसाब किताब पूरा है। फिर असली भी खरीदने की जरूरत नहीं है, सड़ा सड़ाया भी मिल जाय, उससे भी काम चल जाता है। तो हर मन्दिर के सामने दुकान होती है। और करीब करीब मैंने सुना है, कि मंदिर के पास जो दुकान होती है, जो नारियल उन्होंने पहली दफे खरीदे थे, उससे ही काम चलता जाता है। क्योंकि अन्दर जाकर जो चढ़ जाते हैं, पुजारी

रात को बेच आता है। सुबह फिर मंदिर में चढ़ने लगते हैं, रात फिर लौट आते हैं। इसलिए दुनिया भर में नारियल के दाम बढ़ जायं, मंदिर की दुकान वाला नारियल पुराने दाम से भी चलाता है। कोई हर्जा नहीं, क्योंकि उसके भीतर कुछ बचा भी है, संदिग्ध है। सब सड़ चुका होगा कभी का।

लेकिन आदमी कितना कुशल है। उसने नारियल खोजा, उसने सिंदूर खोजा। सिंदूर, खून, खून अपने प्राणों का जो लगाये, वह प्रतीक है कि अपने खून को जो चढ़ा दे। तो उसने देखा, खून से मिलती जुलती कोई चीज बाजार में कोई मिलती है? सिंदूर मिल गया, उसने सिंदूर लगा दिया, नारियल लगा दिया। दो चार आने में निपटकर वह अपने घर वापस आ गया। निश्चित यह पूजा परमात्मा तक नहीं पहुँचती। यह पूजा सिर्फ हमारी वासनाओं की सेवा है।

अशरीरी शुद्ध आत्माएँ सहायता कर सकती हैं

और, यह आपको कहूँ कि इसमें कभी कभी परिणाम आते हैं, इसलिए और कठिनाई है। ऐसा नहीं है कि यह बिल्कुल थोथी है, इसलिए परिणाम नहीं आते। इसमें परिणाम आते हैं। यही तो झंझट है। अगर परिणाम बिल्कुल न आते होते, तो आदमी कभी का ऊब गया होता। परिणाम आते हैं। परिणाम इसलिए आते हैं, कि जब भी आप किसी देवता की पूजा शुरू करते हैं, या कोई देवता निर्मित कर लेते हैं, अक्सर देवता इस तरह निर्मित होते हैं, कोई आदमी मरा, कोई सन्त मरा, कोई फकीर मरा, कोई महात्मा मरा, वेदी बन गयी, मूर्ति बन गयी, कुछ आसपास पूजा प्रार्थना शुरू हो गयी, देवता निर्मित हो गया।

कभी जब ऐसा कोई देवता निर्मित हो जाता है तो परिणाम भी आते हैं, क्योंकि बहुत से अच्छे लोग, जिनकी आत्माएँ आसपास भटकने लगती हैं, अशरीरी हो जाती हैं, तब आप के द्वारा की गयी प्रार्थनाओं में सहायता पहुँचा सकते हैं। वह सहायता उनकी दया से निकलती है। लेकिन आप को मिल जाती है सहायता, तो आप सोचते हैं, कि देवता ने सहायता की, तो प्रार्थना करता चला जाऊँ, करता चला जाऊँ। आपके हर देवता के आसपास ऐसी आत्माएँ मौजूद हैं, जो आप को सहायता कर सकती हैं। भले लोगों की आत्माएँ हैं।

देखें, एक आदमी परेशान आया है, उसकी लड़की की शादी नहीं हो रही है। कोई मूर्ति सहायता नहीं करेगी, कोई नारियल सहायता नहीं करेगा। लेकिन उस मूर्ति और उस मंदिर के वातावरण में निवास करने वाली, कोई भली आत्मा सहायता कर सकती है। और वह सहायता आपको मिल जाय, तो आपका तो गणित पूरा हो गया, कि मेरी माँग पूरी हुई, मेरी प्रार्थना पूरी हुई, देवता सच्चा है। अब तो इसको कभी छोड़ना नहीं है। फिर आप उसको पकड़े चले जाते हैं। तो देवता के पीछे से घटनाएँ घटती हैं, इसमें कोई शक नहीं है। लेकिन उसके घटने के कारण बहुत दूसरे हैं। वह दया है किन्हीं शुद्ध आत्माओं की।

परम उपलब्धि देवताओं के पास जाने से नहीं होगी

लेकिन कृष्ण जिस परम उपलब्धि की बात कर रहे हैं, उसके लिए देवताओं के पास जाने से नहीं होगा। क्योंकि कोई कितनी ही शुभ आत्मा क्यों न हो, किसी को परमात्मा नहीं दिला सकती है। हाँ, धन दिला सकती है, क्योंकि बड़ी कठिन बात नहीं है। नौकरी दिला सकती है, किसी की शादी करवा सकती है, किसी की बीमारी ठीक करवा सकती है। वह कोई कठिन बात नहीं है। जो आदमी कर सकता है, वही अच्छी आत्मा भी कर सकती है सरलता से। लेकिन परमात्मा से, कोई अच्छी आत्मा आपको मिलवा नहीं सकती। परमात्मा से मिलने तो, आप को ही जाना पड़ेगा। और चौथे तरह के ज्ञानी होकर जाना पड़ेगा, तो ही आप पहुँच पायेंगे।

वासनाओं से हटे चित, आसक्तियों से टूटे चित्त, ज्ञान में थिर हो, सर्मपित हो एकीभाव से, प्रभु की तरफ भजन करे, दौड़े, गति करे, तो एक दिन भक्त भगवान् हो जाता है। सब भक्त भगवान् हैं। उन्हें पता हो, न पता हो। फर्क पता होने और न पता होने का है। लेकिन कोई भक्त भगवान् से वंचित नहीं है।

प्रत्येक भक्त भगवान् है।

●

पूर्णता है योग

आठवाँ प्रवचन

गीता-ज्ञान-यज्ञ, बम्बई, रात्रि दिनांक २९ मई, १९७१

यो यो यां यां तनुंभक्तः श्रद्धयार्चितुमिच्छति ।
तस्य तस्याचलां श्रद्धां तामेव विदधाम्यहम् ॥२१॥

स तया श्रद्धया युक्तस्तस्याराधनमीहते ।
लभते च ततः कामान्मयैव विहितान्हि तान् ॥२२॥

जो जो सकामी भक्त, जिस जिस देवता के स्वरूप को, श्रद्धा से पूजना चाहता है, उस उस भक्त की मैं, उस ही देवता के प्रति श्रद्धा को स्थिर करता हूँ। तथा वह पुरुष उस श्रद्धा से युक्त हुआ, उस देवता के पूजन की चेष्टा करता है और उस देवता से मेरे द्वारा ही विधान किये हुए, उन इच्छित भोगों को निःसन्देह प्राप्त होता है ।

प्रभु की खोज में किस नाम से यात्रा पर निकला कोई, यह महत्वपूर्ण नहीं है और किस मंदिर से प्रवेश किया उसने, यह भी महत्वपूर्ण नहीं है। किस शास्त्र को माना, यह भी महत्वपूर्ण नहीं है। महत्वपूर्ण सिर्फ इतना है कि, उसका भाव श्रद्धा का था। वह राम को भजता है, कि कृष्ण को भजता है, कि जीसस को भजता है, इससे बहुत फर्क नहीं पड़ता। वह भजता है, इससे फर्क पड़ता है। किस बहाने से वह प्रभु और अपने बीच सेतु निर्मित करता है, वह बहाने बेकार हैं। असली बात यही है, कि वह प्रभु मिलन के लिए आतुर है, वह श्रद्धा ही सार्थक है।

श्रद्धा हो तो परमात्मा उपलब्ध हो जायेगा

इसे ऐसा समझें, कि यदि परमात्मा का सवाल भी न हो, और कोई व्यक्ति परम श्रद्धा से आपूरित हो, किसी के प्रति भी नहीं, सिर्फ श्रद्धा का उसके हृदय में आविर्भाव हो, श्रद्धा उसके हृदय से विकीर्णित होती हो, किसी के चरणों

से भी नहीं, लेकिन उसके भीतर से श्रद्धा का झरना बहता हो तो भी वह परमात्मा को उपलब्ध हो जायेगा। नास्तिक भी पहुँच सकता है वहाँ, अगर उसके हृदय से श्रद्धा के फूल झरते हैं। और आस्तिक भी वहाँ नहीं पहुँच पायेगा, अगर उसके जीवन में श्रद्धा का झरना नहीं है। तो श्रद्धा को थोड़ा इस सूत्र में ठीक से समझ लेना जरूरी है।

श्रद्धा से क्या अर्थ है ?

श्रद्धा से अर्थ, विश्वास नहीं है, बिलीफ नहीं है।

यह बहुत मजे की बात है कि जो लोग भी विश्वास करते हैं, वह अविश्वासी होते हैं। उनके भीतर अविश्वास छिपा होता है। उसी अविश्वास को दबाने के लिए वह विश्वास करते हैं। भीतर अविश्वास होता है, उसे दबाने के लिए, उसे झुठलाने के लिए, भुलाने के लिए, मिटाने के लिए, वह विश्वास करते हैं। लेकिन भीतर का अविश्वास और गहरे उतर जाता है, मिटता नहीं। विश्वासी कभी भी अविश्वास को नहीं मिटा पाता। क्योंकि विश्वास होता ही किसी अविश्वास के खिलाफ है। विश्वास की जरूरत ही इसलिए पड़ती है, कि भीतर अविश्वास है। श्रद्धा बड़ी और बात है।

श्रद्धा विश्वास नहीं है, अविश्वास का अभाव है

श्रद्धा विश्वास नहीं है, अविश्वास का अभाव है।

इस बात को ठीक से समझ लें। श्रद्धा विश्वास नहीं है, अविश्वास का अभाव है। जिसके हृदय में अविश्वास नहीं है। वह विश्वास भी नहीं करता, क्योंकि विश्वास किसलिए करेगा। एक आदमी जब कहता है, मैं ईश्वर में विश्वास करता हूँ, तब वह जितना जोर लगाकर कहता है, कि मैं विश्वास करता हूँ, जानना कि उतना ताकतवर अविश्वास, भीतर बैठा है। वह उसी अविश्वास को इतना जोर लगाकर दबाता है। अन्यथा अविश्वास न हो, तो विश्वास करने का कोई कारण नहीं रह जाता।

आप कभी भी ऐसा नहीं कहते, कि मैं सूरज में विश्वास करता हूँ। लेकिन आप कहते हैं, मैं ईश्वर में विश्वास करता हूँ। आप कभी नहीं कहते, कि यह आकाश, जो चारों तरफ है मेरे, इसमें मैं विश्वास करता हूँ। लेकिन आप कहते है, मैं ईश्वर में विश्वास करता हूँ। और अगर कोई आदमी आकर कहे, कि

मैं सूरज में विश्वास करता हूँ, तो क्या उसका विश्वास इस बात की खबर न होगा, कि वह आदमी अन्धा है। सिर्फ अन्धे ही सूरज में विश्वास कर सकते हैं। जिनके पास आँख है, उनकी सूरज में श्रद्धा होती है। श्रद्धा का अर्थ है, अविश्वास नहीं होता। आप सूरज में विश्वास नहीं करते हैं, आप जानते हैं कि सूरज है। संदेह ही नहीं किया कभी, तो विश्वास करने का सवाल ही नहीं है। बीमार ही नहीं हुए कभी, तो किसी दवा लेने की कोई जरूरत नहीं है।

विश्वास जो है, एण्टीडोट है, डाउट का। वह जो संदेह भीतर बैठा है, उसको दबाने का इन्तजाम है विश्वास। इसलिए आदमी कहता है, मैं ईश्वर में विश्वास करता हूँ। लेकिन कभी नहीं कहता, कि मैं पदार्थ में विश्वास करता हूँ। पदार्थ में कोई अविश्वास ही नहीं है, इसलिए विश्वास की कोई जरूरत नहीं पड़ती। और अगर कोई कहता हो, तो उसे शक होगा, कि वह आदमी अन्धा है। आँखवाला आदमी सूरज में विश्वास नहीं करता, श्रद्धा करता है। इस फर्क को आप ठीक से समझ लें।

श्रद्धा का अर्थ है, अविश्वास उठता ही नहीं। विश्वास का अर्थ है, अविश्वास मौजूद है, किसी भय के कारण, किसी लोभ के कारण। वह जो अविश्वास मौजूद है, उसे हम दबा लेना चाहते हैं, उसे छिपा देना चाहते हैं, झुठला देना चाहते हैं, भुला देना चाहते हैं।

धर्म की यात्रा पर विश्वास से काम नहीं चलता

धर्म की यात्रा पर विश्वास से काम नहीं चलता।

विश्वास सबस्टीट्यूट है श्रद्धा का; लेकिन इमीटेशन, नकली, उससे काम नहीं चलता। इसलिए तो दुनिया में इतने विश्वासी लोग हैं, फिर भी धर्म कहीं दिखाई नहीं पड़ता। विश्वासियों की कोई कमी है ? सच पूछा जाय तो अधिकतम लोग विश्वासी हैं। वे जो अविश्वास करते हुए मालूम पड़ते हैं, वे भी विश्वासी हैं। सिर्फ उनके विश्वास नकारात्मक हैं। पृथ्वी विश्वासियों से भरी है, लेकिन धर्म की कोई रोशनी नहीं दिखायी पड़ती। मंदिर, मस्जिद और चर्चों में विश्वासी प्रार्थना कर रहे हैं लेकिन प्रार्थना का आनंद कहीं विकीर्णित होता नहीं दिखायी पड़ता। वह हरियाली जो प्रार्थना से हमारे हृदय पर छा जानी चाहिए, नहीं छाती दिखायी पड़ती। हम रूखे के रूखे, सूखे के सूखे, मरुस्थल रह जाते हैं। कहते हैं, प्रार्थना कर आये, लेकिन मरुस्थल

मरुस्थल ही रह जाता है, कोई वर्षा नहीं होती उस पर। विश्वास धोखा है श्रद्धा का, लेकिन धोखे से कुछ काम नहीं चलेगा।

एक व्यक्ति संध्या अपने घर लौटा है। उसकी पत्नी का जन्म दिन है। आते ही उसने कहा, देखती हो, हीरे की अँगूठी लाया हूँ तुम्हारे लिए। पत्नी ने कहा, हीरे पर इतना खर्च क्यों किया? इतने दिन से हम सोचते थे, अच्छा होता, तुम एक कार ही खरीद लाते और मुझे भेंट कर देते। उस आदमी ने आँख बन्द कर ली और फिर सिर ठोंका, और उसने कहा, कि क्या करूँ, इमीटेशन कार मिलती नहीं, नकली कार मिलती नहीं। नकली हीरा मिल जाता है। नकली कार मिलती होती तो वह ले आता।

श्रद्धा की जगह जिसने भी विश्वास को पकड़ा है, वह नकली हीरे को पकड़े हुए है। असली हीरे का उसे पता ही नहीं है। इसलिए विश्वासी बहुत डरता है, कि कोई उसके विश्वास का खण्डन न कर दे, कोई विपरीत तर्क न दे दे, कोई उल्टी बात न कह दे, कहीं विश्वास डगमगा न जाय। ध्यान रहे, विश्वास डगमगाता ही रहेगा, क्योंकि विश्वास की कोई जड़ ही नहीं है। श्रद्धा नहीं डगमगाती, इसलिए श्रद्धा से ज्यादा अभय, फियरलेस, इस जगत् में कोई भी चीज नहीं है। खुद भगवान् भी आकर किसी श्रद्धावान हृदय को कहे, कि भगवान् नहीं है, तो वह कहेगा कि रास्ते से हटो। लेकिन आपके विश्वास को तो एक छोटा सा बच्चा डिगा सकता है। एक छोटा सा बच्चा तर्क उठा दे और आपके विश्वास मिट्टी में मिल जाते हैं। इसलिए कोई आदमी अपने विश्वासों की चर्चा नहीं करना चाहता। क्योंकि विश्वास की चर्चा करनी खतरनाक है। उसके नीचे कोई जड़ नहीं है। ऊपर ऊपर है सब, जरा में गिर जायेगा।

कृष्ण, किसी में भी श्रद्धा स्थापित करने को कहते हैं

कृष्ण कहते हैं, श्रद्धा जो करता है। फिर वह कहते हैं, वह श्रद्धा चाहे किसी कामना से प्रेरित हो, किसी देवता में ही क्यों न करता हो। और यहाँ एक बहुत कीमती बात वह कहते हैं, कहते हैं, किसी कामना से प्रेरित होकर ही। अर्थार्थी, किसी वासना से प्रेरित होकर ही, किसी देवता में श्रद्धा क्यों न करता हो, मैं उसकी श्रद्धा नहीं मिटाता। मैं उसकी श्रद्धा को परिपुष्ट और मजबूत करता हूँ।

कृष्ण भलीभाँति यह जानते हैं, कि देवता की श्रद्धा मुक्ति तक, परम सत्य तक नहीं ले जायेगी। यह भी भलीभाँति जानते हैं, कि कामना से प्रेरित होकर जो आदमी श्रद्धा कर रहा है, उसकी श्रद्धा बड़ी सांसारिक है। उसके लगाव में परमात्मा की तरफ बहाव कम है, संसार में ही बहने के लिए परमात्मा की सहायता की अपेक्षा ज्यादा है। यह भलीभाँति जानते हैं।

दो रास्ते हैं, या तो कृष्ण कह सकते हैं कि छोड़ो कामवासना, छोड़ो वासनाएँ, हटाओ वासनाओं को और छोड़ो देवताओं को, क्योंकि देवताओं से परम मुक्ति नहीं होगी। आओ मेरे पास, सब वासनाओं को छोड़कर, परम ऊर्जा के पास। वही मुक्ति है, वही स्वातंत्र्य है, वही अमृत है। एक रास्ता तो यह है। लेकिन कृष्ण भलीभाँति यह जानते हैं, कि ऐसा कहकर इस बात में तो, सौ में से निन्यानवे की संभावना है कि कोई देवताओं को और वासनाओं को छोड़कर कृष्ण के पास न आये। सौ में निन्यानवे की संभावना यह है, कि कृष्ण के पास तो आये ही नहीं, देवता के पास भी जाना बन्द कर दे। इसकी संभावना सौ में निन्यानवे है।

इसलिए कृष्ण कहते हैं, मैं उसके ही देवता में, उसकी श्रद्धा को स्थापित करता हूँ। क्योंकि श्रद्धा आज देवता में स्थापित हो जाय, कल एक कदम आगे उसे और बढ़ाया जा सकता है। कृष्ण कहते हैं, वह कामवासना से भरे व्यक्ति को भी मैं एकदम से नहीं कहता कि कामवासना गलत है, मैं कहता हूँ ठीक है। मेरी शक्ति तेरी वासनाओं की पूर्ति में भी सहयोगी बनेगी। इतने भरोसे के साथ उसकी कामवासना में भी सहायता देने की जो बात है, वह सोचने जैसी है, उसमें कुछ राज है। उसमें राज यह है कि तू अपनी कामवासना पूरी कर ले, पूरी करके तू पायेगा कि कुछ पूरा नहीं हुआ। तू अपनी वासनाओं को पूरी कर ले, पूरी करके तू पायेगा कि तूने व्यर्थ की माँग की। पूरा करके तू पायेगा कि परमात्मा की जो शक्ति तेरी वासनाओं की पूर्ति के लिए मिली, उस शक्ति से तो, तू स्वयं परमात्मा हो सकता था। तूने उसे व्यर्थ गँवाया है।

इस भरोसे के साथ, कृष्ण कहते हैं, मैं उसकी श्रद्धा को मजबूत करता हूँ, उसी देवता में, जिसकी तरफ उसका लगाव है। और उसी वासना के लिए कहता हूँ कि ठीक, चलो यही सही, शायद परमात्मा की शक्ति मिलनी शुरू हो। आपने भला किसी और चीज के लिए माँगी हो, लेकिन जब वह मिलेगी

और उसके आनन्द की चारों तरफ वर्षा होने लगेगी, तो वह घटना भी घट सकती है, कि जिसके लिए आपने माँगा था, वह आप भूल जायँ और जो बरस रहा है, वही स्मरण में रह जाय, और उसी तरफ यात्रा शुरू हो जाय।

जब तक परमात्मा न मिले, तब तक सही न हो पाओगे

दो रास्ते हैं, एक रास्ता तो यह है, कि पहले आपसे गलत छुड़ाया जाय और तब आपको सही दिया जाय। दूसरा रास्ता यह है, कि आपको सही दिया जाय, ताकि गलत आपसे छूटे। कृष्ण सही को देने के लिए अति आतुर हैं। क्योंकि वह जानते हैं कि सही मिलना शुरू हो, तो गलत छूटना शुरू होता है। और गलत छुड़वाना बहुत मुश्किल है, क्योंकि जिनके हाथ में सही नहीं है, वे गलत के सहारे जीते हैं। अगर हम उनसे उनका गलत छुड़वाना शुरू करें, तो बहुत कम संभावना है कि वह गलत को छोड़ें और सही की यात्रा पर निकलें। इस बात की ही संभावना ज्यादा है कि वह हमारी बात सुनना बन्द कर दें और अपने गलत को पकड़े रहें। या यह भी डर है कि वह गलत को भी छोड़ दें, और सही की यात्रा पर भी न निकलें। तब एक त्रिशंकु की हालत में, बीच में, अधर में, लटक जायँ। जैसा कि आज करीब करीब पश्चिम में हुआ है।

इन पिछले तीन सौ वर्षों में पश्चिम के विचारकों ने क्या गलत है, इस पर इतनी चर्चा की कि गलत तो छूट गया, क्या सही है उसका कुछ पता नहीं रहा। पश्चिम में तीन सौ साल के अच्छे लोगों का परिणाम यह हुआ है, कि आज पश्चिम का मन, ऐंटी आल ऐण्ड प्रो नथिंग। हर चीज के खिलाफ और किसी चीज के पक्ष में नहीं रह गया।

जो लोग कृष्णमूर्ति को सुनते रहे हैं, उनकी स्थिति भी ऐसी ही बन जाती है, ऐण्टी आल प्रो नथिंग। हर चीज के विरोध में, हर चीज के निषेध में। यह भी गलत, यह भी गलत, यह भी गलत, और सही क्या है, उसकी कोई किरण उतरती नहीं। तब व्यक्ति बीच में अटका रह जाता है।

कृष्ण की पद्धति बिल्कुल दूसरी है। वे कहते हैं तुम गलत हो, गलत होओगे ही। क्योंकि जब तक परमात्मा न मिले, तब तक सही हो भी कैसे पाओगे? तुम कंकड़ पत्थर पकड़े हो, स्वाभाविक है, क्योंकि जब तक हीरे न मिलें, कंकड़

पत्थर छोड़ोगे कैसे? तुम मिट्टी के घर बना रहे हो, स्वाभाविक है, क्योंकि जब तक तुम्हें अमृत का घर न मिल जाय, तुम और करोगे क्या?

कृष्ण की करुणा अपरिसीम है

कृष्ण की करुणा अपरिसीम है। वे कहते हैं ठीक है, तुम बच्चे हो इसलिए सीप और पत्थर इकट्ठे कर रहे हो। ठीक है, मैं तुमसे सीप नहीं छीनता, मैं तुम्हें प्रौढ़ करने की कोशिश करूँगा ताकि एक दिन तुम्हारे हाथों से सीपें छूट जायँ, और तुम हीरों की खदान को खोदने में लग जाओ। ध्यान रहे, कृष्ण की विधि पोजिटिव है, विधायक है।

इधर इन तीन सौ वर्षों में सारी दुनिया की बुद्धि, नकारात्मक ढंग से सोचने की आदी बनी है। और हमें ऐसा लगता है, कि हम अन्धेरे को मिटा दें तो प्रकाश आ जायेगा। जब कि बात उल्टी है। प्रकाश आ जाय, तो अँधेरा मिटता है। एक आदमी अन्धेरे में बैठकर अब दिया जलाने की कोशिश कर रहा है, अन्धेरे में ही करेगा, क्योंकि दिया अभी जला नहीं। और अँधेरे में जो कोशिश होगी वह भूल चूक से भरी होगी, यह निश्चित है। कभी बाती ठीक जगह न लगेगी, कभी तेल ढल जायेगा, कभी माचिस ढूंढ़ने निकलेगा और नहीं मिलेगी, क्योंकि अँधेरा है, दिया जला हुआ नहीं है। अंधेरे में भूल चूक बिल्कुल स्वाभाविक है। अगर हम भूल चूक पर बहुत नाराज हो जायँ और उस आदमी से कहें कि बन्द करो, पहले अँधेरे को मिटा लो, फिर दिये को जलाना, तब भूल चूक बिल्कुल नहीं होगी। होगी तो नहीं भूल चूक बिल्कुल, लेकिन अंधेरे को मिटाया नहीं जा सकता और दिये को जलाया नहीं जा सकता। अंधेरे में टटोल कर, भूल चूक करते हुए ही दिया जलता है। यद्यपि दिया जल जाय तो भूल चूक बन्द हो जाती है।

अनिर्वचनीय घटना घटती है, जब श्रद्धा पूर्ण होती है

जीवन को पोजिटिवली, जीवन को विधायक दृष्टि से देखने का रुख है यह, इसलिए कृष्ण गलत को भी समर्थन दे रहे हैं। भलीभांति जानते हुए, कि वासनाओं से भरा हुआ चित्त गलत है। यह भी जानते हुए, कि देवताओं की शरण में गया चित्त, वासनाओं की पूर्ति के लिए ही जाता है। यह भी जानते हुए, कि जो आदमी देवताओं के चरणों में बैठ रहा है, उस आदमी की अभी

परम खोज शुरू नहीं हुई है। और यह भी जानते हुए, कि वह जो माँगने आया है, वह बहुत बच्चों जैसी चीज है, देने योग्य भी नहीं है। लेकिन कृष्ण कहते हैं, वह हम तुझे देंगे। तेरे ही देवता में तेरी प्रतिष्ठा कर देंगे। तेरा और लगाव बढ़ायेंगे तेरे ही देवता में। तेरे देवता में भी मेरी शक्ति प्रवाहित होकर, तेरे देवता से ही, तुझे मिल जायेगी, ताकि तू अपनी श्रद्धा में दृढ़ हो जाय।

और आदमी एक एक कदम अगर श्रद्धा में दृढ़ होता जाय, तो एक दिन वह अनिर्वचनीय घटना भी घटती है, वह विस्फोट भी, जब श्रद्धा पूर्ण होती है, जब कोई सन्देह की रेखा भी नहीं रह जाती भीतर। उस निस्संदिग्ध श्रद्धा में परम की यात्रा अपने आप हो जाती है। कमजोर आदमी को देखकर दिया गया यह वक्तव्य है।

सब दिये अँधेरे में जलाये जाते हैं

कृष्णमूर्ति जैसे व्यक्ति, कमजोर आदमी की जरा भी फिक्र करते हुए मालूम नहीं पड़ते हैं। उनके वक्तव्य उनके लिए हैं, जो कभी भूल नहीं करते। लेकिन जो कभी भूल नहीं करते, उनके लिए किसी के वक्तव्य की कोई भी जरूरत नहीं है। वे जो भूल करते हैं, वे जो अंधेरे में खड़े हैं, उनके लिए वे वक्तव्य खतरनाक हैं। खतरनाक इसलिए हैं, कि उस तरह की बातें उन्हें बौद्धिक रूप से स्मरण हो जायेंगी। वह रट लेंगे उन बातों को, वह कहेंगे, कि दिये को जलाया नहीं जा सकता, जब तक अँधेरा है। क्योंकि अँधेरे में जो भी दिया जलाया जायगा, वह गलत होगा।

कृष्णमूर्ति कहते हैं, यू कैन नाट टेक एनी स्टैप इन कन्फ्यूजन, बिकाज ए स्टैप टेकेन इन कन्फ्यूजन, मस्ट बी कन्फ्यूज्ड। कन्फ्यूजन में, भ्रमित दिशा में आप कोई कदम नहीं उठा सकते, क्योंकि भ्रमित दशा में उठाया गया कोई भी कदम और भ्रम में ही ले जायेगा। वही बात, अंधेरे में आप दिया नहीं जला सकते, क्योंकि अंधेरे में जो आप दिया जलायेंगे, अँधेरे में भूल-चूक हो ही जायेगी।

लेकिन सब दिये अँधेरे में जलाये जाते हैं और दुनिया में सब कदम कन्फ्यूजन में ही उठाये जाते हैं।

(अब वर्षा की कुछ बूंदें प्रवचन स्थल पर गिरने लग गयी हैं। भगवान् श्री बोलना जारी रखते हैं।)

घबड़ायें न, थोड़ा पानी गिरेगा तो इतने घबड़ा न जायें। कृष्ण की बात सुनने आये हो, तो इतना परेशान न हों कि, दो चार बूंदें आप के कपड़े पर गिरेगी, तो आप मिट जायेंगे, कि मर जायेंगे, कि समाप्त हो जायेंगे। दो चार बूंद गिरती हैं, उन्हें गिर जाने दें। इतने कमजोर लोगों को गीता सुनने नहीं आनी चाहिए।

तुम नासमझी से प्रार्थना करोगे, वह भी मैं स्वीकार कर लूंगा

वह कृष्ण समझा रहे हैं, कि आग से जलती नहीं आत्मा। आपकी तरफ देखेंगे, तो उनको बड़ी निराशा होगी, कि पानी से गल जाती है। अभी कोई दो चार बूंद, अभी कोई पानी भी नहीं आ गया, अभी सिर्फ आसार है पानी के, बादल थोड़ी आवाज दे रहे हैं आपको देखने के लिए, कि आदमी किस तरह के इकट्ठे हैं यहाँ। अपनी जगह बैठे रहें। कोई भी आदमी उठे, तो पास के लोग उसे पकड़ कर नीचे बिठाल दें, क्योंकि नाहक इतने लोग देखेंगे, कि इतना कमजोर है यह आदमी, उस पर थोड़ी दया करें, उसे पकड़ कर वहीं के वहीं बिठा दें। कुछ कहने की जरूरत नहीं, उसे चुपचाप बिठा दें। पानी गिरेगा, कृष्ण की बात का पता चल जायेगा, कि आत्मा गलती है, कि नहीं गलती है। नहीं गले तो समझना कि कृष्ण ठीक कहते हैं, और गल जाय तो समझना कि कृष्ण गलत कहते हैं। तो आज प्रयोग करके चलेंगे, पानी को गिरने दें। देखें, कि गलत हैं कि नहीं गलत हैं। बच्चों जैसे काम न करें। और बच्चों जैसे काम करने हों, तो जगत् में जो थोड़े से बुद्धिमान हुए हैं उन लोगों की बातें सुनने नहीं आना चाहिए। और आप घबड़ायें नहीं, मैं यहाँ मंच पर बैठा हुआ हूँ, तो यहाँ पानी नहीं गिर रहा है ऐसा मत समझें। फिर भी बाथरूम में जाकर खड़ा हो जाऊँगा, कपड़े पहने, आधा घण्टा आप की तरफ से और उसको झेल लूंगा, आप परेशान न हों। एक पाँच मिनट में पानी चला जायेगा और आनन्द दे जायेगा।

कृष्ण की करुणा उन लोगों पर है, जो हर तरह से भूल से भरे हैं। हर तरह से, जिनसे गलत ही होने का डर है, जिनसे सही न हो पायेगा। कहते हैं,

तुम्हारी गलती को भी मैं स्वीकार कर लूंगा। तुम भूल से जाओगे मन्दिर में, वह भी मैं मान लूंगा। तुम नासमझी से प्रार्थना करोगे, वह भी मैं स्वीकार कर लूंगा।

भगवान श्री, पिछले श्लोक में कृष्ण कहते हैं, कि व्यक्ति वासनाओं की पूर्ति के लिए जिन देवताओं को पूजते हैं, वे देवता मेरे द्वारा विधान किये हुए फलों को प्रदान करते हैं। 'मेरे द्वारा विधान किये हुए फलों को' कृपया इसका अर्थ स्पष्ट करें।

इस जगत् में कुछ भी ऐसा नहीं होता है, जो परमात्मा के विधान से विपरीत हो। ऐसा कुछ भी नहीं होता है, जो उसके नियम के बाहर हो। ऐसा कुछ भी हो नहीं सकता है, जो उसकी शक्ति से ही, उसकी ऊर्जा से ही संचालित न होता हो। इसलिए कृष्ण कहते हैं, जो भी देवता, मनुष्य की वासनाओं से भरी चित्त दशा में भी, उनकी प्रार्थनाओं को पूरा करते हैं, वह भी मेरे ही द्वारा किये हुए विधान के माध्यम से संचालित होता है। मैं ही, मेरी शक्ति ही, उस सारे विधान के पीछे सक्रिय होती है।

अब बैठे रहे हैं, अब तो भागने से भी कुछ न होगा। आप भीग ही गये हैं। अब भागने से कुछ भी ज्यादा होने का नहीं है, अब बैठे रहें।

(वर्षा तीव्र होती चली गई। अतः प्रवचन बंद कर दिया गया।)

समय-बोध है योग

नौवाँ प्रवचन

गीता-ज्ञान-यज्ञ, बम्बई, रात्रि दिनांक ३० मई, १९७१

अन्तवत्तु फलं तेषां तद्भवत्यल्पमेधसाम् ।
देवान्देवयजो यान्ति मद्भक्ता यान्ति मामपि ॥२३॥

परन्तु जब अल्प बुद्धिवालों का वह फल नाशवान है तथा वे देवताओं को पूजनेवाले देवताओं को प्राप्त होते हैं और मेरे भक्त चाहे जैसे ही भजें, शेष में वे मेरे को ही प्राप्त होते हैं ।

कामनाओं से प्रेरित होकर की गयी प्रार्थनाएँ जरूर ही फल लाती हैं । लेकिन वे फल क्षणिक ही होने वाले हैं, वे फल थोड़ी ही देर टिकने वाले हैं। कोई भी सुख सदा नहीं टिक सकता, न ही कोई दुख सदा टिकता है ।

सुख दुख लहर की तरह आते हैं

सुख दुख लहर की तरह आते हैं और चले जाते हैं ।

देवताओं की पूजा से जो मिल सकता है, वह क्षणिक सुख का अभ्यास भी हो सकता है । वासनाओं के मार्ग से कुछ और ज्यादा पाने का उपाय ही नहीं है । इसलिए कृष्ण कहते हैं, जो मेरे निकट आता है, और उनके निकट आने की शर्त है, वासनाओं को छोड़कर, विषयासक्ति को छोड़कर, वह उसे पाता है जो नष्ट नहीं होता, जो खोता नहीं, जो शाश्वत है । इसलिए उन्होंने दो बातें इस सूत्र में कही हैं, एक, अल्प बुद्धिवाले लोग ।

अल्प बुद्धिवाले लोग कौन हैं ?

अल्प बुद्धिवाले लोग वे हैं, जो कि अपने ही हाथों, बहुत बड़े मूल्य पर बहुत छोटी चीज खरीदने को राजी हो जाते हैं ।

बहुत बड़े मूल्य पर बहुत छोटी चीज खरीदने को राजी हो जाते हैं। प्रार्थना से तो मिल सकता है परम सत्य, लेकिन वे माँग लेते हैं, कुछ क्षुद्र वस्तुएँ। प्रार्थना से मिल सकता है परम जीवन, लेकिन वे मांग लेते हैं शरीर की कुछ जरूरतें। निश्चित ही अल्पबुद्धि हैं इस कारण। और इसलिए भी अल्प बुद्धि हैं, कि जो भी वे माँगते हैं, वह मिल भी जाय, तो भी माँग का कोई अन्त नहीं होता। जो वे पाना चाहते हैं, पा लें, तब भी वे उतने ही अतृप्त, उतने ही दीन और उतने ही अधूरे होते हैं, जितना मिलने के पहले थे।

माँगना उसे, जिसे माँगने के बाद कुछ भी शेष न रह जाये

माँगना ही हो, तो उसे माँग लेना चाहिए, जिसे मांग कर फिर और कोई माँग शेष न रह जाय। पाना ही हो, तो उसे पा लेना चाहिए, जिसे पाकर तृप्ति हो जाती है और पाने की दौड़ समाप्त हो जाती है। लेकिन अल्प बुद्धि लोग दूर तक नहीं देख पाते। विस्तीर्ण, जीवन के पूरे पहलू को नहीं समझ पाते। क्षणिक उनकी बुद्धि होती है। अभी जो लगता है जरूरी, वह माँग लेते हैं।

बुद्धिमान वही है, जो जीवन की परम आवश्यकता को माँगता है।

सुनी है हम सबने कथा, बहुत प्यारी और मधुर है। नचिकेता अपने पिता के पास बैठा है। पिता ने किया है बड़ा यज्ञ। ब्राह्मणों को दान कर रहे हैं। पिता ने नचिकेता से कहा है, मैं अपना सब दान कर दूँगा। छोटा बच्चा है और छोटे बच्चों से कभी कभी जो सवाल उठते हैं, वह बड़े गहरे और आत्यंतिक होते हैं। वह बैठा हुआ है पास में, जब ब्राह्मणों को दान दिया जा रहा है और नचिकेता का पिता पुरानी बूढ़ी गायें दे रहा है, जिनसे दूध मिलने को नहीं। इस तरह की चीजें दे रहा है, जिनकी अब कोई जरूरत नहीं रही। तो नचिकेता बार बार पूछता है, कि मैं भी तो आपका हूँ न, तो मुझे कब दान देंगे, मुझे किसे दान देंगे? क्योंकि कहा आपने, कि मैं अपना सब कुछ दान दे डालूँगा। मैं भी तुम्हारा बेटा हूँ न! पिता को क्रोध आ जाता है। वह क्रोध में कहता है, तुझे भी दे दूँगा, घबड़ा मत। लेकिन तुझे मृत्यु को, यम को दे दूँगा।

नचिकेता, मानकर कि यम को दान कर दिया गया, यम के द्वार पर पहुँच जाता है, लेकिन यम घर के बाहर है। तो वह तीन दिन भूखा बैठा रहता है, फिर यम आते हैं। तो उसका तीन दिन भूखा बैठा रहना, उस छोटे से बच्चे का और इतनी सरलता से मृत्यु के द्वार पर स्वयं आ जाना, क्योंकि यम का अनुभव तो यही है कि वह जिसके द्वार पर जाता है, वही घर छोड़कर भागता है। यम के द्वार पर आनेवाला यह पहला ही व्यक्ति है, जो खुद खोज बीन करके आया और फिर यह देखकर, कि यम घर पर नहीं है, भूखा प्यासा बैठा है। तो यम कहते हैं कि तू कुछ माँग ले, तू वरदान ले ले। मैं तुझ पर प्रसन्न हुआ हूँ, मैं तुझे हाथी, घोड़े, धन दौलत, सुन्दर स्त्रियाँ राज्य सब तुझे दूँगा।

कुछ भी इस जगत् में सदा ठहरने वाला नहीं है

नचिकेता कहता है, लेकिन, जो धन आप देंगे, उससे मुझे तृप्ति मिल पायेगी ऐसी, जो कभी नष्ट न हो? वह यम उदास होकर कहता है, ऐसी तो कोई तृप्ति धन से कभी नहीं मिलती, जो समाप्त न हो। वह जो स्त्रियाँ आप मुझे देंगे, उनका सौंदर्य सदा ठहरेगा? वह यम नचिकेता से कहता है, कुछ भी इस जगत् में, सदा ठहरने वाला नहीं है। वह जो आप मुझे लम्बी उम्र देंगे, क्या उसके बाद आप फिर मुझे लेने न आयेंगे? तो यम कहता है, यह तो असम्भव है। कितनी ही लम्बी हो उम्र, अन्त में तो मैं आऊँगा ही। वह जो बड़ा राज्य आप मुझे देंगे, क्या उसे पाकर मैं वह पा लूँगा, ऋषियों ने जिसे कहा है, जिसे पा लेने से सब पा लिया जाता है? यम कहता है, उससे तो कुछ भी नहीं मिलेगा क्योंकि बड़े सम्राट वह सब पा चुके हैं और फिर भी दीन हीन मरे हैं। तो नचिकेता कहता है, ये चीजें फिर मैं न लूँगा। मुझे तो इतना ही बता दें कि मृत्यु का राज क्या है, ताकि मैं अमृत को जान सकूँ।

नचिकेता को बहुत समझाता है यम। यम बहुत बुद्धिमान है। मृत्यु से ज्यादा बुद्धिमान शायद ही कोई हो। अनन्त उसका अनुभव है, जीवन का। हर आदमी की नासमझी का मृत्यु को जितना पता है, उतना किसी और को नहीं होगा। क्योंकि जिन्दगी भर दौड़ धूप कर हम जो इकट्ठा करते हैं, मृत्यु उसे बिखेर जाती है। और एक बार नहीं, हजार बार हमारा इकट्ठा किया हुआ मौत ने बिखेर दिया है। हम फिर दुबारा मौका पाकर, फिर वही इकट्ठा करना शुरू कर देते हैं। आदमी की नासमझी का जितना पता मौत को होगा, उतना किसी और को नहीं है। इतने लोगों की नासमझी से गुजर कर मौत समझदार हो गयी हो, तो आश्चर्य नहीं। लेकिन वह बच्चा बहुत अडिग

है। वह कहता है मुझे तो वही बता दें जिससे अमृत को जान लूं। मृत्यु को समझा दें मुझे। और आप मृत्यु को जानते ही हैं, आप मृत्यु के देव हैं। आप नहीं बतायेंगे, तो मुझे कौन बतायेगा।

बुद्धिमान होगा नचिकेता कृष्ण के अर्थों में। हम बुद्धिमान नहीं हो सकते, हम अल्पबुद्धि हैं। ख्याल रखें, कृष्ण कह रहे हैं अल्पबुद्धि, बुद्धिहीन भी नहीं कह रहे हैं। बुद्धिहीन भी नहीं कह रहे हैं, अल्पबुद्धि। अगर मनुष्य बिलकुल बुद्धिहीन हो तो कोई संभावना नहीं रह जाती। बुद्धि तो है, पर बहुत छोटी है। बड़ी हो सकती है, विकसित हो सकती है। जो बीज की तरह है, वह वृक्ष की तरह हो सकती है। जो आज बहुत छोटी है, वह कल विराट बन सकती है।

कहते हैं, अल्पबुद्धि है आदमी। दुख तो नहीं चाहता आदमी, नहीं तो बुद्धिहीन होता। सुख चाहता है, लेकिन अल्पबुद्धि है क्योंकि ऐसा सुख चाहता है, जो अन्त में दुख ही लाता है और कुछ लाता नहीं।

कागज की नाव पर बैठकर, सागर की यात्रा पर जानेवाला बुद्धिहीन है

अल्पबुद्धि कहना प्रयोजन से है। और इस बात को अगर हम ठीक से समझें, तो हम सभी अल्प बुद्धि मालूम पड़ेंगे। हमने जो भी चाहा है, जो भी माँगा है, जो भी खोजा, जीवन के मंदिर में हमने जो भी प्रार्थनाएँ कीं, वह हमारी सब ऐसी प्रार्थनाएँ हैं, जैसे कोई रेत पर मकान बनाये, ताश के पत्तों का घर बनाये। कागज की नावें बनायें, और सोचे कि सागर की यात्रा पर निकल जायेगा। कागज की नाव पर कोई बैठकर सागर की यात्रा पर जा रहा हो, तो हम उसे क्या कहेंगे?

कृष्ण वही हमसे कह रहे हैं। हम सब कागज की नावों पर जीवन में यात्रा करते हैं। हमारी नावें सपनों से ज्यादा नहीं। और हमारे भवन ताश के पत्तों के घर हैं। और सब, रेत पर हमारे हस्ताक्षर हैं। हवा के झोंके आयेंगे और सब बुझ जायेगा, और सब मिट जायेगा। अल्प बुद्धि हैं हम। पर बुद्धि हम में है, अल्प ही सही। बीज ही सही, पोटीन्शियलिटि ही सही। इतना तो तय है कि सुख चाहते हैं। हाँ, इतना तय नहीं है कि सुख क्या है, वह हम नहीं समझ पाये।

सुख चाहते हैं, यह तय है। सुख चाहकर भी दुख पाते हैं, यह हमारा अनुभव है। लेकिन सुख की चाह हमारे भीतर है, वह बुद्धिमानी की सूचक है। लेकिन अत्यल्प बुद्धि की सूचक है। क्योंकि फिर जो हम करते हैं, उससे दुख हाथ में आता है। शायद हम ठीक से नहीं देख पाते कि सुख क्या है और दुख क्या है।

यह बहुत मजे की बात है, जो व्यक्ति भी थोड़ी दूर तक सोचेगा, वह हमेशा ऐसे सुख को चुन लेगा, जो बाद में दुख बन जाय। और जो व्यक्ति दूर तक सोचेगा, वह ऐसे दुख को चुनेगा, जो बाद में सुख बन जाय। भोगी और तपस्वी का इतना ही फर्क है। भोगी, आज जो सुख मालूम पड़ता है, उसे चुन लेता है, लेकिन कल वह दुख हो जाता है। तपस्वी आज जो दुख मालूम पड़ता है, उसे चुनता है, लेकिन कल वह सुख हो जाता है।

और यह बड़े मजे की बात है कि जो दुख को चुन सकता है आज, वह कल सुख का मालिक हो सकता है। और जो सुख को ही चुन सकता है आज, कल वह सिवाय दुख के गड्ढों और किन्हीं चीजों को उपलब्ध नहीं होगा। सुख पर जिसकी नजर है, वह दुख में पड़ जायेगा। उसकी नजर बहुत ओछी है, बहुत पास ही वह देखता है। इतने पास देखता है, कि आगे के रास्ते का कुछ पता ही नहीं चलता। दूर दृष्टि चाहिए, दूर तक देखने की सामर्थ्य चाहिए। और अगर हम जरा भी दूर देख पायें, तो हम जिन्हें सुख मानकर चलते हैं, उनकी खोज में हम अपने जीवन को नष्ट नहीं करेंगे।

एक ही अनुभव ने मुझे बहुत कुछ कह दिया

सुना है मैंने, कि एक अमरीकी फिल्म निर्माता नयी अभिनेत्री की तलाश में था। अपने एक कवि मित्र को पकड़ लाया, जिसकी सौंदर्य के सम्बन्ध में बड़ी सुरुचि थी, जो सौंदर्य का पारखी था, और जिसने सुन्दरतम स्त्री को खोज कर विवाह किया था। सौंदर्य पर उसने कविताएँ लिखी थीं और सौंदर्य पर उसने शास्त्र लिखे थे। एस्थेटिक्स पर उसकी बड़ी प्रसिद्ध किताबें थीं। उस फिल्म निर्माता ने सोचा कि उस मित्र कवि को ले चलूँ, वह एक नयी अभिनेत्री की तलाश में था। एक विश्व सौंदर्य प्रतियोगिता हो रही थी, जहाँ दुनिया भर से कोई तीन दर्जन युवतियाँ पुरस्कार लेने आयी थीं। तो उसने कहा अपने मित्र को कि तुम बैठकर एक एक स्त्री को ठीक से देखते जाना और जो स्त्री तुम्हें

ठीक जँच जाय, मुझे इशारा कर देना, तो मैं उसे अपनी नयी फिल्म के लिए प्रमुख पात्र बना लूँगा।

लेकिन फिल्म निर्माता बड़ी मुश्किल में पड़ गया। पहली ही सुन्दर युवती आयी, सभी स्त्रियाँ एक से एक ज्यादा सुन्दर थी, एक एक राष्ट्र से चुनकर भेजी गयी थीं। पहली स्त्री सामने आयी, अर्धनग्न, करीब करीब नग्न। बगल में कवि बैठा था, कवि ने उसे देखा और कहा फूः, वह बहुत हैरान हुआ, निर्माता बहुत हैरान हुआ। उसने इतनी सुन्दर स्त्री देखी नहीं थी। पर कवि ने कहा फूः, वह स्त्री चली गयी। दूसरी स्त्री आयी, और भी सुन्दर थी, पर कवि ने कहा फूः। वे तीन दर्जन स्त्रियाँ सामने से गुजरती गयीं और वह एक ही काम करता रहा फूः फूः। वह चित्र निर्माता तो बहुत घबड़ा गया। जब तीनों दर्जन स्त्रियाँ निकल गयीं तो उसने पूछा, आश्चर्य, मैं तो तुम्हें लाकर बड़ी मुश्किल में पड़ गया, कोई भी स्त्री पसन्द नहीं पड़ी, जो भी स्त्री को तुमने देखा, कहा फूः क्या मतलब है तुम्हारा ? क्या चाहते हो तुम, क्या मापदण्ड है तुम्हारा ?

उस कवि ने कहा, यू हैव मिस अण्डरस्टुड मी सर, आप मुझे गलत समझे। आई वाज नाट सेईंग फूः फूः टु दीज गर्ल्स, आइ वाज सेईंग फूः टु माई वाइफ। यह मैं लड़कियों के लिए फूः फूः नहीं कह रहा था, यह तो मैं अपनी पत्नी के लिए फूः फूः कर रहा था। पर उसने कहा, पत्नी का इससे क्या सम्बन्ध ? तो उसने कहा, जब मैंने पत्नी को पहली दफा देखा था, तो वह भी ऐसी ही अतीव सुन्दरी मालूम पड़ती थी। फिर जैसे जैसे पास आयी, सब फूः फूः सिद्ध हो गया। तो मैं जानता हूँ कि यह सब जो रूपरेखा दिखायी पड़ रही है, पीछे फूः फूः सिद्ध हो जाने वाला है।

अब इस जगत् में दुबारा शरीर की रेखाएँ मुझे आकर्षित न कर पायेंगी। अब दुबारा शरीर का अनुपात मेरे लिए सौंदर्य न बन सकेगा। एक ही अनुभव ने मुझे बहुत कुछ कह दिया।

निश्चित ही यह कवि सौंदर्य का पारखी रहा हो या न रहा हो, अल्प बुद्धि नहीं था। अल्प बुद्धि होता तो सोचता कि एक पत्नी सुन्दर दिखायी पड़ी, फिर सुन्दर नहीं सिद्ध हुई, तो जरूरी नहीं है कि दूसरी स्त्री सुन्दर दिखायी पड़े और सुन्दर सिद्ध न हो। दूसरी स्त्री सुन्दर सिद्ध हो सकती है, यही हमारा तर्क है। अल्प बुद्धि का तर्क यही है कि कोई फिक्र नहीं, एक मकान सुख न

दे पाया, तो दूसरा देगा। कोई फिक्र नहीं, एक पद पर शांति नहीं मिली तो और दूसरे पद पर मिलेगी। कोई फिक्र नहीं, छोटी तिजोड़ी भर गयी पूरी, फिर भी मन न भरा, शायद बड़ी तिजोड़ी भर जाय, तो मन भर जायेगा। अल्प बुद्धि का यही तर्क है। वह एक अनुभव को जीवन की चिरस्थायी निधि नहीं बना पाता। वह अपने को धोखा दिये चला जाता है, वह कहता है, नहीं कोई बात नहीं, यह अनुभव गलत हुआ, दूसरा अनुभव ठीक होगा, तीसरा अनुभव ठीक होगा, चौथा अनुभव ठीक होगा।

लेकिन इस जगत् में एक अनुभव, उससे मिलते जुलते सारे अनुभव की खबर दे जाता है। पर उसके लिए बहुत दूर तक देखने वाली दृष्टि, मेधा चाहिए। अल्पबुद्धि नहीं, गहरी दृष्टि चाहिए, महाबुद्धि चाहिए। तब एक अनुभव समस्त अनुभवों के लिए मार्ग बन जाता है, द्वार बन जाता है।

लेकिन बहुत कठिन है। अगर आपके हाथ में एक रुपया आया और आपके हाथ में कुछ न आया, तो आप यह मानने को कभी राजी न होंगे कि दूसरा आयेगा और कुछ न आयेगा। तीसरा आयेगा और कुछ न आयेगा। आपका मन धोखा दिये चला जायेगा, वह कहेगा एक से नहीं मिला, तो वह कहेगा कि दूसरा पाने की शीघ्रता करो। दूसरे से नहीं मिला तो तीसरा पाने की शीघ्रता करो। बस मन इतना ही कहेगा, और तेजी से दौड़ो, और तेजी से दौड़ो, कभी तो वह दिन आ जायेगा, जब उतने रुपये हाथ में होंगे, जब तृप्ति हो जाय। लेकिन लौटकर इतिहास में भी लोगों से पूछें, कि वह तृप्ति कभी आयी ?

युद्ध लड़ा लेकिन आनन्द हाथ न आया

अशोक युद्ध पर गया था। अल्पबुद्धि आदमी नहीं था। कलिंग के युद्ध पर लड़ा। एक लाख आदमी मारे गये। अशोक के पहले भी सम्राट लड़े हैं, बाद में भी लड़ते रहे हैं, सदा लड़ते रहेंगे। लेकिन जो अशोक को दिखायी पड़ा, वह पहले के सम्राटों को कभी दिखायी नहीं पड़ा, बाद के सम्राटों को भी कभी दिखायी नहीं पड़ा। अशोक कलिंग के युद्ध के बाद वापस लौटा, जीतकर लौटा था, लेकिन उदास लौटा।

जीतकर, दुनिया में बहुत कम लोग हैं, जो उदास लौटते हैं। जीतकर तो आदमी प्रसन्न होकर लौटता है, अल्पबुद्धि का लक्षण है यह। जब कोई जीतकर

प्रसन्न होकर लौटे, तो समझना कि वह अल्पबुद्धि है। और जब कोई हार कर प्रसन्न लौट आये, तो समझना कि वह अल्प बुद्धि नहीं है। जीतकर कोई उदास लौटे, तो समझना कि वह अल्प बुद्धि नहीं है। और जीत कर कोई हंसता हुआ लौटे, तो समझना कि वह अल्प बुद्धि है।

अशोक उदास लौट आया। उसे नाम ही उसके मातापिता ने अशोक इसलिए दिया था, कि वह कभी उदास नहीं होता था, सदा प्रफुल्लित था, चियरफुल था। उसे नाम ही इसलिए दिया था कि वह सदा आनंदित और प्रफुल्लित रहता था। लेकिन इतने बड़े राज्य को जीत कर लौटा है, कलिंग की विजय करके लौटा है और उदास लौट आया है। चिन्ता फैल गयी। उसके मित्रों ने पूछा कि इतने उदास हो जीतकर, हार जाते तो क्या होता? स्वभावतः अल्पबुद्धि के लिए यह सवाल उठा होगा। जीतकर इतने उदास हो, हार जाते तो क्या होता!

अशोक ने कहा, युद्ध अब असंभव है, एक अनुभव काफी सिद्ध हुआ। अब युद्ध नहीं कर सकूँगा, अब जीतने नहीं जा सकूँगा, क्योंकि कितनी कामना की थी कि कलिंग को जीत लूंगा तो इतना आनन्द मिलेगा। लेकिन कलिंग हाथ में आ गया, आनन्द तो हाथ में नहीं आया। हालांकि मेरा मन फिर धोखा दे रहा है, कि अभी और भी जीतने को जगह पड़ी है, उनको भी जीत लो। लेकिन इस मन की अब दुबारा नहीं मानूँगा। मानकर देख लिया एक बार, एक लाख आदमियों की लाशें बिछा दीं, सिर्फ खून बहा, हाथ में खून के दाग लगे। करुण चीत्कारें सुनाई पड़ीं, रोना और न मालूम कितने घरों के दिये बुझ गये। और इस मन ने मुझे कहा था, आनन्द मिलेगा, वह मैं भीतर खोज रहा हूँ, वह मुझे कहीं मिला नहीं। लाखों लोग मर गये, लाखों परिवार उजड़ गये, और जिस सुख के लिए इस मन ने मुझे कहा था, उसकी रेखा भी मुझे दिखायी नहीं पड़ती। युद्ध समाप्त हो गया, मेरे लिए अब कोई युद्ध नहीं है। और उसी दिन से अशोक ने भिक्षु की तरह रहना शुरू कर दिया था। उसने कहा कि अब युद्ध मेरे लिए नहीं है, अब तो सम्राट होने का कोई अर्थ नहीं रहा। वह तो युद्ध के साथ जुड़ा हुआ भाव है, सम्राट होने का।

क्षुद्र वासना लेकर प्रभु के द्वार पर मत जाना

एच. जी. वेल्स ने विश्व इतिहास में लिखा है कि दुनिया में बहुत सम्राट हुए, लेकिन अशोक जैसा चमकता हुआ तारा विश्व के इतिहास में दूसरा नहीं

है। कारण है उसका, महाबुद्धि है। और उसके महाबुद्धि होने की बात क्या है, राज क्या है? राज यह है कि युद्ध के एक अनुभव ने उसे मन का पूरा रहस्य समझा दिया।

आपने कितनी बार क्रोध किया है लेकिन क्रोध का रहस्य आप समझ पाये? कितनी बार काम वासना में उतरते हैं, कामवासना का रहस्य समझ पाये? कितनी बार प्रेम किया है, प्रेम का रहस्य समझ पाये? कितनी बार घृणा की है, घृणा का रहस्य समझ पाये? नहीं, रोज वही करते रहे हैं, लेकिन हाथ में कोई भी निष्पत्ति, कोई भी कन्क्लूजन नहीं है। हाथ खाली का खाली है, और कल आप फिर बच्चे जैसा ही व्यवहार करेंगे, अल्पबुद्धि है चित्त।

कृष्ण कहते हैं, अल्पबुद्धि वाले लोग सुख की माँग करते हैं देवताओं से। देवताओं से ही की जा सकती है मांग सुख की। सुख भी उन्हें मिल जाते हैं, लेकिन क्षणभंगुर सिद्ध होते हैं। हाँ, जो मेरे पास आता है, परम ऊर्जा के द्वार पर जो आता है, वह अनन्त आनंद का मालिक हो जाता है। अगर प्रभु के द्वार पर ही जाना हो, तो क्षुद्र वासना लेकर मत जाना। वासना पूरी भी हो जाय, तो भी कुछ हाथ नहीं लगने वाला है।

प्रभु के द्वार पर तो खाली होकर जाना, बिना कोई वासना लिये। प्रभु से तो यही कहते जाना कि जो तूने दिया है, वह जरूरत से ज्यादा है।

जो हमें मिला है, उसका हमें कोई स्मरण नहीं है

सुना है मैंने, कि एक भिखारी, एक वृद्ध महिला के सामने हाथ फैलाकर भीख मांग रहा है, लँगड़ा है, घसिट रहा है। उस वृद्ध महिला को बहुत दया आ गयी है और उसने कहा कि दुख होता है तुम्हें देखकर, पीड़ा होती है तुम्हें देखकर। परमात्मा न करे, कोई लँगड़ा हो। लेकिन फिर भी मैं तुमसे कहती हूँ कि लंगड़े ही हो न, परमात्मा को धन्यवाद दो क्योंकि अंधे होते तो और मुसीबत होती।

उस आदमी ने कहा, आप ठीक कहती हैं। जब मैं अन्धा होता हूँ, तो लोग नकली सिक्का मेरे हाथ में पकड़ा देते हैं। लँगड़ा होना भी उसके लिए एक काम

था, अन्धा होना भी एक काम था। उसने कहा, आप बिल्कुल ठीक कहती हैं, अन्धे होने में बड़ी मुसीबत होती है, लोग नकली सिक्के पकड़ा देते हैं। इसीलिए तो मैंने अन्धा होना बिल्कुल बन्द कर दिया, अब मैं लँगड़े होने से काम चलाता हूँ। उस वृद्ध स्त्री को ख्याल भी न रहा होगा, कल्पना भी न रही होगी। उसने तो कहा था इस ख्याल से कि वह आदमी शायद अपने लँगड़ेपन में भी प्रभु को धन्यवाद दे पाये। लँगड़ा भी प्रभु को धन्यवाद दे सकता है। काश, जो उसे मिला है, वह दिखायी पड़ जाय। लेकिन हम सब उस भिखारी जैसे ही हैं। जो हमें मिला है, उसके लिए हम धन्यवाद नहीं दे पाते हैं। जो नहीं मिला है, उसकी शिकायत कर पाते हैं। उस आदमी ने कहा ठीक कहती हैं आप, क्योंकि जब मैं अन्धा होता हूँ तो लोग नकली सिक्के हाथ में रख देते हैं। नकली भी कोई हाथ में रखता है, इसका भी धन्यवाद हो सकता है। पर उसके लिए बड़ी दूर दृष्टि, उसके लिए महाबुद्धि चाहिए। इतना भी क्या कम है कि किसी ने नकली सिक्का भी आपके हाथ में रखा! यह भी कहाँ जरूरी था? इसकी भी शिकायत करने कहाँ जा सकते हैं? उसने हाथ पर खाली हाथ भी रखा, तो भी क्या कम है, क्योंकि वह न रखता तो कोई सवाल तो न था।

लेकिन जिन्दगी हमारी ऐसी ही है। जो हमें मिला है, उसका हमें कोई स्मरण नहीं है। जो हमें नहीं मिला है, उसका हमें बहुत तीव्र बोध है। वह काँटे की तरह छाती में चुभता रहता है। धार्मिक आदमी ऐसी प्रार्थना करने नहीं जाता मंदिर में, जिसमें कुछ माँगता हो। वह इस बात का धन्यवाद देने जाता है कि जो तूने दिया है, वह मेरी सामर्थ्य से भी ज्यादा है।

जो उसने दिया है, उसका हम उपयोग नहीं करते

और जो उसने दिया है, उसका हमने उपयोग क्या किया है? कभी आपने सोचा?

आपको आँखें दी हैं, आँखों से आपने ऐसा क्या देखा है, जो आप न देखते तो कुछ हर्जा हो जाता। कभी इस पर सोचा है। परमात्मा ने आपको आँखें दी हैं, आपने इन आँखों से ऐसा क्या देखा है, जो न देखते तो कुछ हर्जा हो जाता। शायद ही आपको याद आये। उसने आपको कान दिये हैं, ऐसा क्या

सुना है जो न सुनते तो कोई हर्जा हो जाता। उसने आपको हाथ दिये हैं, ऐसा आपने क्या स्पर्श किया है, जो स्पर्श न किया होता तो आप कुछ खो देते। उसने आपको पैर दिये हैं, आपने ऐसी कौन सी तीर्थयात्रा की है, जो कि अगर पैर न होते और अगर आप न कर पाते, तो प्राणों में कसक रह जाती।

नहीं, पैर किसी तीर्थ तक नहीं पहुँचे, आँखें किसी दृश्य को नहीं देख पायीं, कान ने कोई अमृत नहीं सुना। और ऐसा नहीं है कि अमृत चारों तरफ मौजूद नहीं है, और ऐसा भी नहीं है कि तीर्थ बहुत दूर है, और ऐसा भी नहीं है कि वह दृश्य दिखायी न पड़ जाय, जिसे देख लेने पर आँखें सार्थक हो जाती हैं, वह भी निकट है।

पर जो हमें मिला है, हम उसकी तरफ ध्यान ही नहीं देते, उपयोग की तो बात दूर है। उपयोग का तो कोई सवाल ही नहीं है। हम उस पर ध्यान ही नहीं देते। हम उसे माँगते ही चले जाते हैं जो नहीं मिला है। हमारी सारी प्रार्थनाएँ, जो नहीं मिला है, उसकी माँग है। पूर्ण हो जायेंगी वह माँग। लेकिन कृष्ण कहते हैं कि फिर भी वह अल्प बुद्धि है आदमी, क्योंकि थोड़ी ही देर में वह पायेगा कि यह सब सुख जो पाये थे, खो गये।

प्रार्थना तो वही सार्थक है, जो वहाँ पहुँचा दे। जिसके मिलने पर फिर खोना नहीं, जिसके मिलन में फिर बिछोह नहीं। पर वह देवताओं की पूजा से नहीं, वह तो परम सत्ता की तरफ समर्पण से सम्भव है।

अव्यक्तं व्यक्तिमापन्नं मन्यन्ते मामबुद्धयः ।
परं भावमजानन्तो ममाव्ययमनुत्तमम् ॥२४॥
नाहं प्रकाशः सर्वस्य योगमायासमावृतः ।
मूढोऽयं नाभिजानाति लोको मामजमव्ययम् ॥२५॥

बुद्धिहीन पुरुष मेरे अनुत्तम अर्थात् जिससे उत्तम और कुछ भी नहीं, ऐसे अविनाशी परम भाव को अर्थात् अजन्मा अविनाशी हुआ भी अपनी माया से प्रकट होता हूँ। ऐसे प्रभाव को तत्त्व से न जानते हुए मन इंद्रियों से परे मुझ सच्चिदानन्दघन परमात्मा को मनुष्य की भाँति जन्मकर, व्यक्तिभाव को प्राप्त हुआ मानते हैं।

तथा अपनी योगमाया से छिपा हुआ मैं सबके प्रत्यक्ष नहीं होता हूँ। इसलिए यह अज्ञानी मनुष्य मुझ जन्मरहित अविनाशी परमात्मा को तत्त्व से नहीं जानता है। अर्थात् मेरे को जन्मने और मरनेवाला समझता है।

दो बातें कृष्ण इस सूत्र में कह रहे हैं। एक, साकार शरीर में 'मैं' खड़ा हूँ, आकार लिया है। जो नहीं जानते हैं, वे सोचते हैं, मेरा आकार ही 'मैं' हूँ। वे मेरे भीतर छिपे निराकार को नहीं देख पाते। रूप लिया है मैंने, जिनके पास देखने की आँखें नहीं हैं, सोचने के लिए मेधा नहीं, वे मेरे रूप को ही देख पाते हैं। उस अरूप को जो भीतर छिपा है, उससे अपरिचित रह जाते हैं। मेरा वह जो सच्चिदानन्द रूप है, मेरा यह जो सच्चिदानन्द स्वभाव है, वह उनकी आँखों से ओझल रह जाता है। इसे थोड़ा समझ लेना जरूरी है।

परमात्मा आकार में ही प्रकट होता है

पहली बात, परमात्मा जब भी प्रकट होगा, तब रूप में प्रकट होगा, आकार में प्रगट होगा। प्रगट होने का अर्थ है रूपायित होना, टु बी इन द फार्म। प्रगट होने का अर्थ ही होता है, रूप लेना। प्रगट होने का अर्थ ही होता है, आकार लेना। प्रगट होने का अर्थ ही होता है, सीमा में खड़े होना। प्रगट होने का अर्थ ही है, पृथ्वी पर, शरीर में, देह में अभिव्यक्त होना। लेकिन हमें बड़ी कठिनाई होती है।

यह बल्ब है बिजली का, जलता है। बिजली प्रगट नहीं हो सकती है, बिना इस बल्ब के। बल्ब का तो रूप होगा, आकार होगा, बिजली का कोई रूप और आकार नहीं है। वह आदमी नासमझ है, जो बल्ब को बिजली समझ ले। लेकिन वह नासमझ भी तर्क दे सकता है, जो डंडा उठाकर ट्यूब के ऊपर पटक दे, तो ट्यूब फूट जाय और बिजली बन्द हो जाय। तो वह कहे कि देखो, मैंने कहा था न कि यह बल्ब ही बिजली है। मारा डंडा, टूट गया बल्ब, नहीं बची बिजली। फिर भी हम जानते हैं कि बल्ब बिजली नहीं है। बल्ब पूरी तरह बचा रहे और बिजली जा सकती है, और बल्ब पूरी तरह मिट जाय तो भी बिजली रहती है। बल्ब केवल अभिव्यक्त होने की व्यवस्था है, मैनिफेस्टेशन है। जब भी किसी शक्ति को प्रगट होना हो, तो रूप और आकार के अतिरिक्त कोई मार्ग नहीं है। कृष्ण कहते हैं, जो नासमझ हैं, वे मेरी देह को ही समझ लेते हैं कि यह 'मैं' हूँ।

लेकिन जो आकार पर रुक जाये, वह नासमझ है

इन नासमझों में दो तरह के लोग हैं। एक तो वे नासमझ, जो कृष्ण को प्रेम करने लगेंगे, लेकिन वे कृष्ण की देह को ही प्रेम करते चले जायेंगे। कृष्ण को, वह जो अरूपी भीतर छिपा है, उसको नहीं देख पायेंगे। और एक वे नासमझ, जो दुश्मन हो जायेंगे। वे कहते रहेंगे कि यह आदमी तो शरीरधारी है, यह भगवान् कैसे हो सकता है? यह आदमी उठता है, बैठता है, सोता है, भूख लगती है, खाना खाता है, यह भगवान् कैसे हो सकता है?

उन दोनों की बुद्धि में बहुत भेद नहीं है। जो कृष्ण को प्रेम करेंगे, वे इस शरीर को ही भगवान् मान लेंगे। फिर वह कृष्ण की मूर्ति बना लेंगे, फिर वह

उस कृष्ण की मूर्ति को सुबह दातून करायेंगे, पानी पिलायेंगे, स्नान करायेंगे। फिर वह इस कृष्ण की मूर्ति को शयन करायेंगे, दोपहर को द्वार बन्द करके बिस्तर पर लिटायेंगे, फिर उस मूर्ति को कपड़े पहनायेंगे। फिर यह सब चलेगा। इस बात को भूल जायेंगे कि जिस कृष्ण का हमने आविर्भाव देखा था, वह यह मूर्ति नहीं है। वह आविर्भाव तो अमूर्त का था, इस मूर्ति से हुआ था, इस रूप में हुआ था। इस मूर्ति का उपयोग किया जा सकता है। इस मूर्ति के प्रति श्रद्धा भी प्रगट की जा सकती है, लेकिन इसी मूर्ति के आसपास जो घूमने लगें, और अमूर्त को भूल जायें, वे नासमझ हैं।

एक तो नासमझी, जो प्रेम कर लेता है। दूसरी नासमझी यह है, कि वे लोग बतायेंगे कि भगवान् कैसे हैं। धूप पड़ती है तो पसीना आता है, दौड़ें तो सांस चढ़ जाती है, थक जाते हैं तो इन्हें भी नींद आती है। हम आदमियों जैसे ही हैं, इसलिए हम कैसे स्वीकार करें कि वह भगवान् हैं। वह एक दूसरा वर्ग है जो कहेगा, हम स्वीकार नहीं कर सकते। उसकी भी नासमझी वही है, जो उस भक्त की है जो आकार में देख रहा है। वह भी आकार में देख रहा है।

जो निराकार को देख पाये वह बुद्धिमान है

कृष्ण कहते हैं, निराकार को जो देख पाये, वही बुद्धिमान है। असल में बुद्धि की परीक्षा ही यही है, कि वह निराकार को देख पाये। आकार को तो, निर्बुद्धि भी देख पाता है। आकार को देखने में कोई बुद्धिमत्ता नहीं है। आकार तो सभी को दिखायी पड़ता है। वह जो नहीं दिखायी पड़ता है, वह जो पीछे छिपा खड़ा है, उसे जो देख पाये, उसे जो पहचान पाये, वही बुद्धिमान है। लेकिन कृष्ण में ही कोई निराकार को देख लेगा, यह सम्भव नहीं है, जब तक वह सब जगह निराकार को देखना शुरू न कर दे।

जब आप एक वृक्ष को देखते हैं, तो आपको आकार ही दिखायी पड़ता है। आपको वह जीवन ऊर्जा, जो वृक्ष के भीतर बहती है और आकार लेती है, वह आपको दिखायी नहीं पड़ती। जब एक फूल खिलता है, तो आकार ही दिखायी पड़ता है। उस फूल के भीतर जो ऊर्जा दिखती है और पंखुड़ियों में फैलती है, और जिस शक्ति के कारण पंखुड़ियाँ बंद थीं और खुल जाती हैं, उस शक्ति को आप नहीं देख पाते। जब एक बीज टूटता है, तो आप बीज को

देखते हैं, लेकिन जो उसके भीतर भरा था और टूटना चाहता था, और तोड़ दिया बीज को और बाहर आया, वह आपको नहीं दिखायी पड़ता।

हम देखते ही आकार को हैं सब तरफ। जब हम सब तरफ आकार को देखते हैं, तो यह संभव नहीं है कि विशेष रूप से कृष्ण या क्राइस्ट या मुहम्मद के संबंध में हम आकार को न देखें और निराकार को देखें। आकार को देखने की हमारी जड़बद्ध आदत है। हम जो चौबीस घण्टे देखते हैं, वही हम कृष्ण में भी देख पायेंगे। हम दूसरी बात न देख पायेंगे

सब फोनी है, सब झूठ है

सुना है मैंने, एक जहाज पर, पानी के जहाज पर, बहुत से यात्री और एक जादूगर भी है। और एक तोता भी है एक आदमी के साथ। वह जादूगर समय काटने के लिए जहाज के यात्रियों को बिठाकर, कुछ ट्रिक्स, कुछ अपना काम दिखाता है, कुछ हाथ की सफाइयाँ दिखाता है। लेकिन वह तोता भी उसी जादूगर के गाँव का है और जादूगर के घर के सामने का ही है। जब भी वह जादूगर कुछ दिखाता है, तो तोता जोर से चिल्लाता है, फोनी फोनी, सब झूठ है, सब झूठ है, सब तरकीब है, सब हाथ की सफाई है। जब भी जादूगर कुछ दिखाता है, वह तोता जरूर चिल्लाता है कि सब हाथ की सफाई है, सब धोखा है, सावधान।

फिर जहाज डूब जाता है। एक बड़ा तुफान आया और जहाज डूब गया। संयोग की बात, एक लकड़ी के पटिये को पकड़कर जादूगर अपने को बचाने की कोशिश करता है, वह तोता भी उसी लकड़ी के पटिये पर आकर बैठ गया। अब वह दोनों ही समुद्र में चलते हैं। दो दिन तक जादूगर भी गुस्से में उससे नहीं बोला, क्योंकि उससे दुश्मनी कर रहा था रोज। और तोता भी दो दिन तक नहीं बोला। क्योंकि उसकी भी हिम्मत न पड़ी कहने की। लेकिन दो दिन बाद उसने कहा जादूगर से, अच्छी बात है, माना कि तुम बड़े बुद्धिमान हो, लेकिन जरा यह तो बताओ कि उस जहाज का तुमने क्या किया? वह समझा कि कोई ट्रिक की है, इसी की शरारत है। उस तोते ने समझा कि इसी की कोई शरारत है, हरकत है। लेकिन दो दिन तक उसने देखा कि ऐसी कैसी ट्रिक कि दो दिन हो गये लेकिन अभी तक वह जहाज नहीं लौटा। उसने कहा कि

माना, कि तुम बड़े बुद्धिमान हो, लेकिन कृपा करके अब इतना तो बता दो, कि उस जहाज का क्या किया ?

चौबीस घण्टे, बरसों से वह तोता जादूगर के घर के सामने उसके हाथ की सफाइयाँ देख रहा था। उसके सोचने का एक ढंग बना। फिर जहाज पर भी वह हाथ की सफाइयाँ देख रहा था, उसके सोचने का एक ढंग निश्चित हो गया था। वह यह सोच ही नहीं पाया तोता कि जहाज डूब गया। उसने यही समझा कि इसी की शरारत है। इसी ने कोई ट्रिक, कोई हाथ की सफाई दिखायी है। इसलिए दो दिन तक वह चुप रहा, कि कब तक यह हाथ की सफाई दिखाता रहेगा। आखिर थोड़ी बहुत देर में जहाज प्रगट होगा, तब मैं चिल्लाऊँगा, फोनी फोनी, सब झूठा है। लेकिन वह मौका आया नहीं दो दिन तक।

आकार के पीछे निराकार, सदा छिपा है

हम सबके भी मन की आदतें हैं, सोचने के ढंग हैं। बँध जाते हैं। जब पत्थर में नहीं दिखता कुछ, तो मूर्ति में भी नहीं दिखेगा। पत्थर में दिखे तो मूर्ति में भी दिख जायगा। कोई कहता हो कि पत्थर में तो मुझे पत्थर ही दिखता है और मूर्ति में भगवान् दिखते हैं, तो झूठ कहता है। कोई अगर कहता हो कि मेरे बेटे में तो मुझे शरीर ही दिखता है, मेरी पत्नी में मुझे शरीर दिखता है, मेरे पिता में मुझे शरीर दिखता है और राम में मुझे भगवान् दिखते हैं तो गलत कहता है। यह नहीं हो सकता। यह संभव नहीं है, क्योंकि एक बार राम के शरीर में अगर निराकार दिखाई पड़ जाय तो सभी शरीरों में दिखायी पड़ना शुरू हो जायगा।

दिखायी पड़ जाय, तो बात खुल गयी। वह हमारा पुराना तर्क टूट गया। वह हमारे पुराने देखने का ढाँचा, व्यवस्था मिट गयी। अब हमने नये ढंग से चीजों को देखा। अब हमें आकार दिखाई पड़ेगा, लेकिन आकार के पीछे निराकार सदा ही छिपा हुआ मालूम पड़ेगा। उसका एहसास होगा, उसकी एक छाया हर आकार का पीछा करेगी। किसी व्यक्ति को हम गले मिलायेंगे, हड्डियाँ ही गले मिलेंगी लेकिन हम फिर भीतर से जानेंगे कि कुछ और, निराकार भी मिल रहा है। तब वह आत्मा का मिलन बन जायेगा।

कृष्ण कहते हैं, बुद्धिहीन जो हैं, वे मेरे शरीर को ही देख पाते हैं, रूप को ही देख पाते हैं, आकार को ही देख पाते हैं। वे मेरी निराकार विभूति का अनुभव नहीं कर पाते। और उस निराकार में ही 'मैं' छिपा हूँ, वही 'मैं' हूँ। अब यह कठिनाई है। अभिव्यक्ति होने की कठिनाइयाँ हैं। सबसे बड़ी कठिनाई यह है कि अभिव्यक्त होते ही आकार लेना पड़ेगा।

आकार के बिना कोई अभिव्यक्ति संभव नहीं है।

अगर मुझे बोलना है तो शब्द का उपयोग करना पड़ेगा। लेकिन शब्द का उपयोग करते ही डर यह है कि अर्थ आपके पास पहुँचे ही नहीं, सिर्फ शब्द पहुँच जाय। जैसा की रोज होता है, शब्द ही पहुँच जाते हैं, अर्थ नहीं पहुँचता। अर्थ तो पीछे पड़ा रह जाता है। अर्थ निराकार है। शब्द साकार है। जब मैं एक शब्द बोलता हूँ, तो आपके पास जाकर शब्द आपकी मेमरी में, आपकी स्मृति को बैंक में जमा हो जाता है। आप समझे कि समझ गये, शब्द पास आ गया, अब आप उसका उपयोग कर सकते हैं। कोई चाहे तो आप बता सकते हैं कि मैं क्या क्या बोला। आप बता भी दें कि मैं क्या क्या बोला, तब भी जरूरी नहीं है कि आप वह समझ गये हैं, जो मैंने बोला है। क्योंकि वह अर्थ है, वह पीछे छिपा पड़ा है। उस अर्थ को जानने के लिए निराकार की पकड़ चाहिए। अब बोलना है, तो शब्द का उपयोग करना पड़ेगा और जो बोलना है वह निःशब्द है। कठिनाई है, अड़चन है, मुसीबत है, लेकिन ऐसा तथ्य है। जीवन का ऐसा तथ्य है। यहाँ सभी चीजें जब भी प्रकट होंगी, रूप लेंगी। रूप लेते ही रूप दिखाई पड़ेगा, अरूप छिप जायगा। वह अरूप नहीं दिखाई पड़े, तो हमारे जीवन में भागवत् चैतन्य का कोई संस्पर्श नहीं हो पाता है।

निराकार को जानने के लिए, आकार से ऊपर उठना पड़ेगा

कृष्ण कहते हैं, मुझ सच्चिदानन्द को जानना हो, तो रूप से आँखें उठानी पड़ेंगी, आकार से ऊपर उठना पड़ेगा, शरीर के पार झाँकने की कोशिश करनी पड़ेगी। यह कहीं से भी शुरू की जा सकती है। जरूरी नहीं है कि कोई कृष्ण के पास ही जाय, क्योंकि अब कैसे जायेंगे कृष्ण के पास। कहीं से भी शुरू कर सकते हैं, एक गेस्टाल्ट है मस्तिष्क में। हम जिस ढंग की देखने की आदत से बंध गये हैं, उसी तरह देखे चले जाते हैं। हमें दूसरी चीज दिखानी नहीं पड़ती।

हम सब कण्डीशंड हैं।

एक मजबूत यंत्र की तरह हमारा मन काम करता है। कृष्ण इस यंत्र को तोड़ने के लिए कह रहे हैं। वह कह रहे हैं, कि कोई भी प्रेमी, कोई भी भक्त, जो मुझे जानना चाहता हो, उसे मेरे सच्चिदानन्द रूप की, अरूप की, निराकार की, दिशा में खोज करनी चाहिए। मेरे रूप पर मत रुक जाना। मेरे शब्द पर मत रुक जाना, मेरे शरीर पर मत ठहर जाना, थोड़ा हटना, ट्रांसेंड करना, पार थोड़े ऊपर उठकर जाने की कोशिश करना।

एक अचल भीतर बैठा है

बुद्ध कह रहे हैं, आखिरी क्षण है, कोई उनसे पूछता है कि आप मरने के बाद कहां जायेंगे? तो बुद्ध कहते हैं, तो फिर तुम मुझे समझ नहीं पाये, क्योंकि मैं जीते जी ही कहीं नहीं गया। निश्चित ही कठिनाई हो गयी होगी पूछने वाले को। उसने कहा, आप कैसी बात करते हैं। कई गांव तो मैं आपके पीछे गया हूँ। कई यात्राओं पर तो सम्मिलित रहा हूँ। बुद्ध ने कहा, तू भला गया हो, लेकिन मैं तुझसे कहता हूँ कि मैं अपने जीवन में कहीं नहीं गया। यात्रा मैंने कभी की ही नहीं। मजाक समझी होगी, कि बुद्ध मजाक कर रहे हैं, उनके चेहरे की तरफ देखा होगा, लेकिन वे मजाक नहीं कर रहे हैं। बुद्ध ने कहा, मैं हँसता नहीं, मजाक नहीं करता। मैं अपने जीवन में कहीं गया नहीं। और जो गया वह मैं नहीं हूँ। यह शरीर चलता था, तूने इसी को देखा है। इसके भीतर एक अचल भी बैठा हुआ है, जो बिल्कुल नहीं चलता, वह तूने नहीं देखा।

सारी घटनाएँ आकार के भीतर हैं

जापान में एक फकीर हुआ रिंझाई। बुद्ध का भक्त है, रोज बुद्ध की प्रार्थना करता है, पूजा करता है, फूल चढ़ाता है मूर्ति के सामने, सिर टेकता है। उसने एक दिन सुबह, अपने भिक्षुओं को इकट्ठा करके कहा, कि मैं तुमसे कहता हूँ कि यह बुद्ध नाम का आदमी कभी हुआ ही नहीं। चौंके वे, कुछ मस्तिष्क में खराबी तो नहीं आ गयी। तीस साल से देखते आये हैं इस आदमी को बुद्ध के चरणों में सिर रखते, आज अचानक इसको क्या हो गया! उन्होंने कहा, क्या कहते हैं आप? रिंझाई ने कहा, बुद्ध नाम का आदमी न कभी हुआ, न इस जमीन पर कभी चला, न कभी बोला। यह सब शास्त्र झूठे हैं। उन्होंने कहा, हमें थोड़ा समझायें, अन्यथा हम मुश्किल में पड़ गये हैं। रिंझाई ने कहा, मैं तुमसे कहता

हूँ, कि मैं भी कभी नहीं हुआ, मैं भी कभी नहीं बोला, मैं भी कभी नहीं चला। ये सब बातें झूठी हैं। तब उन्हें थोड़ा सा भरोसा आया, कि यह आदमी क्या कह रहा है। तो उन्होंने पूछा कि आप कहना क्या चाहते हैं?

रिंझाई ने कहा, कि आज मुझे पता चला कि चलना केवल शरीर का है, बोलना केवल शरीर का है। भूख, प्यास, नींद शरीर की है। वह जो भीतर है, उसे कभी भूख नहीं लगती, नींद नहीं आती। वह कभी चलता नहीं, बैठता नहीं, उठता नहीं, वह कभी जन्म नहीं लेता, वह कभी मरता नहीं। वह इन घटनाओं के पार है। ये सारी घटनाएँ आकार के भीतर हैं और वह निराकार है।

दूसरे दिन सुबह फिर बुद्ध के चरणों में सिर रखे पड़ा था। तो उन भिक्षुओं ने पूछा, अब आप यह क्या कर रहे हैं? जो कभी हुआ ही नहीं, उसके चरणों में क्यों सिर रखे हुए हैं? रिंझाई ने कहा, कहाँ का सिर, कौन रखे हुए है। वह भी नहीं हुआ कभी, जो सामने हैं और यह जो सामने पड़ा हुआ है, यह भी कभी नहीं हुआ।

मेरी सीमा कहाँ है

अरूप की खोज करनी पड़ेगी, और सबसे सरल है कि अपने भीतर शुरू करें। दूसरे के पास जाकर अरूप को खोजना बहुत कठिन होगा। अपने भीतर आसानी से खोज हो सकती है। कभी आँख बन्द करके भीतर देखने की कोशिश किया करें, कि क्या मैं शरीर के रूप में बँधा हूँ? कभी आँख बन्द करके देखने की कोशिश करें, कि मेरी सीमा क्या है? और आप बहुत हैरान हो जायेंगे, अगर तीन महीने आप एक छोटा सा प्रयोग करें, यह सूत्र आपको खुल जायेगा। तीन महीने आधा घण्टा रोज आँख बन्द करके यही केवल सोचें कि मेरी सीमा कहाँ है?

आप सोचेंगे तो आपको शरीर ही अपनी सीमा मालूम पड़ेगी। लेकिन पंद्रह दिन से ज्यादा नहीं लगेगा, और आपको एक अद्भुत अनुभव होना शुरू हो जायेगा। कभी शरीर बहुत बड़ा होता हुआ मालूम पड़ेगा, कभी बहुत छोटा हुआ मालूम पड़ेगा, सिर्फ पंद्रह दिन के भीतर। कभी लगेगा शरीर पहाड़ जैसा हो गया और सीमा बड़ी हो गयी। और कभी लगेगा, शरीर चींटी जैसा हो

गया, सीमा बड़ी छोटी हो गयी। घबड़ा मत जाना, क्योंकि बहुत घबड़ाहट का अनुभव होता है। जब पहली दफा सीमा का भाव टूटता है, तो फ्लक्चुएशन होता है। कभी लगता है, बहुत बड़ा हो गया, कभी लगता है बिल्कुल छोटा हो गया। अगर आप पीछे पड़े ही रहे, तो एक महीना पूरा होते होते अचानक कभी कभी ऐसे क्षण आ जायेंगे, जब लगेगा कि शरीर है ही नहीं, न छोटा, न बड़ा। और तब आपको पहली दफा पता चलेगा कि मेरी कोई सीमा नहीं। मैं हूँ और सीमा कोई भी नहीं है। अपने ही भीतर अगर तीन महीने इस प्रयोग को करें, तो आप असीम की, निराकार की छोटी सी झलक को पा लेंगे।

भीतर है ज्ञान, बाहर है अनुमान

और जिस दिन आप अपने भीतर जान लेंगे, उस दिन आप दूसरे के भीतर भी जान लेंगे। क्योंकि हम दूसरे के भीतर जो भी जानते हैं, वह अनुमान है, इनफ्रेंस है। ज्ञान तो अपने भीतर होता है, दूसरे की तरफ तो अनुमान होता है। आपको पता है, आप जब क्रोध में होते हैं, आँखें लाल हो जाती हैं, मुट्ठी भिंच जाती हैं। तो दूसरा आदमी अगर क्रोध में भी न हो, जैसा फिल्म का ऐक्टर या नाटक का पात्र क्रोध में नहीं होता, आँखें लाल कर लेता है, मुट्ठी भिंच लेता है, आप समझ जाते हैं कि क्रोध में है। भीतर क्रोध बिल्कुल नहीं होता। क्योंकि आपको पता है, कि जब आप मुट्ठी बाँधते हैं और आँखें मींचते हैं, और दाँत दबाते हैं, और लहू उतर आता है, और चेहरा लाल हो जाता है, तब आप जानते हैं कि आप क्रोध में हैं। फिल्म का अभिनेता या नाटक का पात्र वही करके दिखला रहा है, आप समझ जाते हैं कि वह क्रोध में है। क्रोध आपका अनुमान है। वह है नहीं क्रोध में। लेकिन जो जो घटना क्रोध में घटती हैं, वह घट रही हैं, आप अनुमान कर लेते हैं।

दूसरे के बाबत हम अनुमान करते हैं। ज्ञात तो अपने ही बाबत होता है।

अपने भीतर निराकार की थोड़ी सी खोज हो, कई तरह से हो सकती है, जैसा मैंने कहा कि शरीर की सीमा का चिन्तन करें, मनन करें, मेडिटेट आन इट, ध्यान करें। तीन महीने में आपकी सीमा खो जायेगी और आपको असीम का अनुभव हो जायेगा।

अगर इसमें कठिनाई मालूम पड़े, तो शरीर की उम्र, अपनी उम्र का भीतर अनुभव करें, कि मेरी उम्र कितनी है। तो अभी आज आप बैठेंगे, तो पता चलेगा कि आप चालीस साल के हैं, लेकिन यह असली पता नहीं है। यह तो सिर्फ आदत है रोज की, कि आप चालीस साल के हैं। पन्द्रह दिन बैठकर देखने पर आप डाँवाडोल होने लगेंगे। कभी लगेगा कि छोटा बच्चा हो गया और कभी लगेगा कि बिलकुल बूढ़ा हो गया, यह फ्लक्चुएशन शुरू हो जायेगा। एक महीना पूरा होते होते आपके भीतर यह सफाई हो जायेगी कि न मैं बच्चा हूँ, न मैं बूढ़ा हूँ, न मैं जवान हूँ। तीन महीने प्रयोग करने पर पायेंगे कि आप अजन्मा हैं। आपका कभी कोई जन्म नहीं हुआ। और आप अमृत हैं, आपकी कोई मृत्यु नहीं हो सकती।

ध्यान का अर्थ है आकार से निराकार की तरफ यात्रा

कहीं से भी शुरू करें, किसी भी आकार से शुरू करें, और धीरे धीरे आप निराकार में उतर जायेंगे। ध्यान का अर्थ है, आकार से निराकार की तरफ यात्रा। कृष्ण वही कह रहे हैं।

ध्यान का अर्थ है, आकार से निराकार की तरफ यात्रा।

जो बुद्धिहीन है, वह आकार में अटक जाता है। जो बुद्धिमान है, वह निराकार में डुबकी लगा लेता है। और एक बार निराकार की झलक मिल जाय, तो इस जगत् में सब आकार मिट जाते हैं और निराकार ही रह जाता है।

और जहाँ निराकार है, वहाँ आनन्द है।

इसलिए कृष्ण कहते हैं, वह मेरा सच्चिदानन्द स्वरूप है, वहाँ सत्, चित् आनन्द, तीनों का वास है। लेकिन निराकार में है। आकार में अगर खोजने जायेंगे तो आकार में सत् नहीं मिलेगा, मिलेगा असत्।

सत् का अर्थ होता है एक्जिस्टेंस, अस्तित्व। असत् का अर्थ होता है आभास। दीखता है कि है और नहीं है। अगर आकार में खोजने जायेंगे चित् नहीं मिलेगा। चित् का अर्थ होता है कांसेसनस, चैतन्य। आकार में खोजने जायेंगे तो जड़ मिलेगा, चैतन्य नहीं मिलेगा। और तीसरा तत्व है आनन्द। आकार में

खोजने जायेंगे तो सुख मिलेगा, दुख मिलेगा, आनन्द नहीं मिलेगा । आनन्द तो निराकार में मिलेगा ।

इसलिए कृष्ण कहते हैं, मेरे सच्चिदानन्द स्वरूप को, वे बुद्धिमान जान पाते हैं, जो मेरे आकार और आकृति में नहीं उलझ जाते । जो पेनीट्रेट कर जाते हैं, जो पार चले जाते हैं, गहरे उतर जाते हैं और निराकार को खोज लेते हैं । यह निराकार हमारे सब तरफ, चारों तरफ मौजूद है, यहीं मौजूद है । लेकिन हम सबको आकार दिखायी पड़ते हैं । हमारी सिर्फ आदत है देखने की ।

हमारी इन्द्रियां आकार का निर्माण करती हैं

इसे ऐसा समझें कि एक आदमी अपने घर के भीतर बैठा है । कभी घर के बाहर नहीं गया । खिड़की से आकाश को देखता है, तो उसे आकाश निराकार दिखायी पड़ेगा कि साकार ? उसे साकार दिखायी पड़ेगा । क्योंकि खिड़की का ढांचा आकाश पर बैठ जायेगा, वह जो खिड़की का पैटर्न है, वह जो खिड़की का चौखटा है । आकाश उतना ही मालूम पड़ेगा, जितना खिड़की का चौखटा है । और अगर वह आदमी अपने घर के बाहर कभी न गया हो, तो क्या वह सोच सकेगा कि यह जो चौखट दिखायी पड़ रही है, मेरे मकान की है, आकाश की नहीं । कभी नहीं सोच सकेगा । इसके लिए बाहर जाना जरूरी है । हम अपने मकान के बाहर कभी नहीं गये ।

घर शरीर के भीतर है और हर चीज पर चौखट है ।

हमारी आँख की चौखट चीजों को आकार दे देती है । कान की चौखट चीजों को आकार दे देती है । हमारी इंद्रियाँ आकार का निर्माण करती हैं । और हम अपने शरीर के बाहर कभी नहीं गये । शरीर के भीतर से ही सब चीजें देखते हैं । और इंद्रियाँ आकार देती हैं हरेक चीज को । एक दफा हम शरीर के बाहर जाकर देख लें तो भी काम हो जायेगा ।

'मैं मर गया,' निराकार की झलक बन जाता है

तो आपको एक दूसरा प्रयोग भी कहता हूँ । वह भी अगर सम्भव हो सके तो, जैसे मैंने दो प्रयोग आपको कहे, एक प्रयोग और आप को कहता हूँ । वह भी एक रास्ता है कि आप घर के बाहर जाकर देख लें ।

आप पन्द्रह दिन तक, आधा घण्टा रोज, पड़ जायें जमीन पर, मुर्दे की भाँति और एक ही बात सोचते रहें कि मैं मर गया । कठिन पड़ेगा, खुद ही को डर लगेगा । बीच में एकाध दफे कह देंगे, नहीं नहीं, ऐसा नहीं, मैं जिन्दा हूँ । नहीं ऐसे नहीं चलेगा, कहते रहें मैं मर गया, मैं मर गया । उसको मंत्र की तरह भाव करते रहें । पन्द्रह दिन में आप अचानक पायेंगे कि कई बार आपको ऐसा लगेगा कि थोड़ा-सा आप शरीर के बाहर गये हैं । कभी बाहर निकल गये हैं । कभी बाहर गये हैं, कभी भीतर आ गये हैं, एक महीना पूरा होते होते आप इस स्थिति में आ जायेंगे कि आप को कई बार अपने शरीर को बाहर से देखने का मौका मिल जायेगा । एक क्षण को आप देखेंगे कि शरीर पड़ा है मुर्दे की तरह । आप पड़े हैं, घबड़ाकर आप फिर भीतर चले जायेंगे । तीन महीने आप प्रयोग करते रहें और आप उस स्थिति में आ जायेंगे कि बराबर बाहर खड़े होकर अपने शरीर को देख पायें कि यह पड़ा है ।

और एक दफा अगर आप अपने शरीर के बाहर होकर अपने शरीर को देख पायें, उस वक्त जरा लौटकर चारों तरफ देखना, सब निराकार दिखायी पड़ेगा, कहीं कोई आकार नहीं है । क्योंकि सब आकार शरीर की इंद्रियों के चौखटों के आकार हैं ।

आँख का आकार है, इसलिए आँख निराकार नहीं देख सकती । कान का आकार है, इसलिए कान निराकार को नहीं सुन सकता । हाथ का आकार है, इसलिए हाथ निराकार को कैसे स्पर्श करेगा । शरीर के बाहर, आउट आफ द बाडी एक्सपीरिएंस, आपको खबर दिलायेगा कि सब निराकार है । उस दिन के बाद आपकी जिन्दगी दूसरी हो जायेगी । कृष्ण जो भी यह कह रहे हैं, ये योग के गहरे प्रयोगों की तरफ इशारे हैं ।

निराकार को जो देख ले, वही बुद्धिमान है । आकार में जो उलझा रह जाय, वह बुद्धिहीन है ।

वेदाहं समतीतानि वर्तमानानि चार्जुन।
भविष्याणि च भूतानि मां तु वेद न कश्चन ।। २६ ।।

और हे अर्जुन, पूर्व में व्यतीत हुए और वर्तमान में स्थित तथा आगे होने वाले सब भूतों को मैं जानता हूँ, परन्तु मेरे को कोई भी श्रद्धा भक्तिरहित पुरुष नहीं जानता है।

मैं जानता हूँ, कृष्ण कहते हैं, वह जो पीछे हुआ वह, जो अभी हो रहा है वह, जो आगे होगा वह। मैं सब जानता हूँ। यह सब जानने का क्या अर्थ है, यह थोड़ी सी कठिन बात है, थोड़ी समझ लेनी चाहिए।

इस सब जानने का अर्थ यह है, कि कृष्ण जैसी निराकार चेतना के समक्ष समय जैसी कोई चीज नहीं होती। वर्तमान, अतीत और भविष्य हम लोगों की धारणाएँ हैं। जैसे ही कोई निराकार को जान लेता है, समय की सब सीमाएँ गिर जाती हैं। और एक इटरनल नाउ, सब चीजें अभी हो जाती हैं। न कोई अतीत होता है, न कोई भविष्य होता है, न कोई वर्तमान होता है। समय का क्षण ठहर पाता है।

समय नहीं बीत रहा है, हम बीत रहे हैं

अगर ठीक से समझें, तो हम निरन्तर कहते हैं, कि समय जा रहा है, स्थिति उल्टी है। समय तो अपनी जगह खड़ा है, हम जा रहे होते हैं, हम चल रहे होते हैं। हमारी स्थिति करीब करीब वैसी है, जैसी ट्रेन में कभी छोटा बच्चा पहली दफा बैठता है, तो उसे लगता है कि पास के वृक्ष पीछे जा रहे हैं। ट्रेन चलती है आगे की तरफ, बच्चा ही आगे जा रहा है, लेकिन खिड़कियों

से पीछे भागते हुए वृक्ष दिखाई पड़ते हैं। और पता लगता है कि वृक्ष पीछे जा रहे हैं। हम सब कहते हैं कि समय जा रहा है। लेकिन असलियत बिल्कुल उल्टी है। हम जा रहे हैं। समय अपनी जगह खड़ा है। इसे थोड़ा समझना पड़ेगा।

न भविष्य आ रहा है, न अतीत जा रहा है

समय अपनी ही जगह खड़ा है। समय कहीं नहीं जाता। समय जायेगा कैसे, जायेगा कहाँ? कल निकल गया, अब वह कहाँ जायेगा? कहीं अस्तित्व में कोई जगह होनी चाहिए न! कल जो बीत गया, वह कहां इकट्ठा होगा? और कल जो अभी हीं आया है, वह कहाँ से आ रहा है? आने के लिए उसे कहीं होना चाहिए और जाने के लिए भी कहीं पहुँच जाना चाहिए। इसका तो मतलब यह होगा कि पीछे एक अतीत इकट्ठा हो रहा है करोड़ों, अरबों, खरबों बरसों का। सब इकट्ठा होगा वहाँ, और आगे, भविष्य आगे है, वह चला आ रहा है। यह नहीं हो सकता। न तो भविष्य आ रहा है, न अतीत चला गया है। सिर्फ हम गुजर रहे हैं। जैसे एक आदमी रास्ते से गुजर रहा है। लेकिन ट्रैफिक वन वे ट्रैफिक है। क्योंकि हम समय में पीछे नहीं जा सकते हैं, इसलिए हमें लगता है, जो चला गया, वह खो गया। चूंकि हम समय में आगें छलाँग नहीं लगा सकते हैं, इसलिए हमें लगता है कि भविष्य अभी आया नहीं। भविष्य आ चुका है उतना ही, भविष्य मौजूद है।

मैं निकल रहा हूँ एक रास्ते से। आगे का मकान मुझे दिखायी नहीं पड़ रहा है अभी, लेकिन वह अपनी जगह मौजूद है। थोड़ी देर बाद मैं उसके सामने पहुँचूंगा। वह मुझे दिखाई पड़ेगा। पीछे का मकान जो थोड़ी देर पहले मुझे दिखाई पड़ता था, अब दिखाई नहीं पड़ रहा, वह खो गया। लेकिन खो नहीं गया, वह अपनी जगह मौजूद है। समय चलता नहीं, समय की चलने की धारणा ट्रेन में गुजरने जैसी धारणा है, जैसे वृक्ष चलते हुए मालूम पड़ते हैं।

आदमी चलता है, समय नहीं चलता।

इसलिए कृष्ण जब कहते हैं, मैं सब जानता हूँ, वह जो पीछे, वह जो आगे है, वह जो अभी है। उसका कुल मतलब यह है कि कृष्ण जैसे आदमी को उस परम चेतना स्थिति में, उस समाधि की दशा में, वर्तमान, अतीत, भविष्य का फासला गिर जाता है।

जितनी चेतना की ऊँचाई होगी, उतना समय बोध मिट जायेगा

समझो कि मैं एक बहुत बड़े दरख्त के ऊपर बैठ गया हूँ, आप दरख्त के नीचे बैठे हैं। मैं आपसे चिल्लाकर कहता हूँ कि एक बैलगाड़ी रास्ते पर आ रही है। आप कहते हैं मुझे नहीं दिखायी पड़ती, भविष्य में होगी। लेकिन मुझे दिखायी देती है, मैं थोड़ा आपसे ऊँचाई पर बैठा हुआ हूँ। मैं कहता हूँ, भविष्य में नहीं है, वर्तमान में है, बैलगाड़ी आ गयी है रास्ते पर। आप कहते हैं, कहीं नहीं दिखायी पड़ती। अभी नहीं आयी है, भविष्य में है। फिर थोड़ी देर में बैलगाड़ी आपके सामने आ जाती है। आप कहते हैं आ गयी है, वर्तमान हो गयी। फिर थोड़ी देर बाद बैलगाड़ी आगे निकल जाती है। आप कहते हैं अतीत हो गयी, अब दिखायी नहीं पड़ती। लेकिन मैं आपके ऊपर के दरख्त से कहता हूँ, कि अभी भी वर्तमान है, दिखायी पड़ती है।

जितनी चेतना की ऊँचाई होगी, उतना ही वर्तमान, अतीत और भविष्य का फासला गिरता जायेगा।

और जिस दिन कृष्ण जैसी परम ऊँचाई होती है चेतना की, उस दिन सब चीजें जो हो गयीं, दिखाई पड़ती हैं; सब चीजें जो होनेवाली हैं, दिखायी पड़ती हैं; सब चीजें जो हो रही हैं, दिखायी पड़ती हैं। इस अनुभव के आधार पर ही समस्त ज्योतिष का विकास हुआ था। लेकिन अब जो बाजार में कोई चार आने देकर ज्योतिषी को दिखा रहा है। वह बेचारा कुछ बहुत नहीं बता सकता। उसे कुछ पता नहीं है।

ज्योतिष का सारा विकास समाधिस्थ चेतना से हुआ था।

उन लोगों से, जिनको समय से सब फासले मिट गये थे, जिन्हें सब दिखायी पड़ रहा था। ज्योतिष ज्योतिर्मय चेतना के अनुभव से निकला था।

मैं देख रहा हूँ चारों तरफ, आगे और पीछे

कृष्ण कहते हैं, मुझे सब दिखायी पड़ता है। लेकिन जो अज्ञानी हैं, वे मुझे नहीं देख पा रहे हैं, मैं उन सबको देख रहा हूँ। कृष्ण को भलीभाँति दिखायी पड़ रहा है कि कौरव हार जायेंगे। यह बैलगाड़ी कृष्ण के लिए सामने आ गयी। अर्जुन को दिखायी नहीं पड़ रहा है कि कौरव हार जायेंगे, कि पाण्डव जीत जायेंगे। यह दुर्योधन को भी नहीं दिखाई पड़ रहा है कि कौरव हार

जायेंगे और पाण्डव जीत जायेंगे। अब यह अर्जुन भी डरा है कि पता नहीं हम हार न जायें। अभी कौरव भी इस ख्याल में हैं, कि हम जीत लेंगे क्योंकि शक्ति हमारे पास ज्यादा है। एक आदमी वहाँ मौजूद था, उस महाभारत के युद्ध में, उसे पता था कि क्या होने वाला है, और क्या होगा ?

कृष्ण का अर्जुन से यह कहना, कि तू भाग मत, बहुत दूर की जानकारियों से जुड़ा हुआ है। कृष्ण का यह कहना कि तू सोच रहा है, जिन्हें तू मारेगा, मैं तुझसे कहता हूँ, समय ने उन्हें पहले ही मार डाला है। मैं उनकी लाशें देख रहा हूँ। तुझे नहीं दिखायी पड़ता, मैं देख रहा हूँ, कि वे युद्ध के मैदान पर लाश होकर पड़े हैं। दो दिन बाद तुझे भी दिखायी पड़ेगा, बैलगाड़ी तेरे सामने आ गयी होगी। तू समझता है, तू मारेगा। मैं कहता हूँ, विधि ने उन्हें समाप्त कर दिया है, तू केवल निमित्त होगा। कृष्ण कहते हैं, मैं देख रहा हूँ दूर तक, चारों तरफ, आगे और पीछे, लेकिन फिर भी मेरे आसपास सैकड़ों लोग हैं, जो मुझे नहीं देख रहे हैं।

जो थोडी सी झलक देख ले, वह समर्पित हो जायेगा

पहाड़ की ऊँचाई से निचाइयों की तरफ देखना आसान है, निचाइयों से ऊँचाइयों की तरफ देखना कठिन है। जितने हम नीचे होते हैं, उतनी हमारी चेतना नैरोड, संकीर्ण हो जाती है; जितने हम ऊँचे होते हैं, उतनी विस्तीर्ण हो जाती है। तो कृष्ण का तो देखना आसान है, कि वह देख लें सबको, लेकिन सबका देखना कठिन है कि वह कृष्ण को देख लें। हाँ, जो कृष्ण की थोड़ी सी भी झलक देख लें, वह समर्पण के लिए राजी हो जायेगा। क्योंकि वह देखेगा कि पास में एक विराट खड़ा है। और तब वह अपने छोटे से अहंकार और अपनी छोटी सी बुद्धि से नहीं जियेगा, समर्पण करके जीना शुरू कर देगा। और जब वह समर्पण करके जियेगा, तब वह जानेगा। तब वह जानेगा कि जो कहा गया था, वही हुआ है। जो कहा गया था, वही हो रहा है, अन्यथा कुछ होता नहीं। अन्यथा कुछ भी नहीं होता है।

जीसस मुस्कराये, क्योंकि जो होनेवाला है वह हो रहा है

जीसस को जिस रात पकड़ा गया, तो जीसस के मित्रों ने कहा, हमें खबर मिली है कि दुश्मन पकड़ने आ रहे हैं। अच्छा हो कि हम यहाँ से भाग जायें।

तो जीसस मुस्कुराये। वह मुस्कुराहट अब तक समझ के बाहर है, क्योंकि जीसस किसलिए मुस्कुराये हुए होंगे ? मैं कहता हूँ, इसलिए कि जीसस जानते हैं, पकड़ा जाना जरूरी है, होने ही वाला है इसलिए भागने का कोई अर्थ नहीं। मुस्कुराये होंगे इसलिए कि यह जो मित्र बेचारे चिन्ता से कह रहे हैं, इन्हें कुछ पता नहीं जो होनेवाला है, होगा। फिर जीसस पकड़े गये, तो मित्रों ने कहा, हमने कहा था, आपने न सुना। फिर भी वह मुस्कुराये क्योंकि उन्हें पता है कि जो होनेवाला है, वह हो रहा है। कहना भी तुम्हारा जरूरी था, मेरा सुनना भी जरूरी था, और यह पकड़ा जाना भी जरूरी था।

फिर उनमें से एक ने कहा, चाहे जान रहे, चाहे जान जाये, मैं तो आपके साथ रहूँगा। जीसस ने कहा, तुझे पता नहीं, सुबह सूरज के ऊगने के पहले तक तू तीन दफे इन्कार कर चुका होगा। अभी आधी रात है, सूरज के ऊगने तक, तू तीन दफे मुझे इन्कार कर चुका होगा। उसने कहा, आप कैसी बातें करते हैं। मैं अपनी जान लगा दूँगा आप के लिए। मैं इन्कार करूँगा ?

जीसस मुस्कुराये क्योंकि उस बेचारे को पता नहीं उसका भी, कि वह क्या कर सकता है सुबह तक। लेकिन जीसस को दिखायी पड़ रहा है कि वह क्या करेगा। फिर जीसस को पकड़कर दुश्मन ले चले, बाकी शिष्य तो भाग गये। वह एक शिष्य पीछे हो लिया जिसने कहा था, मैं आखिरी दम तक साथ रहूँगा। दुश्मनों ने देखा, कोई एक अजनबी आदमी साथ में है, कौन है यह ? उन्होंने अपनी मशालें उसके चेहरे की तरफ कर दीं और उसे पकड़ लिया और कहा कि तू कौन है ? तू जीसस का साथी तो नहीं ? उसने कहा, कौन जीसस, मैं तो पहचानता नहीं। जीसस ने पीछे की तरफ देखा और मुस्कुराये और कहा, अभी सूरज नहीं ऊगा। और ऐसा तीन बार हुआ। फिर थोड़ी देर बाद रास्ते पर वह आये, और सैनिक आये, उन्होंने कहा, यह आदमी कौन है जो बीच में चल रहा है, अजनबी मालूम पड़ रहा है। फिर उन्होंने उसे पकड़ा। उसने कहा, मुझे क्यों पकड़ते हो, मैं परदेशी हूँ। तुम जीसस के साथी हो ? उसने कहा, कौन जीसस, मैं पहचानता भी नहीं। जीसस फिर मुस्कुराये और उन्होंने जोर से कहा, देख अभी सुबह नहीं हुई। ऐसा तीन बार रात में उसने इन्कार किया।

कृष्ण के लिए युद्ध, नाटक से ज्यादा नहीं था

जीसस को पता है, क्या होनेवाला है क्या होगा। इसलिए जो बहुत गहरे जीसस को पहचानते हैं, वह जीसस की मृत्यु को कहते हैं, क्राइस्ट ड्रामा। वह कहते हैं, उसको कोई ज्यादा गंभीरता से लेने की जरूरत नहीं है, जीसस के लिए तो वह नाटक से ज्यादा नहीं था। क्योंकि जब पहले से पता हो मामला तो नाटक हो जाता है। कृष्ण के लिए भी युद्ध नाटक से ज्यादा नहीं था। इसलिए कई लोगों को कठिनाई होती है कि युद्ध में वह इतनी प्रेरणा दे रहे हैं, अर्जुन को रोकते नहीं।

गांधीजी को बड़ी तकलीफ थी क्योंकि इतना बड़ा युद्ध, इतनी हिंसा करवा देंगे। गांधी को बहुत प्रेम था गीता से लेकिन फिर भी गीता पचती नहीं थी उनके मन को कहीं। गहरे में तो चोट लगती थी, क्योंकि है तो युद्ध का मामला। अहिंसा तो नहीं है कहीं भी। और हिंसा की इतनी सहज स्वीकृति किसी दूसरे आदमी ने कभी दी नहीं है। तो फिर गांधी के पास एक ही उपाय था, या तो गीता को छोड़ दें, या गीता की ऐसी व्याख्या कर लें कि मन में जम जाय। तो उन्होंने एक तरकीब निकाल ली। और वह तरकीब उन्होंने यह निकाल ली कि युद्ध कभी हुआ नहीं, यह तो प्रतीकात्मक, सिम्बालिक युद्ध है। वह कभी हुआ नहीं, यह तो आदमी में बुरी शक्तियाँ और अच्छी शक्तियों का युद्ध है। कुरुक्षेत्र पर कभी कोई युद्ध हुआ नहीं। तब उनके मन को थोड़ी राहत मिली। यह तो आसुरी और सद्वृत्तियों का संघर्ष है, सच में कभी युद्ध हुआ नहीं। जब गांधी के मन ने व्याख्या पकड़ ली, तब उनको राहत मिली।

लेकिन यह बात झूठ है। यह युद्ध हुआ है। यह युद्ध हुआ है, इस युद्ध के होने के ऐतिहासिक प्रमाण हैं। और यह युद्ध प्रतीकात्मक नहीं है, यह युद्ध वास्तविक तथ्य है। फिर कृष्ण कैसे इस वास्तविक युद्ध में अर्जुन को धक्का दे रहे हैं। असल में अर्जुन को जो नहीं दिखाई पड़ता है, वह कृष्ण को दिखायी पड़ता है। यह युद्ध होकर रहेगा। युद्ध नियति है, डेस्टिनी है। इस युद्ध से बचा नहीं जा सकता, यह होगा ही। सारी ऐतिहासिक शक्तियाँ जिस जगह ले आयी

हैं, वहाँ यह युद्ध होकर रहेगा। इसलिए अब सवाल यह नहीं है कि युद्ध हो या न हो, सवाल यह है कि युद्ध पर अर्जुन जाय, तो किस भाव को लेकर जाय। वह परमात्मा के प्रति समर्पित होकर युद्ध करे, कि अहंकार से भरा होकर युद्ध करे। असली सवाल इतना ही है।

निराकार को देखने, आँख चाहिए

कृष्ण कहते हैं, मुझे तो सब दिखायी पड़ता है, लेकिन जो नहीं जानते उन्हें 'मैं' बिल्कल दिखायी नहीं पड़ता हूँ। वही लोग खड़े होंगे, जो कृष्ण को सारथी से ज्यादा न समझते रहे होंगे। सारथी थे ही वह, जहाँ तक आकार का संबंध है। अर्जुन के घोड़ों को, सांझ जाकर, पानी पिलाकर, उनकी सफाई कर लाते थे। घोड़ों को दिन भर हाँकते थे, साँझ उनकी सेवा करते थे। सारथी तो वह थे ही। उस युद्ध में बहुत सारथी थे। उनसे कुछ विशेष स्थान उनका न रहा होगा। जो नहीं देख सकते थे, उनको तो सारथी दिखायी पड़ा होगा। लेकिन जो देख सकते थे, उनको तो, उनको जो दिखायी पड़ा होगा, वह निराकार है। जो देख सकते थे, उन्हें वह परम परमात्मा दिखायी पड़ता होगा। जो नहीं देख सकते थे, अन्धे थे, उन्हें तो ठीक है, आदमी थे। आदमी थे ही, आकार था। आकार था निश्चित। इसलिए कृष्ण कहते हैं, आँख हो निराकार को खोजने की, तो ही मुझे कोई देख पाता है।

नृत्य है योग

दसवां प्रवचन

गीता-ज्ञान-यज्ञ, बम्बई, रात्रि, दिनांक ३१ मई, १९७१

इच्छाद्वेष समुत्थेन द्वन्द्वमोहेन भारत ।
सर्वभूतानि सम्मोहं सर्गे यान्ति परंतप ।। २७ ।।

येषांत्वन्तगतं पापं जनानां पुण्यकर्मणाम् ।
ते द्वन्द्वमोहनिर्मुक्ता भजन्ते मां दृढ़व्रता; ।। २८ ।।

हे भरतवंशी अर्जुन, संसार में इच्छा और द्वेष से उत्पन्न हुए सुख दुःखादि द्वन्द्व रूप मोह से संपूर्ण प्राणी अति अज्ञानता को प्राप्त हो रहे हैं। परन्तु निष्काम भाव से श्रेष्ठ कर्मों का आचरण करनेवाले जिन पुरुषों का पाप नष्ट हो गया है, वे रागद्वैषादि द्वन्द्व रूप मोह से मुक्त हुए और दृढ़ निश्चय वाले पुरुष मेरे को सब प्रकार से भजते हैं।

प्रभु का स्मरण भी उन्हीं के मन में बीज बनता है, जो इच्छाओं, द्वेषों और रागों के घासपात से मुक्त हो गये हैं। जैसे कोई माली नयी जमीन को तैयार करे, तो बीज नहीं बो देता है सीधे ही। घास-पात को, व्यर्थ की जड़ों को उखाड़ कर फेंकता है, भूमि को तैयार करता है, फिर बीज डालता है। इच्छा और द्वेष से भरा हुआ चित्त इतनी घास-पात से भरा होता है, इतनी व्यर्थ की जड़ों से भरा होता है, कि उसमें प्रार्थना का बीज पनप सके, इसकी कोई सम्भावना नहीं।

यह मन की, अपने ही हाथ से अपने को विषाक्त करने की जो दौड़ है, यह जब तक समाप्त न हो जाय, तब तक प्रभु का भजन असम्भव है।

मौत के करीब पहुँच कर, बहुत से वेग शिथिल हो जाते हैं

सुना है मैंने, एक चर्च में एक फकीर बोलने आया था। कोई एक हजार लोग उसे सुनने को इकट्ठे थे। उसने उन एक हजार लोगों से पूछा कि मैं

तुमसे पूछना चाहूँगा, तुममें से कोई ऐसा है जिसने घृणा के ऊपर विजय पा ली हो ? क्योंकि जिसने भी घृणा पर विजय नहीं पायी, वह प्रार्थना करने में समर्थ न हो सकेगा। इसके पहले कि मैं तुम्हें प्रार्थना के लिए कहूँ, मैं यह जान लूं कि तुममें से कोई ऐसा है, जिसने घृणा पर विजय पा ली है। हजार लोगों में से कोई उठता हुआ नहीं मालूम पड़ा, लेकिन फिर एक आदमी उठा। एक सौ चार वर्ष का एक बूढ़ा आदमी खड़ा हुआ।

उस पादरी ने कहा, खुश हूँ, प्रसन्न हूँ, आनंदित हूँ क्योंकि हजार में भी एक आदमी ऐसा मिल जाय, जिसने घृणा पर विजय पा ली है, तो थोड़ा नहीं। और अगर एक आदमी भी इस चर्च में ऐसा है, जिसने घृणा पर विजय पा ली है, तो हम प्रभु को इस चर्च में उतारने में सफल हो जायेंगे। तुम्हारी अकेली की प्रार्थना पर्याप्त होगी, इन सब जीवन में भी प्रकाश डालने के लिए। मैं तुमसे प्रार्थना करूँगा, उस फकीर ने कहा, कि तुम इन लोगों को भी बताओ, कि तुमने अपनी घृणा पर विजय कैसे प्राप्त की ?

और उस बूढ़े आदमी ने कहा, बड़ी सरलता से। क्योंकि वे सब दुष्ट, जिन्होंने मुझे सताया था, और वे सब मूढ़, जिन्होंने मुझे परेशान किया था और जिनसे मुझे घृणा थी, वे सब मर चुके हैं। अब कोई बचा ही नहीं, जिसे मैं घृणा करूँ। आप ही बताइए मैं किसको घृणा करूँ ?

एक सौ चार वर्ष उसकी उम्र है, करीब करीब वे सारे लोग मर चुके हैं, जिनसे जिन्दगी में कोई कलह, कोई संघर्ष था। कहने लगा, अब कोई घृणा की जरूरत ही न रह गई। ऐसे तो सभी के जीवन से राग द्वेष चला जाता है, सभी के जीवन से। शरीर शिथिल होने लगता है, कामवासना शिथिल हो जाती है। जिन्दगी की दौड़ उतर कर मौत के करीब पहुँचने लगती है, तो बहुत से वेग अपने आप शिथिल हो जाते हैं। प्रतिस्पर्धा, जैसे जैसे आदमी मौत के करीब पहुँचता है, कम होने लगती है। लेकिन इस भाँति भी अगर कोई सोचता हो, कि प्रार्थना में सफल हो जायगा, तो संभव नहीं है।

ज्ञानी अपने को निरन्तर आनन्द की दिशा में प्रवाहित करने में समर्थ है

ऊर्जा हो पूरी, शक्ति हो पूरी, अवसर पूरा का पूरा ऐसा हो, जहाँ कि द्वेष जन्मता हो और द्वेष न जन्मे। जहाँ घृणा पैदा होती हो और घृणा पैदा न हो। जहाँ राग का जन्म होता है, और राग न जन्मता हो। जहाँ सारी प्रतिकूल परिस्थित हों। और मन, जीवन की जो सहज पाशविक वृत्तियाँ हैं, उनकी तरफ न दौड़ता हो, तो ही जीवन में प्रार्थना का बीज अंकुरित हो पाता है।

लेकिन हम सारे ऐसे लोग हैं कि हम चाहते तो हैं, कि जीवन में प्रार्थना खिल जाय, और प्रभु का मिलन हो जाय, और आनन्द घटित हो, और हम उन पर्वत शिखरों को देखने में समर्थ हो जायँ, जिन पर प्रकाश कभी क्षीण नहीं होता। और हम उन गहराइयों को जान लें अनुभव की, जहाँ अमृत निवास करता है, उन मंदिरों में प्रवेश कर जायँ, जहाँ परम प्रभु विराजमान है, ऐसी हम अकांक्षा करते हैं, लेकिन चौबीस घंटे घृणा के बीज को पानी देते हैं, द्वेष को सम्हालते हैं, शत्रुता को पालते हैं। और सब तरह से, जमीन जिस तरह खराब की जा सकती है, वह सब करते हैं। और फिर हम सोचते हों कि कभी भगवत भजन का फूल खिल सके, तो वह संभव नहीं है।

कृष्ण कहते हैं, जो नासमझ हैं, जो अज्ञानी जन हैं। वे इच्छा और द्वेष में ही अपने जीवन को समाप्त कर देते हैं। उनके पास न तो शक्ति बचती है, न समय बचता है, न चेतना बचती है, कि मेरी और प्रवाहित हो सकें। लेकिन जो ज्ञानी जन हैं, और ज्ञानी कौन हैं ?

ज्ञानी वही है, जो अपने जीवन को निरन्तर आनन्द की दिशा में प्रवाहित करने में समर्थ है।

और अज्ञानी वही है, जो अपने ही हाथों नर्क की यात्रा करता है। जो अपने साथ अपना नर्क लेकर चलता है। कहीं भी पहुँच जाय, तो वह नर्क को निर्मित कर लेगा। उसके पास बिल्ट इन प्रोग्रेम हैं। उसके पास हमेशा तैयार है फार्मूला, नर्क बनाने का। वह कहीं भी पहुँच जाय, ज्यादा देर न लगेगी, वह नर्क निर्मित कर लेगा।

अज्ञानी वही है, जो अपने चारों तरफ नर्क की समस्त सम्भावनाओं को लेकर चलता हे।

और ज्ञानी वही है, जो अपने चारों तरफ स्वर्ग की समस्त संभावनाओं को लेकर चलता है। स्वर्ग की बड़ी से बड़ी संभावना प्रभु का स्मरण है।

इसलिए कृष्ण कहते हैं, वह ज्ञानी जिसने अपने मन को निष्काम कर डाला, पवित्र कर डाला, जिसके जीवन में पुण्य की सुगन्ध पैदा हुई, जिसने व्यर्थ के घास-पात को उखाड़कर फेंक दिया, राग द्वेष में अब जीता नहीं, जो अब भगवत् भजन की दिशा में निरन्तर चल रहा है। उठता है, बैठता है, चलता है, डोलता है, कुछ भी करता है, प्रत्येक कृत्य जिसका प्रभु के लिए समर्पित है, और प्रत्येक क्षण, वैसा व्यक्ति ही मुझे उपलब्ध होता है।

हमारी दृष्टि पर सब निर्भर है

दो बातें स्मरणीय हैं।

अभी इस घटना का उपयोग करूँ, अभी वर्षा पड़ रही है। हमारी दृष्टि पर सब निर्भर है। अगर हम सोचते हैं कि बहुत बड़ा दुख हमारे ऊपर गिर रहा है, तो हमारी दृष्टि शत्रुता की हो जाती है। अगर हम सोचते हैं कि प्रभु की अनुकम्पा बरस रही है, तो हमारी दृष्टि मित्रता की हो जाती है। और तब यह पड़ती हुई बूँद पानी की, बूँद नहीं रह जायेगी, यह पड़ती बूँद भगवत् चेतना की बूँद हो जाती है।

हम कैसे लेते हैं जीवन को, इस पर सब निर्भर करता है।

हमें पता ही नहीं है कि काश, हमें जिन्दगी को जीने का ख्याल होता तो हम जब आकाश से बादल बरसते हों और पानी नीचे गिर रहा हो, तो हम नाच भी सकते हैं खुशी में। मोर नाचते हैं और कभी आदमी भी नाचता था, लेकिन अब आदमी सिर्फ बचता है। सूरज निकला हो, तो उसकी रोशनी में हम सिर्फ धूप भी अनुभव कर सकते हैं और जीवन भी। अंधेरा घिरा हो, तो हम आनेवाली सुबह की यात्रा भी देख सकते हैं उसमें, और सिर्फ मृत्यु का अंधकार भी। हमारे ऊपर निर्भर करता है कि हम जीवन को कैसे देखते हैं। वर्षा रुकेगी नहीं आपके देखने से। पानी बन्द नहीं होगा, बादल आप की फिक्र न करेंगे।

लेकिन आप के दृष्टिकोण का अन्तर, आपके एटीट्यूड का जरा सा बदल जाना, और सब बदल जाता है।

सुना है मैंने, कि केलीफोर्निया के एक होटल में एक यात्री मेहमान है। सुबह सूरज निकल रहा है और पक्षी गीत गा रहे हैं, तो होटल के मैनेजर ने उस यात्री को कहा कि आप कृपा करके बाहर आयें। सूरज निकला है, पक्षी गीत गा रहे हैं, आकाश बहुत सुन्दर है। उस आदमी ने कहा, वह तो ठीक है, बट फर्स्ट लेट मी नो, हाऊ मच इट विल कास्ट, पहले मुझे बता दो कि कीमत क्या चुकानी पड़ेगी?

आत्मा का भीग जाना ही प्रभु का भजन है

हम जिस दुनिया में जीते हैं, वह बाजार की दुनिया है। वहाँ हर चीज को हम मूल्य से आंकते हैं। अगर किसी दिन ऐसा हो जाय कि वर्षा मुश्किल हो जाय, तो निश्चित ही हम पैसे चुका कर सावर के नीचे खड़े होंगे। और जिन मुल्कों में सूरज नहीं निकलता, जब सूरज निकल आता है, तो छुट्टी हो जाती है। अंग्रेजी में सण्डे का दिन छुट्टी का कारण है, क्योंकि वह सन-डे है, वह सूरज का दिन है। आकाश घिरा रहता है बादलों से, सूरज का कोई दर्शन नहीं होता, जब सूरज निकल आये, तो आनन्द से प्रफुल्लित होकर लोग सूरज की धूप लेने के लिए लेट जाते हैं। जो न्यून हो जाय, और जिसके लिए हमें पैसा देना पड़े, फिर हमें लगता है, उसमें कुछ आनन्द है। लेकिन जो हमें मुफ्त में मिल जाय, अगर परमात्मा भी मुफ्त हम पर बरसता हो, तो हम द्वार दरवाजे बन्द करके भीतर हो जायेंगे।

मैं कहता हूँ, इधर थोड़ी देर हम बैठेंगे ही। मुझे लगता है, कोई इनमें से जानेवाला नहीं है। जो जानेवाले थे, वे आये ही नहीं है। बरसा भी रुकेगी नहीं, बरसा भी आप से डरेगी नहीं, बरसा भी जारी रहेगी, बादल अपने आनंद में मग्न रहेंगे। अभी इतनी देर घण्टे भर हमें यहाँ रहना है, आपकी दृष्टि पर निर्भर रहेगा। मैं चाहूँगा कि थोड़ा सा ख्याल करें, कि प्रत्येक बूँद परमात्मा का आशीष है। और यहाँ से जाते वक्त आपका शरीर ही नहीं गीला होगा, आपकी आत्मा भी भीग गयी होगी।

और वह आत्मा का भीग जाना ही प्रभु का भजन है।

उसके भजन मन्दिरों के कोने में बैठकर नहीं किये जाते हैं; उसके भजन जीवन के हर कोने में और जीवन की हर दिशा में, हर आयाम में किये जाते हैं।

कृष्ण कहते हैं, जिनके मन में काम द्वेष नहीं है, जो किसी के लिए घृणा से नहीं भरे हैं, वे सरलता से ही मेरे भजन में लीन हो पाते हैं। और उन ज्ञानियों को मैं उपलब्ध होता हूँ।

इधर घण्टे भर अज्ञानी मत बनें। घण्टे भर के लिए कम से कम ज्ञानी बन जायँ और एक क्षण के लिए भी कोई ज्ञान का आनन्द ले ले, तो दुबारा अज्ञानी होने की उसकी तैयारी न होगी। वह हर जगह प्रभु के स्मरण को खोज पायेगा। बूंद आपके ऊपर गिर रही है, वह सिर्फ पानी नहीं है, वह परमात्मा भी है। क्योंकि परमात्मा के सिवाय इस जगत् में कुछ भी नहीं है। जब बूंद आपके सिर पर गिरे और आप की आखों से नीचे उतरे, तो जानना कि परमात्मा अपनी पूरी शीतलता को लेकर आपके ऊपर गिरा है और नीचे उतरा है। और आप पायेंगे कि यहाँ बैठे बैठे इस बरसा के क्षण में भी एक प्रार्थना की गहराई आपके हृदय तक पहुँच गयी। और वह गहराई काम की हो जायेगी, ये कपड़े तो सूख जायेंगे, उस गहराई का सूखना मुश्किल है।

जरामरण मोक्षाय मामाश्रित्य यतन्ति ये।
ते ब्रह्म तद्विदुः कृत्स्नमध्यात्मं कर्म चाखिलम् ॥ २९ ॥

और जो मेरे शरण होकर जरा और मरण से छूटने के लिए यत्न करते हैं वे पुरुष उस ब्रह्म को तथा संपूर्ण अध्यात्म को और संपूर्ण कर्म को जानते हैं।

जो मेरी शरण होकर, इस छोटे से शब्द शरण में, धर्म का समस्त सार समाया हुआ है। यह शरण इस पूरब में खोजी गयी समस्त साधनाओं की आधारभूत बात है।

जो मेरी शरण होकर।

शरण में होने का अर्थ है, जो अपने को इतना असहाय पाता है, इतना हेल्पलेस, और जो पाता है मेरे किये कुछ भी न हो सकेगा, और जो पाता है मेरे किये कभी कुछ हुआ नहीं, और जो पाता है कि 'मैं' हूँ न होने के बराबर, नहीं ही हूँ। जो पाता है 'मैं' कुछ भी नहीं हूँ। न श्वांस मेरे कारण चलती है, न खून मेरे कारण बहता है, न बादल मेरे कारण इकट्ठे होते हैं, न बरसा मेरी वजह से होती है। अज्ञात, अनंत शक्ति सब किये चली जाती है, मैं व्यर्थ अपने को बीच में क्यों लिये फिरूँ। मैं अपने को छोड़ दूँ, मैं बह जाऊँ। इस अनंत के साथ संघर्ष छोड़ दूँ, इस अनन्त के साथ सहयोगी हो जाऊँ, इस अनंत के चरणों में अपने को डाल दूँ और कह दूँ, जो तेरी मर्जी।

'मैं' के अतिरिक्त इस जगत् में और कोई दुख नहीं है

एक बार भी अगर कोई पूर्ण हृदय से कह पाये, जो तेरी मर्जी, उसके जीवन से दुख बिदा हो जाता है।

मेरी मर्जी दुख है, उसकी मर्जी कभी भी दुख नहीं है।

ऐसा नहीं कि फिर पैर में कांटे न गड़ेंगे, और ऐसा भी नहीं कि फिर कोई बीमारी न आयेगी, और ऐसा भी नहीं कि कोई मृत्यु न आयेगी। लेकिन मजे की बात यह है कि कांटे तो फिर भी पैर में पड़ेंगे, लेकिन कांटे नहीं मालूम पड़ेंगे। बीमारी तो फिर भी आयेगी, लेकिन आप अछूते रह जायेंगे। मौत तो फिर भी घटेगी, लेकिन आप नहीं मर सकेंगे। घटनाएं बाहर रह जायेंगी, आप पार हो जायेंगे।

असल में 'मैं' के अतिरिक्त इस जगत् में और कोई दुख नहीं है, और कोई पीड़ा नहीं है।

और हम इतने 'मैं' से भरे हैं कि अगर परमात्मा हमारे भीतर प्रवेश भी करना चाहे, तो जगह न मिल सकेगी। रोयें रोयें से 'मैं' बोल रहा है। वह 'मैं' ही हमें समर्पित नहीं होते देता। वह 'मैं' ही हमें कहीं शरण, सिर नहीं रखने देता। वह 'मैं' कहता है, तुम और सिर झुकाओगे? वह 'मैं' कहता है, सारी दुनिया से हमीं सिर झुकवा लेंगे।

जिन्दगी कभी कभी बड़े गहरे मजाक करतो है

मैं नेपोलियन बोनापार्ट की बचपन की कुछ किताबें देखता था। नेपोलियन बोनापार्ट जब पढ़ता था, तो अपनी एक स्कूल की एक्सरसाइज कापी में, छोटी सी कापी में उसने एक वाक्य लिखा है। भूगोल के बाबत जानकारी ले रहा था। किसलिए? भूगोल के बाबत जानकारी ले रहा था कि सारी दुनिया जीतनी है, तो भूगोल तो जाननी ही पड़ेगी। बचपन से ही नेपोलियन के दिमाग में सारी दुनिया को जीतने का ख्याल था, तो भूगोल की जानकारी जरूरी थी। एक बड़ी मजेदार घटना घटी और इस जिन्दगी में बड़ी मजेदार घटनाएँ घटती ही हैं।

जिंदगी बड़ी गहरी मजाक है।

सेन्ट हेलना का छोटा सा द्वीप है, बहुत छोटा। तो नकशे पर नेपोलियन बोनापार्ट ने, उसके चारों तरफ एक गोल लकीर खींच दी है और लिख दिया है कि यह इतनी छोटी जगह है, कि इसे जीतने की कोई जरूरत नहीं। और मजे की बात यह है कि नेपोलियन जब हारा, तो सेंट हेलना के द्वीप में ही

बन्द किया गया, कैदी किया गया। जिस जगह को उसने नहीं जीतने के लिए छोड़ रखा था कि बेकार है; एक छोटा सा द्वीप, जिस पर कुछ नहीं, घास ही उगती है। इसको जीतने की कोई जरूरत नहीं है।

सारी दुनिया जीतना चाही थी उसने, लेकिन कभी कभी जिंदगी बड़े बड़े मजाक करती है। सारी दुनिया तो हार गया, और आखिर में सेंट हेलना का द्वीप ही बचा। और उस पर ही कैदी होकर नेपोलियन आखिरी वक्त में था। शायद उसे ख्याल भी न आया होगा कि कभी मैंने भूगोल की किताब पर निशान लगाया था, कि सेन्ट हेलना बिल्कुल बेकार है। आखिर में वहीं शरण मिली। जो बिल्कुल बेकार मालूम पड़ा था, वही शरण बना। सारी जमीन छिन गयी हाथ से, सेन्ट हेलना का द्वीप ही, छोटा सा, कुल जमा शरण थी। जिन्दगी में ऐसा रोज होता है।

अब मैं नहीं हूँ, तू ही है

जिस परमात्मा को हम सदा छोड़े रहते हैं कि पाने योग्य नहीं है, और जिस परमात्मा को हम सदा बाहर रखते हैं जिन्दगी के, अन्त में पता चलता है कि वही परमात्मा शरण होने योग्य था, वही परमात्मा। एक काम कुछ भी करें, या तो छाता खोले रखें, नहीं तो बादल आपसे मजाक जारी रखेंगे, आप खोले ही रखें। और या फिर बन्द ही कर लें। या तो बादलों से कह दें कि अब तुम बेफिक्र रहो, हम अब खोलने वाले नहीं, और या फिर उनसे कह दें, अब तुम बेफिक्र रहो, हम अब खोले ही रखेंगे। दो में से कुछ एक कर लें, दोनों न करते रहें, अन्यथा बेकार समय जाया होगा। और जब भीग ही रहे हैं, तो पूरे ही भीग जायँ, इतनी कंजूसी भी क्या! कितना बचायेंगे, कितना बचायेंगे छाता वाता लगाकर, कुछ बचेगा? सिर्फ वहम है आदमी का कि हम बचा लेंगे! क्या बचा क्या पायेंगे, भीग जायेंगे पूरी तरह, भीग ही जायेंगे न! हो क्या जायेगा! तो भीग जायँ। छाते बन्द करके नीचे रख दें। इसमें न भीगने का मजा ले पायेंगे, न सूखने का मजा ले पायेंगे। दोनों तरफ से जायेंगे, न दीन के, न दुनिया के, न घर के, न घाट के हो जायेंगे।

शरण बड़ा अद्‌भुत शब्द है। शरण का अर्थ है, मैं कहता हूँ कि अब मैं नहीं हूँ, तू ही है। और अब तू जो करेगा, जो करवायेगा, उससे मैं राजी हूँ, स्वीकार करता हूँ। वही एक्सेप्टेबिलिटी है।

दाय विल बी डन, तेरी ही इच्छा पूरी हो

जीसस मर रहे हैं, आखिरी क्षण में शूली पर लटके हैं। एक क्षण को उनके मन में ऐसे आ गया होगा भाव, जैसे आपके मन में छाता खोलने का आता है। आ गया एकदम एक क्षण को भाव, कि मैं परमात्मा के लिए जिन्दगी भर जिया और आखिर मुझे शूली लग रही है! एक क्षण को कहीं बुद्धि ने सवाल उठा दिया होगा। एक क्षण को जीसस ने आकाश की तरफ देखकर कहा कि यह तू क्या करवा रहा है। छोटी सी शिकायत थी, बहुत बड़ी नहीं थी, यह तू क्या करवा रहा है? लेकिन तत्काल फिर ख्याल आया कि यह तो शिकायत हो गयी, यह तो सलाह हो गयी परमात्मा को। यह तो मैं सलाह देने लगा कि क्या करवा रहा है? इसका अर्थ तो यह हुआ कि मेरी इच्छा कुछ और थी, जो होना चाहिए, और तू कुछ और करवा रहा है। यह तो मेरी इच्छा खड़ी हो गयी। उनकी आँख से दो आँसू के बूँद टपक पड़े और उन दो बूँदों ने उन्हें वहाँ पहुँचा दिया, जिसको कृष्ण शरण कह रहे हैं। दो बूँद उनकी आँखों में आ गये। और उन्होंने जोर से कहा कि नहीं नहीं, मुझे क्षमा करें, दाय विल बी डन, तेरी ही इच्छा पूरी हो। मैं कौन हूँ, मुझे माफ कर दे, मुझसे भूल हो गयी, मुझसे गलती हो गयी। यह मैंने क्या कहा तुझसे, यह तू क्या करवा रहा है!

इतनी सी शिकायत जीसस के लिए बाधा थी। मैं निरन्तर कहता हूँ कि इस आखिरी क्षण तक भी जीसस क्राइस्ट नहीं थे। इस आखिरी क्षण तक वह जीसस ही थे। लेकिन यह आखिरी वक्तव्य, एक सेकण्ड में सब दुनिया बदल गयी। वह आँख से दो आँसू का गिर जाना और जीसस का कहना, दाय विल बी डन, तेरी मर्जी पूरी हो और फिर प्रसन्न हो जाना और उस शूली पर ऐसे झूल जाना, जैसे वह झूला हो, वह जीसस क्राइस्ट हो गये, उसी क्षण। उसी क्षण वह मनुष्य न रहे, परमात्मा हो गये।

जिस क्षण कोई व्यक्ति अपने को परमात्मा की शरण में छोड़ देता है, उसी क्षण वह परमात्मा के साथ एक हो जाता है।

अब यह जिन्दगी का पैराडाक्स है कि जब तक हम अपने को बचाते हैं, अपने को खोते हैं और जिस दिन अपने को खो देते हैं, उस दिन हम अपने को बचा लेते हैं। और जब तक हम अपने को बचायेंगे, कुछ हमारे हाथ में

आयेगा नहीं, खाली होगी मुट्ठी। और जिस दिन हम खोल देंगे, उस दिन यह सारी सम्पदा, यह सारा जगत् यह सब कुछ, यह सब कुछ हमारा है। लेकिन जब तक 'मैं' है भीतर, तब तक यह सब हमारा नहीं हो सकता। यह 'मैं' ही हमारा दुश्मन है, लेकिन 'मैं' हमें मित्र मालूम पड़ता है।

हे प्रभु, मुझे मित्रों से बचा!

एक बहुत अद्भुत आदमी हुआ है एकहार्ट। उसने मजाक में एक दिन परमात्मा से सुबह प्रार्थना की है। लेकिन उसकी प्रार्थना कीमती है और मन में रख लेनी जैसी है। एकहार्ट ने एक दिन सुबह प्रार्थना की परमात्मा से कि हे प्रभु, मेरे दुश्मनों से तो मैं निपट लूँगा, मेरे मित्रों से तू निपट ले। मेरे दुश्मनों से मैं निपट लूँगा, उनकी तू फिक्र छोड़, मैं काफी हूँ। लेकिन मेरे मित्रों से तू निपट ले, उनसे मैं बिल्कुल नहीं निपट पाता।

एकहार्ट का शिष्य साथ में था। उसने यह प्रार्थना सुनी, वह बड़ा हैरान हुआ। हैरान इसलिए हुआ कि सवाल तो दुश्मनों का ही होता है निपटने में, मित्रों से तो कोई सवाल नहीं होता। और एकहार्ट यह क्या पागलपन की बात कह रहा है, कहीं गलती तो नहीं हो गयी शब्दों की जमावट में। कहना चाहता हो कि मेरे मित्रों से मैं निपट लूँगा, दुश्मनों से तू निपट ले। कहीं भूल तो नहीं हो गयी। एकहार्ट जैसे ही प्रार्थना के बाहर हुआ, मित्र ने हाथ पकड़ा और कहा कि मालूम होता है, तुम कुछ भूल कर गये। यह तुमने क्या कहा, मित्रों से निपटने की कोई जरूरत ही नहीं! और तुमने परमात्मा से कहा, शत्रुओं से तो मैं निपट लूँगा, मेरे मित्रों से तू निपट ले।

एकहार्ट ने कहा कि मैं तुझसे कहता हूँ, कि जिन जिन को हमने मित्र समझा है, वे ही हमारे शत्रु हैं और उनसे निपटना बड़ा मुश्किल है। और उनमें सबसे बड़ा मित्र है 'मैं', इगो। यह बहुत मित्र मालूम पड़ता है। हम इसी को तो जिन्दगी भर बचाते हैं। यही है जहर, क्योंकि यही 'मैं' शरण न जाने देगा। यही 'मैं' सिर न झुकाने देगा। यही 'मैं' छोड़ने न देगा आपको कि आप लेट गो में पड़ जायँ, कह दें कि ठीक। कभी देखें।

शरण शब्द नहीं, अनुभव है

कभी देखें लेटकर, जमीन पर ही लेट जायँ। किसी मंदिर में जाने की उतनी जरूरत नहीं, जमीन पर ही लेट जायँ। चारों हाथ पैर छोड़कर, और कह दें परमात्मा से कि अब घण्टे भर तू ही है, 'मैं' नहीं। और पड़े रहें घण्टे भर। अपनी तरफ से कोई बाधा न दें। सिर्फ पड़े रहें, जैसे कि मुर्दा पड़ा हो या कोई छोटा बच्चा अपनी माँ की गोद में सिर रखकर सो गया हो। करते रहें, करते रहें, एक पंद्रह बीस दिन के अन्दर आपको शरण का क्या अर्थ है, वह पता चलेगा।

यह शब्द नहीं है, यह अनुभव है।

जमीन पर पड़ जायँ, अपने कमरे को भी बन्द कर लें, जमीन पर पड़ जायँ चारों हाथ पैर छोड़कर। सिर रख लें जमीन पर, पड़े रहें और कह दें, प्रभु, अब घण्टे भर के लिए तू ही है, अब 'मैं' नहीं। पड़े रहें, विचार चलते रहेंगे, भाव चलते रहेंगे। दो चार आठ दिन में विचार, भाव विलीन हो जायेंगे। पंद्रह दिन में लगेगा, वह जमीन, जिस पर आप पड़े हैं, और आप अलग नहीं हैं, एक हो गये, किसी गहरी इकाई में जुड़ गये। एक महीना पूरा होते होते आपको पता चलेगा कि शरण का क्या अर्थ है ? आपके भीतर प्रभु की किरणें सब तरफ से प्रवेश करने लगेंगी क्योंकि शरण का अर्थ है ओपनिंग।

तू परमात्मा के हाथों में अपने को छोड़ दे

इण्डोनेशिया में एक आन्दोलन चलता है, कीमती आन्दोलन है। इस जमीन पर दो चार कीमती बातें आज चल रही हैं, उनमें इण्डोनेशिया के मुहम्मद सुबूह के द्वारा चलता हुआ एक छोटा सा ध्यान का आन्दोलन भी है। उस आन्दोलन का नाम है सुबुद्ध। उस आन्दोलन की प्रक्रिया में कोई और विशेषता नहीं है। बस इतनी ही प्रक्रिया है कि वह व्यक्ति को राजी करते हैं, कि तू अपने को छोड़ दे परमात्मा के हाथों में। इसको वे कहते हैं ओपनिंग। इसको कृष्ण कहते हैं सरेन्डरिंग। इसको वे कहते हैं, खुले अपने सब दरवाजे छोड़ दे। परमात्मा से कोई बचाव नहीं करना है, इसलिए खिड़की दरवाजे सब

खुले छोड़ दें। और ऐसा पड़ जायँ, जैसे परमात्मा है और हम उसकी गोद में पड़े हैं।

और एक तीन सप्ताह में परिणाम गहरे होने लगते हैं। जैसे ही आप अपने को खुला छोड़ते हैं, रेसिस्टेंस, छोड़ने में थोड़ा वक्त लगता है। दो चार दिन तो आप करेंगे, लेकिन छोड़ न पायेंगे, धीरे धीरे छोड़ पायेंगे। जिस दिन भी छोड़ना हो जायेगा, उसी दिन आप पायेंगे कि आपके भीतर कोई विराट ऊर्जा प्रवेश कर रही है। आपकी मांसपेशियों में कोई और नयी चीज बहने लगी। आपकी हड्डियों के आस-पास किसी नयी चीज ने प्रवाह लिया। आपके हृदय की धड़कनों के पास कोई नयी शक्ति आ गयी। आपके खून में कुछ और भी बह रहा है। आपकी श्वांसों में कोई और भी तिर रहा है। और आप तीन महीने के अनुभव में पायेंगे कि आप नहीं बचे, परमात्मा ही बचा है। फिर तो यह भी कहने की जरूरत न रहेगी कि मैं शरण आता हूँ। क्योंकि फिर इतना भी आप न बचेंगे कि कह सकें, कि मैं शरण आता हूँ।

अपना दीपक स्वयं बनो

बुद्ध के पास एक युवक आया। उसने सुन रखा था कि बुद्ध लोगों से कहते हैं अप्पो दीपो भव, अपने प्रकाश स्वयं बनो, बी ए लाइट अनटू योरसेल्फ। फिर जब वह युवक बुद्ध के पास आया, तो उसे बड़ी बेचैनी हुई। वहाँ उसने देखा कि लोग कह रहे हैं, बुद्धं शरणं गच्छामि, बुद्ध की शरण जाते हैं। उस युवक को तो बड़ी परेशानी हुई। वह तो सुनकर आया था कि बुद्ध कहते थे, कि अपने दिये स्वयं बनो। यह तो बात बड़ी उल्टी मालूम पड़ती है, बुद्ध की शरण जाओ। अपने दीपक बनना है, तो किसी की शरण मत जाओ, यही उसने मतलब लिया था।

स्वभावतः, हमारा अहंकार इसी तरह के मतलब लेता है। वह मतलब की बातें पकड़ लेता है। वह कहता है कि किसी की शरण मत जाओ। वह कहता है, ठीक, यही तो हम कहते हैं कि किसी की शरण जाने की कोई जरूरत नहीं। उस युवक ने देखा कि यह क्या हो रहा है ! हजारों भिक्षु और वह बुद्ध के

चरणों में सिर रखते हैं और कहते हैं, बुद्धं शरणं गच्छामि, बुद्ध की शरण जाता हूँ। उस युवक ने बुद्ध के पास आकर कहा, माफ करिये, आप तो कहते हैं, अप्पो दीपो भव, अपने प्रकाश स्वयं बनो, खुद खोजो सत्य को। और यह लोग क्या कर रहे हैं ? ये कहते हैं बुद्धं शरणं गच्छामि, बुद्ध की शरण जाते हैं।

तो बुद्ध ने कहा, तू पहले शरण जा तभी तो तू हो पायेगा। अभी तू है ही नहीं। अभी जिसे तूने समझा है 'मैं' वही तो तेरे होने में बाधा है। उस 'मैं' को तोड़ दें। हाँ, उस दिन मैं तुझे मना कर दूंगा कि अब शरण मत जा। जिस दिन दिन तेरे भीतर कोई शरण जाने को न बचे, उस दिन मैं कहूँगा, अब शरण जाने की कोई जरूरत नहीं है। लेकिन जब तक तेरे भीतर कोई शरण जाने के लिए बचा है, तब तक तू शरण जा। इन दोनों बातों में बुद्ध ने कहा, कोई विरोध नहीं है।

कृष्ण ने कहा है शरण, कृष्ण की पूरी गीता का सार है शरणागति।

महावीर ने ठीक उल्टी बात कही है। महावीर ने कहा है, अशरण, किसी की शरण मत जाना। शब्द बिल्कुल उल्टे मालूम पड़ते हैं। लेकिन महावीर कहते हैं, अशरण तभी पूरा होगा, जब 'मैं' न बचे। लेकिन 'मैं' अगर भीतर है, तो अशरण कभी पूरा नहीं हो सकता।

और कृष्ण भी यही कहते हैं, शरणागति से 'मैं' मिट जायेगा और तब तो शरण जाने को कोई नहीं बचता। किस की जाओगे, कौन जायेगा ? दोनों खो जाते हैं। बूंद सागर में गिर जाती है और एक हो जाती है। इसलिए कृष्ण कहते हैं, जो शरण चला जाता है, वह सब कुछ पा लेता है।

साधिभूताधिदैवं मां साधियज्ञं च ये विदुः।
प्रयाणकालेऽपि च मां ते विदुर्युक्तचेतसः ॥ ३० ॥

और जो पुरुष अधिभूत और अधिदैव के सहित तथा अधियज्ञ के सहित, सब का आत्मरूप मेरे को जानते हैं, वे युक्तचित वाले पुरुष, अन्तकाल में भी मुझको ही जानते हैं, अर्थात् प्राप्त होते हैं।

छोटा सूत्र, आखरी और बहुत कीमती।

कृष्ण कहते हैं, जो सब भूतों में मुझे ही जानते हैं, वह अन्धकार में भी मुझे ही जानते हैं।

हम सबने सुना है कि परमात्मा प्रकाश स्वरूप है। हम सबने सुना है कि परमात्मा जीवन स्वरूप है। हम सबने सुना है कि परमात्मा आनन्दस्वरूप है। कृष्ण यहाँ कहते हैं, लेकिन जो मुझे सबमें देख लेता है, वह अन्धकार में भी मुझे ही देखता है। वह दुख में भी मुझे ही देखता है, वह मृत्यु में भी मुझे देखता है।

हम जिन्दगी को हिस्सों में तोड़कर देखते हैं

और ध्यान रहे, जब तक मृत्यु में भी परमात्मा न दिखे, तब तक अमृत उपलब्ध नहीं होता है। और ध्यान रहे, जब तक दुख में भी परमात्मा न दिखे, तब तक आनन्द उपलब्ध नहीं होता है। और ध्यान रहे, जब तक अन्धकार भी प्रकाश न हो जाय, तब तक परमात्मा उपलब्ध नहीं होता है।

यह तो हम नासमझों की मांग है कि हे प्रभु, हमें अन्धकार से प्रकाश की तरफ ले चल। यह तो हम नासमझों की मांग है, क्योंकि हम जिन्दगी को

हिस्सों में तोड़कर देखते हैं। हम कहते हैं, हे प्रभु, हमें मृत्यु से अमृत की ओर ले चल। हम कहते हैं, हे प्रभु हमें भय से अभय की ओर ले चल। दुख से सुख की ओर ले चल, आनन्द की ओर ले चल, यह तो हमारी प्रार्थनाएँ हैं। उनकी प्रार्थनाएँ, जिन्हें कुछ भी पता नहीं है, जो जिंदगी को दो टुकड़े में तोड़ देते हैं।

हमारी बुद्धि हर चीज को खण्ड खण्ड करके देखती है

कृष्ण का वचन बड़ा अद्भुत है। हम सबने सुना है ऋषि का वचन, अंधकार से प्रकाश की ओर ले चल। और कृष्ण कहते हैं, जो सब भूतों में मुझे देखते हैं, वह अंधकार में भी मुझे ही देखते हैं। अगर ठीक प्रार्थना हो, तो वह ऐसी होगी कि हे प्रभु, अंधकार में भी तू मुझे दिखायी पड़े, दुख में भी तू मुझे दिखायी पड़े। मृत्यु में भी तू मुझे दिखायी पड़े। अमृत की मेरी चाह नहीं है, मृत्यु में भी तू मुझे दिखायी पड़े। आनन्द की मेरी चाह नहीं, दुख में भी तू ही मुझे मिले। प्रकाश की मेरी माँग नहीं, अंधकार भी मेरे लिए प्रकाश हो।

यह माँग पहली माँग से ज्यादा गहरी है और कृष्ण जो कहते हैं, उसके अनुकूल, क्योंकि जगत् में तत्त्व एक है, दो नहीं। और जिसे हम अंधकार कहते हैं, वह केवल प्रकाश का एक रूप है और जिसे हम मृत्यु कहते हैं, वह अमृत का एक रूपांतरण है। और जिसे हम दुख कहते हैं, जिसे हम दुख जानते हैं जिसे हम पीड़ा कहते हैं और संताप कहते हैं, वह भी आनन्द की यात्रा के पड़ाव हैं। लेकिन यह हमें तब दिखायी पड़ेगा, जब हम पूरे जीवन को कम्प्रिहेंसिवली, इकट्ठा देख सकें। हम तो खण्ड खण्ड करके जीवन को देखते हैं। हमारी बुद्धि हर चीज को खण्ड खण्ड कर देती है। बुद्धि का एक ही काम है, चीजों को तोड़ना। जोड़ना बुद्धि नहीं जानती। बुद्धि के पास जोड़ने का कोई उपाय नहीं है।

बुद्धि की मत मानना

आज से एक हजार साल पहले सेलवीसियस नाम का एक ईसाई, कैथॉलिक फकीर हिन्दुस्तान आया। सेलवीसियस बहुत अद्भुत आदमियों में से एक था। और बाद में वह कैथॉलिक चर्च का पोप बना हिन्दुस्तान से लौटने के बाद। और जितने पोप बने हैं उनमें, सेलवीसियस का मुकाबला नहीं है।

सेलवीसियस ने हिन्दुस्तान के बहुत से राज समझने की कोशिश की और हिन्दुस्तान की धार्मिक साधना में गहरा उतरा। हिन्दुस्तान के फकीरों ने उसे बहुत सी चीजें भेंट दी कि तुम ले जाओ।

एक फकीर ने उसे एक चीज भेंट दी, एक ताँबे का बना हुआ आदमी का सिर भेंट दिया। वह सिर बहुत अद्भुत था। एक बड़ी से बड़ी रहस्य और मिस्ट्री उस सिर के साथ जुड़ी थी। उस सिर से कोई भी जवाब हाँ और ना में लिया जा सकता था। उससे कुछ भी पूछें, वह हाँ या ना में जवाब दे देता था। वह था तो सिर्फ ताँबे का सिर, आदमी की एक खोपड़ी पर चढ़ाया हुआ। वह अद्भुत था, सेलवीसियस ने हजारों तरह के सवाल पूछे और सदा सही जवाब पाये। पूछा कि यह आदमी मर जायेगा कल, कि बचेगा? उसने कहा, हाँ मर जायेगा तो मरा। उसने कहा नहीं, तो नहीं मरा। न मालूम क्या क्या पूछा और सही पाया। सेलवीसियस बड़ी मुश्किल में पड़ गया। उस फकीर ने कहा था, लेकिन एक ख्याल रखना, बुद्धि को मानकर कभी इस सिर को खोल कर मत देखना कि इसके भीतर क्या है। लेकिन जैसे जैसे सेलवीसियस को उत्तर मिलने लगे, वैसे वैसे उसका मन बेचैन होने लगा। उसकी रात की नींद खो गयी। उसको दिन भर चैन न पड़े। कब इसको खोलकर देख लें, तोड़कर, इसके भीतर क्या है? वह बमुश्किल हिन्दुस्तान से जा पाया, कि रोम पहुँचते ही उसने पहला काम यह किया कि उसको तोड़कर, उसको खोलकर देख लिया। उसके भीतर तो कुछ भी न था, एक साधारण खोपड़ी थी, कुछ भी न मिला।

सेलवीसियस बहुत दुखी और परेशान हुआ। आज भी उस सिर के टुकड़े, टूटे हुए, वेटिकन के पोप की लाइब्रेरी में नीचे दबे पड़े हैं, आज भी। और भी बहुत सी चीजें वेटिकन की लाइब्रेरी में दबी है, जो कभी बड़ी काम की सिद्ध हो सकती हैं। सेलवीसियस बहुत रोया, बहुत पछताया, बहुत जोड़ने की कोशिश की, सब जोड़ा जाड़ा, लेकिन जबाब फिर न आया।

विज्ञान जीवन के रहस्य को नहीं जान पायेगा

बुद्धि तत्काल चीजों को तोड़कर देखना चाहती है कि भीतर क्या है। लेकिन भीतर जो भी है, सिर्फ जुड़े हुए में होता है, टूटे में नहीं होता। जिस

चीज को भी हम तोड़ लेते हैं, उसकी होलनेस, उसकी पूर्णता नष्ट हो जाती है। और जीवन के सब रहस्य उसकी पूर्णता में हैं।

इसलिए विज्ञान कभी जीवन के पूरे रहस्य को उपलब्ध न हो पायेगा। क्योंकि विज्ञान की पूरी प्रक्रिया तोड़ने की है, एनलिसिस की है, विश्लेषण की है। चीजों को तोड़ते चले जाओ, इसलिए एटम तो मिल गया, लेकिन आत्मा नहीं मिलती, एटम मिल जायेगा, वह तोड़ने से मिलता है। आत्मा नहीं मिलती, वह जोड़ने से मिलती है। विद्युत् के कण मिल जायेंगे, इलेक्ट्रान्स मिल जायेंगे, लेकिन परमात्मा नहीं मिलेगा। इलेक्ट्रान तोड़ने से मिलते हैं, परमात्मा जोड़ने से मिलता है।

कृष्ण बड़े से बड़े जोड़ की बात कर रहे हैं। वह कह रहें हैं, अन्धेरा और प्रकाश 'मैं' ही हूँ। जीवन और मृत्यु 'मैं' ही हूँ। सृष्टि और प्रलय 'मैं' ही हूँ। और जो सब भूतों में मुझे देखता है, वह एक दिन अंधकार में, उसमें भी जो अप्रीतिकर मालूम पड़ता है, मुझे देख पायेगा।

और जिस दिन अप्रीतिकर में भी परमात्मा दिखायी पड़ता है, उस दिन क्या अप्रीतिकर बचता है? मेरा यह हाथ किसी को सुन्दर मालूम पड़ सकता है। इस हाथ को तोड़कर सड़क पर डाल दें, फिर यह बिल्कुल सुन्दर नहीं मालूम पड़ेगा, बहुत कुरूप हो जायेगा। आपकी आँख किसी को सुन्दर मालूम पड़ सकती है, निकाल कर टेबल पर रख दें, तो दूसरा आदमी आँख बन्द कर लेगा। यह न करिये, क्यों, बात क्या है? आँख सुन्दर होती है, जब शरीर की पूर्णता में होती है, अलग होकर कुरूप हो जाती है। हाथ सुन्दर होता है, जब शरीर की पूर्णता में होता है, अलग होकर सिर्फ गन्दगी और दुगन्ध फैलाता है।

यह पूरी जिन्दगी, यह पूरा विराट, एक है। और जब कोई इसे, एक की तरह देख पाता है, तो वह परम सौंदर्य के अनुभव को उपलब्ध होता है। वही परम सौंदर्य, भागवत सौंदर्य है। वही डिवाइन ब्युटी है।

खण्डों में देखने से सत्य खो जाता है

लेकिन हम तो सब टुकडों में देखते हैं, हम पूरे में तो कुछ भी नहीं देख पाते। वृक्ष को हम देखते हैं, तो सूरज को नहीं देख पाते, हालाँकि सूरज और वृक्ष जुड़े हुए हैं। सूरज को देखते हैं, तो जमीन को नहीं देख पाते, हालाँकि जमीन और सूरज जुड़े हुए हैं। रात देखते हैं तो दिन को नहीं देख पाते, हालाँकि दिन और रात एक ही सिक्के के दो पहलू हैं। प्रकाश देखते हैं, तो अन्धेरा खो जाता है। अँधेरा देखते हैं, तो प्रकाश नहीं होता, हालाँकि दोनों एक दूसरे के पहलू हैं।

आदमी कितना कमजोर है, कभी आपने ख्याल किया है? एक छोटे से नये पैसे को हाथ में लेकर कभी आपने कोशिश की, कि दोनों पहलू एक साथ देख लें? तब आपको पता चलेगा, आदमी कितना कमजोर है। एक छोटे से सिक्के के, एक पैसे के दोनों पहलू आप एक साथ नहीं देख सकते। जब एक पहलू दिखायी पड़ता है, तब दूसरा खो जाता है। जब दूसरा दिखायी पड़ता है, तो पहला खो जाता है। इसलिए जो बहुत तर्क में गहरे उतरते हैं, वह कहते हैं कि जब किसी ने आज तक देखे ही नहीं दो पहलू एक साथ, तो यह कहना कहाँ तक उचित है कि पैसे में दो पहलू होते हैं। क्या पता, नीचे का पहलू बचा हो अब तक, या न बचा हो, क्या पक्का है? अनुमान है सिर्फ कि नीचे भी पहलू होगा। होगा या नहीं होगा, क्या पता?

आदमी की बुद्धि पूरे को नहीं देख पाती, दी होल, वह जो पूर्ण है, नहीं देख पाती। आदमी की बुद्धि खण्ड खण्ड करके देखती है। खण्ड खण्ड में सब सौंदर्य खो जाता है, खण्ड खण्ड में सब चेतना खो जाती है, खण्ड खण्ड में सब सत्य खो जाता है। असत्य के टुकड़े ही हाथ लगते हैं, असुन्दर, कुरूप।

कृष्ण कहते हैं, जो सब भूतों में मुझे देखेगा। सब भूतों में देखना शुरू करें। वर्षा में, बादल में, सूरज में, पानी में, दुख में, सुख में, मित्र में, शत्रु में, देखना शुरू करें। शब्द में, मौन में, एक को ही देखना शुरू करें। और तब एक दिन जरूर वह घटना घटती है कि विपरीत नहीं रह जाता, द्वैत नहीं रह जाता, दो नहीं बचते, एक ही बचता है।

सब में एक को देखते ही छलाँग लग जाती है

और जिस दिन प्राणों के सामने एक ही बचता है, उस दिन ऐसी छलाँग लगती है कि एक नये आयाम में, एक नये जगत् में प्रवेश हो जाता है। फिर

आप वही नहीं होते, जो आप कल तक थे। सब कुछ वही होता है, फिर भी सब बदल जाता है। आप दूसरे ही आदमी हो जाते हैं। आपका नया जन्म, आप रीबोर्न, पुनर्जन्म को उपब्लध हो जाते हैं। यह पुनर्जन्म शरीर का नहीं, आत्मा का है। यह आत्मा नयी होकर प्रकट होती है। इसलिए कृष्ण ने पूरा का पूरा विज्ञान आत्मा के नये जन्म को देने के लिए कहा है। आखिरी में शरण को याद रखना, कि परमात्मा पर छोड़ देना है सब।

और दूसरी बात, अनुकूल में तो दिखायी ही पड़ेगा परमात्मा, प्रतिकूल में भी परमात्मा को देखने की खोज जारी रखना। जो खोजता है, वह पा लेता है। सिर्फ वे ही वंचित रह जाते हैं, जो कभी खोज पर ही नहीं निकलते। और कृष्ण जो कह रहे हैं, जितना कहने से कहा जा सकता है उतना वह कह रहे हैं। लेकिन कुछ है, जो चुप होकर ही जाना जा सकता है।

दस दिन तक निरन्तर मैं आपसे बात कर रहा था। अब मैं चाहूँगा, दस दिन कम से कम एक घण्टे, दस दिन मैंने आपसे बात की, दस दिन आप इस गीता ज्ञान यज्ञ को और जारी रखना अपने घर पर, एक घण्टा रोज अब आप चुप बैठ जाना। और जो मैंने आपको कहकर समझाया है, और समझ में न आया होगा, वह उस एक घण्टे की चुप्पी में आपकी समझ में उतरेगा और गहरा होगा। यह गीता ज्ञान यज्ञ आज समाप्त नहीं होता। आज सिर्फ गीता ज्ञान यज्ञ शब्द से समाप्त होता है, और मौन से शुरू होता है। कल से आप दस दिन कम से कम एक घण्टा मौन में बिता देना।

सुना है मैंने, एक अमरीकन यात्री एक पहाड़ की यात्रा पर गया था। बड़ी मुश्किल में पड़ गया। गाँव में कई लोगों से उसने बात करने की कोशिश की, लेकिन किसी ने कोई जवाब न दिया। साँझ को कुछ लोग एक कुएँ की पाट पर बैठे थे, तो वह भी जाकर बैठ गया। उसने दो चार दफे बात चलाने की कोशिश की, लोगों ने देखा लेकिन चुप ही रहे। फिर उसने पूछा कि क्या मामला है? क्या इस गाँव में कोई कानून है बोलने के खिलाफ, बोलते क्यों नहीं हो, इज धेर ऐनी ला अगेन्स्ट स्पीकिंग? फिर भी थोड़ी देर चुप रहे

लोग। फिर एक बूढ़े ने उससे, धीरे से उसके कान में कहा, धेर इज नो सच ला हियर, बट हियर पीपल स्पीक ओनली, व्हेन धे फील धेट बाई स्पीकिंग, धे कैन इम्प्रूव अपॉन साइलेंस; तभी बोलते हैं, जब उन्हें लगे कि बोलने से मौन के ऊपर कुछ कहा जा सकता, अन्यथा नहीं बोलते।

नृत्य है योग

हमने कभी ख्याल ही नहीं किया है। तो, यहाँ तो समाप्त हो जायेगा। आप दस दिन मौन में बैठना एक घण्टा, और उस घण्टे में मैं फिर बोल सकूँगा, लेकिन वह बोलना बहुत गहरा हो जायेगा। और उस दस दिन के मौन में आप वह जान पायेंगे, जो शायद शब्द से न जान पाये हों। शब्द से बहुत थोड़ा कहा जा सकता है, मौन से बहुत ज्यादा कहा जा सकता है। शब्द से समझा जा सकता है, मौन से बहुत ज्यादा समझा जा सकता है। क्योंकि शब्द बुद्धि का उपकरण है और बुद्धि तोड़ देती है। और मौन, अखण्ड है। तोड़ता नहीं, जोड़ देता है।

ये थोड़ी सी बातें, और उठेंगे नहीं। आज तो मैं चाहूँगा कि छाते बंद कर लें, आखिरी दिन है, हम सब कीर्तन में खड़े होकर सम्मिलित हो जायें। हम ताली बजाकर कीर्तन कर लें और विदा हो जायें।

नहीं, कोई भी जाये न, छाते बन्द कर लें और पानी बरस रहा है तो और भी आनन्द नाचने में आयेगा। दस दिन आपने दूसरों को नाचते देखा। उससे पता नहीं चलेगा कि क्या है नाच? आप नाचें और देखें।

* समाप्त *

भगवान् श्री रजनीश हिन्दी साहित्य

१ अवधिगत संन्यास ०·३०
२ महावीर वाणी ३०·००
३ जिन खोजा तिन पाइयाँ २०·००
४ ईशावास्योपनिषद् १२·००
५ प्रेम है द्वार प्रभु का ९·००
६ समुन्द समाना बुन्द में ७·००
७ घाट भुलाना बाट बिनु ७·००
८ सूली ऊपर सेज पिया की ७·००
९ सत्य की पहली किरण ६·००
१० शांति की खोज ३·५०
११ अन्तर्वीणा ६·००
१२ ढाई आखर प्रेम का ६·००
१३ नव सन्यास क्या है ? ७·००
१४ सम्भोग से समाधि की ओर ६·००
१५ मिट्टी के दीये ५·००
१६ साधना-पथ ५·००
१७ अन्तर्यात्रा ५·००
१८ अस्वीकृति में उठा हाथ (भारत, गाँधी और मेरी चिन्ता) ५·००
१९ प्रेम का फूल ५·००
२० गीता-दर्शन (पुष्प-६) ३०·००
२१ गहरे पानी पैठ ५·००
२२ ज्यों की त्यों धरि दीन्हीं चदरिया ५·००
२३ क्रान्ति-बीज ६·००
२४ पथ के प्रदीप ४·००
२५ प्रभु की पगडंडियाँ ४·००
२६ भ्रांत समाजवाद और एक खतरा ०·३०
२७ सत्य की खोज ४·००
२८ शून्य की नाव ५·००
२९ सिंहनाद (नया संशोधित संस्करण, नया नाम : "पथ की खोज") २·००
३० प्रगतिशील कौन ? १·५०
३१ विद्रोह क्या है ? १·५०
३२ ज्योतिष : अद्वैत का विज्ञान १·५०
३३ ज्योतिष अर्थात् अध्यात्म १·५०
३४ जन-संख्या विस्फोट : समस्या और समाधान (परिवार नियोजन का परिवर्धित संस्करण) १·५०
३५ मन के पार १·००
३६ युवक और यौन १·००
३७ अमृत-कण १·००
३८ अहिंसा-दर्शन १·००
३९ बिखरे फूल १·००
४० क्रान्ति की वैज्ञानिक प्रक्रिया १·५०
४१ धर्म और राजनीति १·००
४२ ध्यान : एक वैज्ञानिक दृष्टि १·००
४३ निर्वाण उपनिषद् १५·००
४४ ताओ उपनिषद् (प्रथम खण्ड) ४०·००
४५ मुल्ला नसरुद्दीन ५·००
४६ मैं मृत्यु सिखाता हूँ २०·००
४७ शून्य के पार ४·००
४८ मेडीसीन और मेडीटेशन १·२५
४९ युवक कौन ? ०·३०
५० संभावना की आहट ६·००
५१ गीता-दर्शन (पुष्प-७) १२·००

गुजराती में अनुवादित साहित्य

१ अन्तर्यात्रा ५·००
२ सम्भोगथी समाधि तरफ ४·००
३ साधना-पथ ३·००
४ एक सरल धर्मनी नवअवधारणा १·००
५ माटीना दिवा ३·५०
६ हूं कोण छूं ? ३·००
७ क्रान्ति- बीज २·५०
८ अज्ञात प्रति २·००
९ नवां संकेत १·७५
१० सत्यना अज्ञात सागरनुं आमन्त्रण १·५०
११ मननी पार १·५०
१२ सूर्य तरफनुं उड्डयन १·००
१३ जीवन अने मृत्यु १·००
१४ केटलीक ज्योतिर्मय क्षण ०·७५
१५ नवा मनुष्यना जन्मनी दिशा ०·७५
१६ प्रेमनी पाँखे ०·७५
१७ अमृत-कण ०·५०
१८ अहिंसा-दर्शन ०·५०
१९ तरुण विद्रोह ०·५०
२० भ्रान्त समाजवाद ०·३०
२१ अतीतनी आलोचना, भावीनुं चिन्तन ०·३५
२२ अभिनव संन्यास १·००
२३ ध्यान ०·७५
२४ प्रेम ०·७५
२५ परिवार ०·७५
२६ संकल्प ०·७५
२७ परिवार नियोजन ०·७५
२८ तीर्थ २·००
२९ सहज योग १·००
३० अकाम (पंच महाव्रत) ०·७५
३१ संन्यास अने संसार १·००
३२ प्रेमनां फूलो ५·००
३३ धर्म-विचार नहि उपचार ०·६०
३४ क्रान्तिनी वैज्ञानिक प्रक्रिया ०·६०
३५ उठ जाग जुवान ०·५०
३६ प्रेम परमात्मा अने परिवार ०·७५
३७ परमात्मा क्यां छे ? ०·७५
३८ गाँधीवाद वैज्ञानिक दृष्टिए ०·५०
३९ गाँधीजीनी अहिंसानुं पुर्नरावलोकन ०·५०
४० धर्म अने राजकारण ०·४०
४१ समाजवादथी सावधान ०·७५
४२ सत्यम्, शिवम्, सुन्दरम् ०·६०
४३ सन्त, ईश्वर अने अनुभूति ०·७५
४४ बन्धन अने मुक्ति ०·७५
४५ ताओ ०·६०
४६ हुं जल्दीमां छुं २·००
४७ गाँधीवादी क्यां छे ? ०·५०
४८ मृत्यु पर विजय १·५०
४९ अन्तर्द्रष्टा आचार्य रजनीशजी (जीवन चरित) ०·७५
५० अन्तर्द्रष्टा आचार्य रजनीशजी (जीवन प्रसंगो) ०·८०
५१ अन्तर्द्रष्टा आचार्य रजनीश जीनी ज्ञानवाणी ०·६०

५२ जीवनना मंदिरमांय द्वार छे मृत्युनं	१·००
५३ दिव्य लोकनी चाबी (महावीर-वाणी-१)	१·००
५४ गांधीमां डोकियुं अने समाजवाद	०·३५
५५ शरण स्वीकारुं छुं हुं तमारुं (महावीर-वाणी-३)	१·००
५६ ज्योतिष : अद्वैतनुं विज्ञान	२·००
५७ स्वानुभवनी कसौटीओ	१·००
५८ सत्यनी शोध	४·२५
५९ भगवान् श्री कृष्ण रहस्य	२·००
६० धर्म सर्व श्रेष्ठ मंगल छे	१·००
६१ पाछला जन्मनुं रहस्योद्घाटन	१·००
६२ निर्वाण नवनीत	१·२५
६३ ताओनुं तात्पर्य	१·५०
६४ यौवन अने यौन	०·७५
६५ परमहंस व्याख्यान	१·२५
६६ ईसावास्य रहस्य	१·२५

मराठी में अनुवादित साहित्य

१ गीता दर्शन अध्याय प्रथम	५·००
२ संभोगातून समाधिकडे	५·००
३ प्रेम-पुष्प	३·५०
४ गीता दर्शन अध्याय दूसरा, भाग १	६·००
५ क्रान्ति-बीज	२·५०
६ सिंहनाद	२·००
७ अभिनव सक्रिय ध्यान	१·००
८ प्रेमाचे पंख	०·७५
९ सूर्याच्या दिशेने उड़ाण	१·००
१० समाजवाद पासून सावध रहा	०·५०
११ पाण्यात बुडी घे खोल	२·००
१२ उद्याच्या शिक्षण पद्धतिची आधारभूत मूल्य	०·७५

पत्रिकाओं के वार्षिक शुल्क

१ ज्योति-शिखा (हिन्दी त्रैमासिक)	८·००
२ युक्रान्द (हिन्दी मासिक)	१२·००
३ योग-दीप (मराठी पाक्षिक)	१०·००
४ संन्यास (अंग्रेजी द्वैमासिक)	१८·००

पुस्तक प्राप्ति स्थान :

जीवन जागृति केन्द्र

● ३१, इजरायल मोहल्ला
भगवान भुवन, मस्जिद बन्दर रोड,
बम्बई - ९
●
फोन : ३२७६१८
३२१०८५

● ए - १, वुडलेण्ड्स,
पेडर रोड, (केम्प्स कोर्नर के पास)
बम्बई - २६
●
फोन : ३८११५९